कबीर ग्रंथावली

संपादक

डॉ. श्यामसुंदर दास

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

कबीर ग्रंथावली

कबीर ग्रंथावली

संपादक

डॉ. श्यामसुंदर दास

नागरीप्रचारिणी सभा

वाराणसी + नई दिल्ली

प्रकाशक
नागरीप्रचारिणी सभा
वाराणसी + नई दिल्ली

२१ वाँ संस्करण

११०० प्रतियाँ

संवत् २०५७ वि.

2000.

मूल्य : रु० ७५.०० मात्र

मुद्रक
श्रीनारायण
नागरी मुद्रण, नागरीप्रचारिणी
सभा, वाराणसी के लिए
ओम शिव प्रिण्टर्स
एसोसिएट्स, सोनिया,
वाराणसी द्वारा (आफसेट
प्रिंटिंग) मुद्रित।

प्रकाशकीय

साहित्यिक दृष्टि से कबीर साहित्य के अध्ययन अध्यापन के क्षेत्र में बाबू श्यामसुंदरदास द्वारा संपादित एवं सभा द्वारा प्रकाशित 'कबीर ग्रंथावली' की महिमा अपनी गरिमा के कारण सदैव से अनन्य रही है। इसका पहला संस्करण संवत् १९८७ वि. में प्रकाशित हुआ था और तब से इसके बीस संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

इसके आकार प्रकार में बराबर परिवर्तन होते रहने तथा मुद्रण एवं प्रूफसंशोधनों की भूलों के परिष्कार की ओर ध्यानलाघव के कारण इसमें अनेक त्रुटियों ने निवास बना लिया था।

इस संस्करण का परिष्कार प्रथम संस्करण के द्वारा सावधानी से कराकर तथा भूमिका में आए पदों के वर्तमान क्रम का पादटिप्पणी के रूप में निर्देश कर प्रकाशन किया जा रहा है। साथ ही इसके पूर्व संस्करणों से विलुप्त भूमिका में उल्लिखित कबीर के चित्र का संयोजन भी इसमें किया जा रहा है। इससे इस ग्रंथावली की उपादेयता में वृद्धि हुई है। आशा है, प्रस्तुत संस्करण में सुश्री पाठकों को कबीर साहित्य के अध्ययन में विशेष सुविधा प्राप्त हो सकेगी।

सुधाकर पांडेय
प्रधानमंत्री
नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

महात्मा कबीरदास

विषय सूची

विषय		पृष्ठ
प्रथम संस्करण की भूमिका	--	१-६
प्रस्तावना	--	७-५१
१. साखी	--	१-६८
(१) गुरुदेव कौ अंग	--	१
(२) सुमिरण कौ अंग	--	४
(३) बिरह कौ अंग	--	६
(४) ग्यान बिरह कौ अंग	--	९
(५) परचा कौ अंग	--	९
(६) रस कौ अंग	--	१२
(७) लाँबि कौ अंग	--	१३
(८) जर्णा कौ अंग	--	१३
(९) हैरान कौ अंग	--	१४
(१०) लै कौ अंग	--	१४
(११) निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग	--	१४
(१२) चितावणी कौ अंग	--	१६
(१३) मन कौ अंग	--	२१
(१४) सूषिम मारग कौ अंग	--	२४
(१५) सूषिम जनम कौ अंग	--	२५
(१६) माया कौ अंग	--	२५
(१७) चाँणक कौ अंग	--	२७
(१८) करणीं बिना कथणीं कौ अंग	--	२९
(१९) कथणीं बिना करणी कौ अंग	--	३०
(२०) कामी नर कौ अंग	--	३०
(२१) सहज कौ अंग	--	३२
(२२) साँच कौ अंग	--	३३
(२३) भ्रम विधौंषण कौ अंग	--	३४
(२४) भेष कौ अंग	--	३५
(२५) कुसंगति कौ अंग	--	३७

विषय		पृष्ठ
(२६) संगति कौ अंग	—	३७
(२७) असाध कौ अंग	—	३८
(२८) साध कौ अंग	—	३८
(२९) साध साषीभूत कौ अंग	—	३९
(३०) साध महिमा कौ अंग	—	४१
(३१) मधि कौ अंग	—	४२
(३२) सारग्राही कौ अंग	—	४२
(३३) विचार कौ अंग	—	४३
(३४) उपदेश कौ अंग	—	४४
(३५) वेसास कौ अंग	—	४५
(३६) पीव पिछाँणन कौ अंग	—	४७
(३७) बिर्कताई कौ अंग	—	४७
(३८) सम्रथाई कौ अंग	—	४९
(३९) कुसबद कौ अंग	—	४९
(४०) सबद कौ अंग	—	
(४१) जीवन मृतक कौ अंग	—	५०
(४२) चित कपटी कौ अंग	—	५१
(४३) गुरुसिष हेरा कौ अंग	—	५२
(४४) हेत प्रीति सनेह कौ अंग	—	५३
(४५) सूरा तन कौ अंग	—	५३
(४६) काल कौ अंग	—	५६
(४७) सजीवनि कौ अंग	—	६०
(४८) अपारिष कौ अंग	—	६१
(४९) पारिष कौ अंग	—	६१
(५०) उपजणि कौ अंग	—	६२
(५१) दया निरबैरता कौ अंग	—	६३
(५२) सुंदरि कौ अंग	—	६३
(५३) कस्तूरियाँ मृग कौ अंग	—	६४
(५४) निंद्या कौ अंग	—	६५
(५५) निगुणाँ कौ अंग	—	६५
(५६) बीनती कौ अंग	—	६६

विषय		पृष्ठ
(५७) साषीभूत कौ अंग	--	६७
(५८) वेली कौ अंग	--	६७
(५९) अबिहड कौ अंग	--	६८
२. पद	--	६९–१६८
३. रमैणी	--	१६८–१८६
परिशिष्ट	--	१८७–२५५
१. साखी	--	१८९–२००
२. पदावली	--	२००–२२५

महात्मा कबीरदास

(प्रौढ़ावस्था का चित्र)

प्रथम संस्करण की भूमिका

आज इस बात को पाँच छह वर्ष हुए होंगे, जब काशी नागरीप्रचारिणी सभा में रक्षित हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों की जाँच की गई थी और उनकी सूची बनाई गई थी। उस समय दो ऐसी पुस्तकों का पता चला जो बड़े महत्व की थीं, पर जिनके विषय में किसी को पहले कोई सूचना नहीं थी। इनमें से एक तो सूरसागर की हस्तलिखित प्रति थी और दूसरी कबीरदास जी के ग्रंथों की दो प्रतियाँ थीं। कबीरदासजी के ग्रंथों की इन दो प्रतियों में से एक तो संवत् १५६१ की लिखी है और दूसरी संवत् १८८१ की। दोनों प्रतियों के देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कबीरदास जी के नाम से जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं उनका कदाचित् दशमांश भी इन दोनों प्रतियों में नहीं है। यद्यपि इन दोनों प्रतियों के लिपिकाल में ३२० वर्ष का अंतर है पर फिर भी दोनों में पाठभेद बहुत ही कम है। संवत् १८८१ की प्रति में संवत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं। उस समय यह निश्चित किया गया कि इन दोनों हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर कबीरदास जी के ग्रंथों का एक संग्रह प्रकाशित किया जाय। यह कार्य पहले पंडित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय को सौंपा गया और उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार भी कर लिया। पर पीछे से समयाभाव के कारण वे यह न कर सके। तब यह मुझे सौंपा गया। मैंने यथासमय यह कार्य आरंभ कर दिया। मेरे दो विद्यार्थियों ने इस कार्य में मेरी सहायता करने की तत्परता भी प्रकट की, पर इस तत्परता का अवसान दो ही तीन दिन में हो गया। धीरे धीरे मैंने इस काम को स्वयं ही करना आरंभ किया। संवत् १९८३ के भाद्रपद मास में बहुत बीमार पड़ जाने तथा लगभग दो वर्ष तक निरंतर अस्वस्थ रहने और गृहस्थी संबंधी अनेक दुर्घटनाओं और आपत्तियों के कारण मैं यह कार्य शीघ्रतापूर्वक न कर सका। बीच बीच में जब तब अन्य झंझटों से कुछ समय मिला और शरीर से कुछ कार्य करने में समर्थता प्रकट की, तब तब मैं यह कार्य करता रहा। ईश्वर की कृपा है कि यह कार्य अब समाप्त हो गया।

जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इस संस्करण का मूल आधार संवत् १५६१ की लिखी हस्तलिखित प्रति है। यह प्रति खेमचंद के पढ़ने के लिये मलूकदास ने काशी में लिखी थी। यह पता नहीं लगा कि ये खेमचंद और मलूकदास कौन थे। क्या ये मलूकदासजी कबीरदासजी के वही शिष्य तो नहीं थे जो

जगन्नाथपुरी में जाकर बसे और जिनकी प्रसिद्ध खिचड़ी का वहाँ अब तक भोग लगता है तथा जिसके विषय में कबीरदासजी ने स्वयं कहा है 'मेरा गुरु बनारसी चेला समुंदर तीर'। यदि ये वही मलूकदास हैं तो इस प्रति का महत्व बहुत अधिक है। यदि यह न भी हो, तो भी इस प्रति का मूल्य कम नहीं है। जैसा कि इस संस्करण की प्रस्तावना में सिद्ध किया गया है, कबीरदासजी का निधन संवत् १५७५ में हुआ था। यह प्रति उनकी मृत्यु के १४ वर्ष पहले की लिखी हुई है। अंतिम १४ वर्षों में कबीरदासजी ने जो कुछ कहा था यद्यपि वह उसमें संमिलित नहीं है, तथापि इसमें संदेह नहीं कि संवत् १५६१ तक की कबीरदास जी की समस्त रचनाएँ इसमें संगृहीत हैं। यह प्रति (क) मानी गई है। इसके प्रथम और अंतिम दोनों पृष्ठों के चित्र इस संस्करण के साथ प्रकाशित किए जाते हैं।

दूसरी प्रति (ख) मानी गई है। यह संवत् १८८१ की लिखी है अर्थात् इस प्रति के और (क) प्रति के लिपिकाल में ३२० वर्षों का अंतर है। पर (क) और (ख) दोनों प्रतियों में पाठभेद बहुत कम है। (ख) प्रति में (क) प्रति की अपेक्षा १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं।

यह बात प्रसिद्ध है कि संवत् १६६१ में अर्थात् (क) प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष पीछे गुरुग्रंथ साहब का संकलन किया गया। उसमें अनेक भक्तों की वाणी संमिलित की गई है। गुरुग्रंथसाहब में कबीरदासजी की जितनी वाणी संमिलित है, वह सब मैंने अलग करवाई और तब (क) तथा (ख) प्रतियों में संमिलित पदों आदि से उसका मिलान कराया। जो दोहे और पद मूल अंश में आ गए थे, उनको छोड़कर शेष सब दोहे और पद परिशिष्ट में दे दिए गए हैं।

ग्रंथसाहब तथा दोनों हस्तलिखित प्रतियों का मिलान करने पर नीचे लिखे दोहे और पद दोनों प्रतियों में मिले।

पृष्ठ २	दो० १०	पृष्ठ २६	दो० ५४
पृष्ठ ५	दो० ६, ११, १२, १३	पृष्ठ २८	दो० ७
पृष्ठ ६	दो० १६	पृष्ठ ३८	दो० १ (१६)
पृष्ठ ७	दो० २५	पृष्ठ ४२	दो० २ (२२)
पृष्ठ ११	दो० ४४	पृष्ठ ४३	दो० ६, १
पृष्ठ १८	दो० ३ (१०)	पृष्ठ ४७	दो० १
पृष्ठ १६	दो० ३	पृष्ठ ५०	दो० ७
पृष्ठ २०	दो० १४, १	पृष्ठ ५१	दो० २, ६
पृष्ठ २४	दो० ३३	पृष्ठ ५४	दो० ५, ६, ११
पृष्ठ २५	दो० ४३, ४६	पृष्ठ ६१	दो० ६, १

पृष्ठ ६२	दो० ५	पृष्ठ ७८	दो० ३
पृष्ठ ६४	दो० ५, ६	पृष्ठ ८२	दो० १
पृष्ठ ६५	दो० ११, १४	पृष्ठ ८५	दो० ६
पृष्ठ ६६	दो० ४	पृष्ठ ६७	प० २७
पृष्ठ ६६	दो० १३	पृष्ठ १००	प० ३६
पृष्ठ ७१	दो० ३३	पृष्ठ २०८	प० ३५६, ३६२
पृष्ठ ७३	दो० १०	पृष्ठ २२०	प० ४००*
पृष्ठ ७७	दो० ७, २		

इनके अतिरिक्त पादटिप्पणियों में जो (ख) प्रति में अधिक दोहे दिए गए हैं, उनमें से साखी (४१) के दोहे १८, १६ और २० तथा साखी (४६) का दोहा ३८ उस प्रति और गुरुग्रंथसाहब दोनों में समान है। इस प्रकार दोनों हस्तलिखित प्रतियों और गुरुग्रंथसाहब में ४८ दोहे और ५ पद ऐसे हैं जो दोनो में समान हैं। इनको छोड़कर ग्रंथसाहब में जो दोहे या पद अधिक मिले हैं वे परिशिष्ट में दे दिए गए हैं। इनमें १६२ दोहे और २२२ पद हैं। इस प्रकार इस संस्करण में कबीरदासजी के दोहों और पदों का अत्यंत प्रामाणिक संग्रह दिया गया है। यह कहना तो कठिन है कि इस संग्रह में जो कुछ दिया गया है, उसके अतिरिक्त और कुछ कबीरदासजी ने कहा ही नहीं, पर इतना अवश्य है कि इनके अतिरिक्त और जो कुछ कबीरदासजी के नाम पर मिले उसे सहसा उन्हीं का कहा हुआ तब तक स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए, जब तक उसके प्रक्षिप्त न होने का कोई दृढ़ प्रमाण न मिल जाय।

---

* इन दोहों का क्रम प्रस्तुत संस्करण में निम्नलिखित है—

साखी (१) दो० १०	साखी (३७) दो० ६
,, (२) ,, ६, ११-१३, १६, २४	,, (३८) ,, ४, ५
,, (३) ,, ४४	,, (४१) ,, ५, ६, ११, १४
,, (१०) ,, ३	,, (४३) ,, ५
,, (११) ,, ३, १४	,, (४५) ,, १३, ३३
,, (१२) ,, १, ३३, ४३, ४६, ५४	,, (४६) ,, १०
,, (१३) ,, ७	,, (४७) ,, ७
,, (१६) ,, १	,, (४८) ,, २
,, (२२) ,, २, ६	,, (४६) ,, ३
,, (२३) ,, ७	,, (५४) ,, १
,, (२४) ,, १	,, (५६) ,, ६
,, (२८) ,, ७	तथा पद संख्या २७, ३६, ३५६
,, (२६) ,, २, ६	३६२ और ४००।
,, (३१) ,, ५' ६, ११	

इस संबंध में ध्यान रखने योग्य एक और बात यह है कि इस संग्रह में दिए हुए दोहों आदि की भाषा और कबीरदासजी के नाम पर बिकनेवाले ग्रंथों में के पदों आदि की भाषा में आकाशपाताल का अंतर है। इस संग्रह के दोहों आदि की भाषा भाषाविज्ञान की दृष्टि से कबीरदासजी के समय के लिये बहुत उपयुक्त है और वह हिंदी के १६वीं तथा १७वीं शताब्दी के रूप के ठीक अनुरूप हैं। और इसीलिये इन पदों और दोहों को कबीरदासजी रचित मानने में आपत्ति नहीं हो सकती। परंतु कबीरदासजी के नाम पर आजकल जो बड़े बड़े ग्रंथ देखने में आते हैं, उनकी भाषा बहुत ही आधुनिक और कहीं कहीं तो बिलकुल आजकल की खड़ी बोली ही जान पड़ती है। आज के प्रायः तीन साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व कबीरदासजी आजकल की सी भाषा लिखने में किस प्रकार समर्थ हुए होंगे, यह बहुत ही बिचारणीय है।

इस संस्करण में कबीरदासजी के जो दोहे और पद संमिलित किए गए हैं उन्हें मैंने आजकल की प्रचलित परिपाटी के अनुसार खराद पर चढ़ाकर सुडौल, सुंदर और पिंगल के नियमों से शुद्ध बनाने का कोई उद्योग नहीं किया। वरन् मेरा उद्देश्य यही रहा है कि हस्तलिखित प्रतियों या ग्रंथसाहब में जो पाठ मिलता है, वही ज्यों का त्यों प्रकाशित कर दिया जाय। कबीरदासजी के पूर्व के किसी भक्त की वाणी नहीं मिलती। हिंदी साहित्य के इतिहास में वीरगाथा काल की समाप्ति पर मध्यकाल का आरंभ कबीरदासजी से होता है, अतएव इस काल के वे आदि कवि है। उस समय भाषा का रूप परिमार्जित और संस्कृत नहीं हुआ था। तिस पर कबीरदासजी स्वयं पढ़े लिखे नहीं थे। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह अपनी प्रतिभा तथा भावुकता के वशीभूत होकर कहा है। उनमें कवित्व उतना नहीं था जितनी भक्ति और भावुकता थी। उनकी अटपट वाणी हृदय में चुभनेवाली है। अतएव उसे ज्यों का त्यों प्रकाशित कर देना ही उचित जान पड़ा और यही किया भी गया है, हाँ, जहाँ मुझे स्पष्ट लिपि-दोष देख पड़ा, वहाँ मैंने सुधार दिया है, और वह भी कम से कम उतना ही जितना उचित और नितांत आवश्यक था।

एक और बात विशेष ध्यान देने योग्य है। कबीरदासजी की भाषा में पंजाबीपन बहुत मिलता है। कबीरदास ने स्वयं कहा है कि मेरी बोली बनारसी है। इस अवस्था में पंजाबीपन कहाँ से आया? ग्रंथसाहब में कबीरदासजी की वाणी का जो संग्रह किया गया है, उसमें जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कारण तो स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है, पर मूल भाग में अथवा दोनों हस्तलिखित प्रतियों में जो पंजाबीपन देख पड़ता है, उसका कुछ कारण समझ

में नहीं आता । या तो यह लिपिकर्ता की कृपा का फल है अथवा पंजाबी साधुओं की संगति का प्रभाव है । कहीं कहीं तो स्पष्ट पंजाबी प्रयोग और मुहावरे आ गए हैं जिनको बदल देने से भाव तथा शैली में परिवर्तन हो जाता है । यह विषय विचारणीय है । मेरी समझ में कबीरदासजी की वाणी में जो पंजाबीपन देख पड़ता है उसका कारण उनका पंजाबी साधुओं से संसर्ग ही मानना समीचीन होगा ।

इस संस्करण के साथ कबीरदासजी के दो चित्र प्रकाशित किए जाते हैं, एक तो कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा कबीरपंथी स्वामी युगलानंदजी से मिला है । दोनों में से किसी चित्र का कोई ऐसा प्रामाणिक इतिहास नहीं मिला जिसकी कुछ जाँच की जा सकती पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, वृद्धावस्था का चित्र ही जो कबीरपंथी साधु युगलानंदजी से प्राप्त हुआ है अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है ।

इस ग्रंथ का परिशिष्ट प्रस्तुत करने में मेरे छात्र पंडित अयोध्यानाथ शर्मा एम० ए० ने बड़ा परिश्रम किया है । यदि वे यह कार्य न करते तो मुझे बहुत कुछ कठिनता का सामना करना पड़ता । इसी प्रकार प्रस्तावना के लिये सामग्री एकत्र करने और उसे व्यवस्थित रूप देने में मेरे दूसरे छात्र पंडित पीतांबरदत्त बड़थ्वाल एम० ए० ने मेरी जो सहायता की है वह बहुत ही अमूल्य है । सच बात तो यह है कि यदि मेरे ये दोनों प्रिय छात्र इस प्रकार मेरी सहायता न करते, तो अभी इस संस्करण के प्रकाशित होने में और भी अधिक समय लग जाता । इस सहायता के लिये मैं इन दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । इनके अतिरिक्त और भी दो तीन विद्यार्थियों ने मेरी सहायता करने में कुछ कुछ तत्परता दिखाई पर किसी का तो काम ही पूरा न उतरा, किसी ने टालमटूल कर दी और किसी ने कुछ कर कराकर अपने सिर से बला टाली । अस्तु, सभी ने कुछ न कुछ करने का उद्योग किया और मैं उन सबके प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हूँ ।

काशी
ज्येष्ठ कृष्ण १३, १९८५ } श्यामसुंदरदास

प्रस्तावना

काल की कठोर आवश्यकताएँ महात्माओं को जन्म देती हैं। कबीर का जन्म भी समय की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हुआ था।

आविर्भाव काल

अवसर के उचित उपयोग अनभिज्ञ और कर्तव्य से उदासीन रहनेवाली हिंदू जाति को धर्मजन्य दयालुता ने उसे दासता के गर्त में ढकेल दिया था। उसका शूरवीरत्व उसके किसी काम न आया। वीरता के साथ साथ वीरगाथाओं और वीरगीतों की अंतिम प्रतिध्वनि भी रणथंभौर के पतन के साथ ही विलीन हो गई। शहाबुद्दीन गोरी (मृत्यु सं० १२६३) के समय से ही इस देश में मुसलमानों के पाँव जमने लग गए थे, उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक (सं० १२६३–१२६७) ने गुलाम वंश की स्थापना कर पठानी सल्तनत और भी दृढ़ कर दी। भारत की लक्ष्मी पर लुब्ध मुसलमानों का विकराल स्वरूप, जिसे उनकी धर्मांधता ने और भी अधिक विकराल बना दिया था, अलाउद्दीन खिलजी (सं० १३५२–१३७२) के समय में भलीभाँति प्रकट हुआ। खेतों में खून और पसीना एक करनेवाले किसानों की कमाई का आधे से अधिक अंश भूमिकर के रूप में राजकोष में जाने लगा। प्रजा दाने दाने को तरसने लगी। सोने चाँदी की तो बात ही क्या, हिंदुओं के घरों में ताँबे पीतल के थाली लोटों तक का रहना सुलतान को खटकने लगा। उनका घोड़े की सवारी करना और अच्छे कपड़े पहनना महान् अपराधों में गिना जाने लगा। नाम मात्र के अपराध के लिये भी किसी की खाल खिंचवाकर उसमें भूसा भरवा देना एक साधारण बात थी। अलाउद्दीन खिलजी के लड़के कुतुबुद्दीन मुबारक (सं० १३७३–१३७७) के शासनकाल में जब देवगिरि का राजा हरपाल बंदी करके दिल्ली लाया गया, तब उसकी यही दशा हुई। मंदिरों को गिराकर उसके स्थान पर मस्जिदें बनाने का लग्गा तो बहुत पहले ही लग चुका था, अब स्त्रियों के मान और पतिव्रता की रक्षा करना भी कठिन हो गया। चित्तौर पर अलाउद्दीन की दो चढ़ाइयाँ केवल अतुल सुंदरी पद्मिनी की ही प्राप्ति के लिए हुईं, अंत में गढ़ के टूट जाने और अपने पति भीमसी के वीरगति पाने पर पुण्यप्रतिमा महारानी पद्मिनी ने अन्य वीर क्षत्राणियों के साथ अपने मान की रक्षा के लिए अग्निदेव के क्रोड़ में शरण ली और जौहर करके हिंदू जाति का मस्तक ऊँचा किया। तुगलक वंश के अधिकारारूढ़

होने पर भी ये कष्ट कम नहीं हुए वरन् मुहम्मद तुगलक (सं० १३८२-१४०८) की ऊटपटाँग व्यवस्थाओं से और भी बढ़ गए। समस्त राजधानी, जिसमें नवजात शिशु से लेकर मरणोन्मुख वृद्ध तक थे, दिल्ली से लाकर दौलताबाद में बसाई गई। परंतु जब वहाँ आने से अधिक लोग मर गए तब सबको फिर दिल्ली लौट जाने की आज्ञा दी गई। हिंदू जाति के लिए जीवन धीरे धीरे एक भार सा होने लगा, कहीं से आशा की झलक तक न दिखाई देती थी। चारों ओर निराशा और निरवलंबता का अंधकार छाया हुआ था। हिंदू रक्त ने खुसरो की नसों में उबलकर हिंदू राज्य की स्थापना का प्रयत्न किया तो था (वि० स० १३०८) पर वह सफल न हो सका। इसके अनंतर सारी आशाएँ बहुत दिनों के लिए मिट्टी में मिल गईं। तैमूर के आक्रमण ने देश को जहाँ तहाँ उजाड़ कर नैराश्य की चरम सीमा तक पहुँचा दिया। हिंदू जाति में से जीवन शक्ति के सब लक्षण मिट गए। विपत्ति की चरम सीमा तक पहुँचकर मनुष्य पहले तो परमात्मा की ओर ध्यान लगाता है और अनेक कष्टों से त्राण पाने की आशा करता है, पर जब स्थिति में सुधार नहीं होता, तब परमात्मा की भी उपेक्षा करने लगता है, उसके अस्तित्व पर उसका विश्वास ही नहीं रह जाता। कबीर के जन्म के समय हिंदू जाति की यही दशा हो रही थी। वह समय और परिस्थिति अनीश्वरवाद के लिए बहुत ही अनुकूल थी, यदि उसकी लहर चल पड़ती तो उसे रोकना बहुत ही कठिन हो जाता। परंतु कबीर ने बड़े ही कौशल से इस अवसर से लाभ उठाकर जनता को भक्तिमार्ग की ओर प्रवृत्त किया और भक्तिभाव का प्रचार किया। प्रत्येक प्रकार की भक्ति के लिये जनता इस समय तैयार नहीं थी। मूर्तियों की अशक्तता वि० स० १०८१ में बड़ी स्पष्टता से प्रगट हो चुकी थी जब कि मुहम्मद गजनवी ने आत्मरक्षा से विरत, हाथ पर हाथ रखकर बैठे हुए श्रद्धालुओं को देखते देखते सोमनाथ का मंदिर नष्ट करके उनमें से हजारों को तलवार के घाट उतारा था। गजेंद्र की एक ही टेर सुनकर दौड़ आने वाले और ग्राह से उसकी रक्षा करनेवाले सगुण भगवान जनता के घोर संकटकाल में भी उनकी रक्षा के लिए आते हुए न दिखाई दिए। अतएव उनकी ओर जनता को सहसा प्रवृत्त कर सकना असंभव था। पंढरपुर के भक्तशिरोमणि नामदेव की सगुण भक्ति जनता को आकृष्ट न कर सकी, लोगों ने उसका वैसा अनुकरण न किया जैसा आगे चलकर कबीर का किया; और अंत में उन्हें भी ज्ञानाश्रित निर्गुण भक्ति की ओर झुकना पड़ा। उस समय परिस्थिति केवल निराकार और निर्गुण ब्रह्म की भक्ति के ही अनुकूल थी, यद्यपि निर्गुण भक्ति का भलीभाँति अनुभव नहीं किया जा सकता था, उसका आभास मात्र मिल सकता था। पर

प्रबल जलधार में बहते हुए मनुष्य के लिये यह कूलस्थ मनुष्य या चट्टान किस काम की है जो उसकी रक्षा के लिये तत्परता न दिखलाए। पर उसकी ओर बहकर आता हुआ एक तिनका भी उसके हृदय में जीवन की आशा पुनरुद्दीप्त कर देता है और उसी का सहारा पाने के लिये वह अनायास हाथ बढ़ा देता है। कबीर ने अपनी निर्गुण भक्ति के द्वारा यही आशा भारतीय जनता के हृदय में उत्पन्न की और उसे कुछ अधिक समय तक विपत्ति की इस अथाह जलराशि के ऊपर बने रहने की उत्तेजना दी, यद्यपि सहायता की आशा से आगे बढ़े हुए हाथ को वास्तविक सहारा सगुण भक्ति से ही मिला और केवल रामभक्ति ही उसे किनारे पर लाकर सर्वथा निरापद कर सकी। रामभक्ति ने केवल सगुण कृष्णभक्ति के समान जनता की दृष्टि जीवन के आनंदोल्लासपूर्ण पक्ष की ओर ही लगाई, प्रत्युत आनंदविरोधिनी अमांगलिक शक्तियों के संहार का विधान कर दूसरे पक्ष में भी आनंद की प्राण-प्रतिष्ठा की। पर इससे जनता पर होनेवाले कबीर के उपकार का महत्व कम नहीं हो जाता। कबीर यदि जनता को भक्ति की ओर न प्रवृत्त करते तो क्या यह संभव था कि लोग इस प्रकार सूर की कृष्णभक्ति अथवा तुलसी की रामभक्ति आँखें मूँदकर ग्रहण कर लेते? सरांश यह है कि कबीर का जन्म ऐसे समय में हुआ जब कि मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित भारतीय जनता को अपने जीवित रहने की आशा नहीं रह गई थी और न उसमें अपने आपको जीवित रखने की इच्छा ही शेष रह गई थी। उसे मृत्यु या धर्मपरिवर्तन के अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं देख पड़ता था। यद्यपि धर्मज्ञ तत्वज्ञों ने सगुण उपासना से आगे बढ़ते बढ़ते निर्गुण उपासना तक पहुँचने का सुगम मार्ग बतलाया है और वास्तव में यह तत्व बुद्धिसंगत भी जान पड़ता है, पर उस समय सगुण उपासना की निःसारता का जनता को परिचय मिल चुका था और उस पर से उनका विश्वास भी हट चुका था। अतएव कबीर को अपनी व्यवस्था उलटनी पड़ी। मुसलमान भी निर्गुण उपासक थे। अतएव उनसे मिलते जुलते पथ पर लगाकर कबीर ने हिंदू जनता को संतोष और शांति प्रदान करने का उद्योग किया। यद्यपि उस उद्योग में उन्हें सफलता नहीं प्राप्त हुई, तथापि यह स्पष्ट है कि कबीर के निर्गुणवाद ने तुलसी और सूर के सगुणवाद के लिये मार्ग परिष्कृत कर दिया और उत्तरी भारत के भावी धर्ममय जीवन के लिये उसे बहुत कुछ संस्कृत और परिष्कृत बना दिया।

जिस समय कबीर आविर्भूत हुए थे, वह समय ही भक्ति की लहर का था। उस लहर को बढ़ाने के प्रबल कारण भी प्रस्तुत थे। मुसलमानों के भारत में आ बसने से परिस्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया। हिंदू जनता का

नैराश्य दूर करने के लिये भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने हिंदू और मुसलमान भक्त संतों की परंपरा विरोधी जातियों को एक करने की आवश्यकता का भी अनुभव किया। इस अनुभव के मूल में एक ऐसे सामान्य भक्तिमार्ग का विकास गर्भित था जिससे परमात्मा की एकता के आधार पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन हो सकता था और जिसका मूलाधार भारतीय ब्रह्मवाद तथा मुसलमानी खुदावाद की स्थूल समानता हुई। भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के सूक्ष्मभेद की ओर ध्यान नहीं दिया गया और दोनों के एक विचित्र मिश्रण के रूप में निर्गुण भक्तिमार्ग चल पड़ा। रामानंदजी के बारह शिष्यों में से कुछ इस मार्ग के प्रवर्तन में प्रवृत्त हुए जिनमें से कबीर प्रमुख थे। शेष में सेना, धना, भवानंद पीपा और रैदास थे, परंतु उनका उतना प्रभाव न पड़ा जितना कबीर का। नरहर्यानंदजी ने अपने शिष्य गोस्वामी तुलसीदास को प्रेरित करके उनके कर्तृत्व से सगुण रामभक्ति का एक और ही स्रोत प्रवाहित कराया।

मुसलमानों के आगमन से हिंदू समाज पर एक और प्रभाव पड़ा। पद-दलित शूद्रों की दृष्टि में उन्मेष हो गया। उन्होंने देखा कि मुसलमानों में द्विजों और शूद्रों का भेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण वे सब एक हैं, उनके व्यवसाय ने उनमें कोई भेद नहीं डाला है; न उनमें कोई छोटा है और न कोई बड़ा। अतएव इन ठुकराए हुए शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मनुष्यों की एकता को उद्घोषित करना चाहा। इस नवो-त्थित भक्तिरंग में संमिलित होकर हिंदू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। रामानंदजी ने सबके लिए भक्ति का मार्ग खोलकर उनको प्रोत्साहित किया। नामदेव दरजी, रैदास चमार, दादू धुनिया, कबीर जुलाहा आदि समाज की नीची श्रेणी के ही थे, परंतु उनका नाम आज तक आदर से लिया जाता है।

वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं, वर्गभेद से उत्पन्न उच्चता नीचता को भी दूर करने का इस निर्गुण भक्ति से प्रयत्न किया। स्त्रियों का पद स्त्री होने के कारण नीचा न रह पाया। पुरुषों के ही समान वे भी भक्ति की अधिकारिणी हुईं! रामानंदजी के शिष्यों में से दो स्त्रियाँ थीं, एक पद्मावती और दूसरी सुरसरी। आगे चलकर सहजोबाई और दयाबाई भी भक्तसंतों में से हुईं। स्त्रियों की स्वतंत्रता के परम विरोधी, उनको घर की चहारदीवारी के अंदर ही कैद रखने के कट्टर पक्षपाती तुलसीदास जी भी जो मीराबाई को 'राम विमुख तजिय कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही' का उपदेश दे सके, वह निर्गुण भक्ति के ही अनिवार्य और अलक्ष्य प्रभाव के

प्रसाद से समझना चाहिए। ज्ञानी संतों ने स्त्री की जो निंदा की है, वह दूसरी ही दृष्टि से है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री पुरुष के कामवासनापूर्ण संसर्ग से है। स्त्री की निंदा कबीर से बढ़कर कदाचित् ही किसी ने की हो, परंतु पतिपत्नी की भाँति न रहते हुए भी लोई का आजन्म उनके साथ रहना प्रसिद्ध है।

कबीर इस निर्गुण भक्तिप्रवाह के प्रवर्तक हैं, परंतु भक्त नामदेव इनसे भी पहले हो गए थे। नामदेव का नाम कबीर ने शुक, उद्धव, शंकर आदि ज्ञानियों के साथ लिया है--

> जागे सुक ऊधव अक्रूर हणवंत जागे लै लँगूर।
> संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामा जैदेव ॥'

अक्रूर, हनुमान और जयदेव की गिनती ज्ञानियों (जाग्रतों) में कैसे हुई, यह नहीं कह सकते। नामदेव जी जाति के दर्जी थे और दक्षिण के सतारा जिले के नरसी बमनी नामक स्थान में उत्पन्न हुए थे। पंढरपुर में विठोबाजी का मंदिर है। ये उनके बड़े भक्त थे। पहले ये सगुणोपासक थे, परंतु आगे चलकर इनका झुकाव निर्गुणभक्ति की ओर हो गया, जैसा उनके गायनों के नीचे दिए उदाहरणों से पता चलेगा--

> (क) 'दशरथ राय नंद राजा मेरा रामचंद्र,
> प्रणवै नामा तत्व रस अमृत पीजै ॥'
>
> \+ \+ \+
>
> 'धनि धनि मेघा रोमावली। धनि धनि कृष्ण ओढ़े काँवली।
> धनि धनि तू माता देवकी। जिह घर रमैया कँमलापति ॥
> धनि धनि बनखंड बृंदावना। जहँ खेलै श्रीनारायना ॥
> बेनु बजावै गोधन चारैं। नामे का स्वामी आनंद करै ॥
>
> (ख) 'पांडे तुम्हारी गायत्री लोधे का खेत खाती थी ॥
> लैकरि ठेंगा टँगरी तोरी लंगत लंगत जाती थी ॥
> पांडे तुम्हारा महादेव धौले बलद चढ़ा आवत देखा था ॥
> पांडे तुम्हारा रामचंद्र सो भी आवत देखा था ॥
> रावन सेंती सरवर होई घर की जोय गँवाई थी ॥'

कबीर के पीछे तो संतों की मानों बाढ़ सी आ गई और अनेक मत चल पड़े। पर सब पर कबीर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है। नानक, दादू' शिवनारायण, जगजीवनदास आदि जितने प्रमुख संत हुए, सबने कबीर का अनुकरण किया और अपना अपना अलग मत चलाया। इनके विषय की मुख्य बातें ऊपर आ गई हैं, फिर भी कुछ बातों पर ध्यान दिलाना आवश्यक है। सबने नाम, शब्द, सद्गुरु आदि की महिमा गाई है और मूर्तिपूजा

अवतारवाद तथा कर्मकांड का विरोध किया है, तथा जातिपाँति का भेदभाव मिटाने का प्रयत्न किया है, परंतु हिंदू जीवन में व्याप्त सगुण भक्ति और कर्म-कांड के प्रभाव से इनके परिवर्तित मतों के अनुयायियों द्वारा वे स्वयं परमात्मा के अवतार माने जाने लगे हैं, और उनके मतों में भी कर्मकांड का पाखंड घुस गया है। कई मतों में केवल द्विज लिये जाते हैं। केवल नानकदेवजी का चलाया सिक्ख संप्रदाय ही ऐसा है जिसमें जातिपाँति का भेद नहीं आने पाया, परंतु उसमें भी कर्मकांड की प्रधानता हो गई है और ग्रंथसाहब का प्रायः वैसा ही पूजन किया जाता है जैसा पूर्तिपूजक मूर्ति का करते हैं। कबीरदास के मनगढ़ंत चित्र बनाकर उनकी पूजा कबीरपंथी मठों में भी होने लग गई है और सुमिरनी आदि का प्रचार हो गया है।

यद्यपि आगे चलकर निर्गुण संत मतों का वैष्णव संप्रदायों से बहुत भेद हो गया, तथापि इसमें संदेह नहीं की संतधारा का उद्गम भी वैष्णव भक्ति रूपी स्रोत से ही हुआ है। श्रीरामानुज ने संवत् ११८४ में यादवाचल पर नारायण की मूर्ति स्थापित करके दक्षिण में वैष्णव धर्म का प्रवाह चलाया था पर उनका भक्ति का आधार ज्ञानमार्गी अद्वैतवाद था उनका अद्वैत विशिष्टा-द्वैत हुआ। गुजरात में माधवाचार्य ने द्वैतमूलक वैष्णव धर्म का प्रवर्तन किया। जो कुछ कहा जा चुका है, उससे पता लगेगा कि संत धारा अधिकतर ज्ञानमार्ग के ही मेल में रही। पर उधर बंगाल में महाप्रभु चैतन्यदेव और उत्तर भारत में वल्लभाचार्यजी के प्रभाव से भक्ति के लिये परमात्मा के सगुण रूप की प्रतिष्ठा की गई यद्यपि सिद्धांत रूप में ज्ञानमार्ग का त्याग नहीं किया गया। और तो और तुलसीदासजी तक ने ज्ञानमार्ग की बातों का निरूपण किया है, यद्यपि उन्होंने उन्हें गौणस्थान दिया है। संतों में भी कहीं कहीं अनजान में सगुणवाद आ गया है और विशेषकर कबीर में क्योंकि भक्ति गुणों का आश्रय पाकर ही हो सकती है। शुद्ध ज्ञानाश्रयी उपनिषदों तक में उपासना के लिये ब्रह्म में गुणों का आरोप किया गया है। फिर भी तथ्य की बात यह जान पड़ती है कि वैष्णव संप्रदाय ने आगे चलकर व्यवहार में सगुण भक्ति का आश्रय लिया, तब भी संत मतों ने ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्ति ही से अपना संबंध रखा।

यहाँ पर यह कह देना उचित जँचता है कि कबीर सारतः वैष्णव थे। अपने आपको उन्होंने वैष्णव तो कहीं नहीं कहा है, परंतु वैष्णव की जितनी प्रशंसा की है, उससे उनकी वैष्णवता का बहुत पुष्ट प्रमाण मिलता है--

'मेरे संगी द्वै जणा एक वैष्णव एक राम।
वो है दाता मुक्ति का वो सुमिरावै नाम।'

'कबीर धनि ते सुंदरी जिनि जाया वैसनौं पूत ।
राम सुमिरि निरभै हुआ सब जग गया अऊत ॥
साकत बाभँण मति मिलै बेसनौं मिलै चँडाल ।
अंकमाल दे भेंटिए मानो मिलै गोपाल ॥'

शाक्तों की निंदा के लिये यह तत्परता उनकी वैष्णवता का ही फल है। शाक्त को उन्होंने कुत्ता तक कह डाला है—

साकत सुनहा दूनो भाई, एक नींदै एक भौंकत जाई ।

जो कुछ संदेह उनकी वैष्णवता में रह जाता है, वह रामानंदजी को गुरु बनाने की उनकी आकुलता से दूर हो जाना चाहिए । अन्य वैष्णवों में और उनमें जो भेद दिखाई देता है उसका कारण, जैसा कि हम आगे चलकर बतावेंगे, उनके सिद्धांत और व्यवहार में भेद न रखने का फल है।

कालनिर्णय

कबीरदास के जीवनचरित्र के संबंध में तथ्य की बातें बहुत कम ज्ञात हैं; यहाँ तक कि उनके जन्म और मरण के संवतों के विषय में भी अब तक कोई निश्चित बातें नहीं ज्ञात हुई है। कबीरदास के विषय में लोगों ने जो कुछ लिखा है, सब जनश्रुति के आधार पर हैं। इनका समय भी अनुमान के आधार पर निश्चित किया गया है। डा० हंटर ने इनका जन्म संवत् १४३७ में और विल्सन साहब ने मृत्यु सं० १५०५ में मानी है। रेवरेंड वेस्टकाट के अनुसार इनका जन्म सं० १४९७ में और मृत्यु संवत् १५७५ में हुई। कबीरपंथियों में इनके जन्म के विषय में यह पद्य प्रसिद्ध है—

'चौदह सौ पचपन साल भए, चंद्रवार एक ठाठ ठए ।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए ॥
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरषें झर लाग गए ।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए ॥'

यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास का कहा हुआ बताया जाता है। इसके अनुसार कबीरदास का जन्म लोगों ने संवत् १४५५ ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को माना है, परंतु गणना करने से संवत् १४५५ में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् १४५६ निकलता है, क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है 'चौदह सौ पचपन साल गए, अर्थात् उस समय तक संवत् १४५५ बीत गया था ।।

ज्येष्ठ मास वर्ष के आरंभिक मासों में है, अतएव उसके लिये चौदह सौ पचपन साल गए लिखना स्वाभाविक भी है, क्योंकि वर्षारंभ में नवीन संवत् लिखने का उतना अभ्यास नहीं रहता। सं० १४५६ में ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा

चंद्रवार को ही पड़ती है। अतएव यही संवत् कबीर के जन्म का ठीक संवत् जान पड़ता है।

इनके निधन के संबंध में दो तिथियाँ प्रसिद्ध हैं--

(१) 'संवत् पंद्रह सौ औ पाँच मौ मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकादशी, मिले पवन में पवन॥'

(२) 'संवत् पंद्रह सौ पछत्तरा, कियो मगहर को गवन।
माघ सुदी एकादशी, रलो पवन में पवन॥'

एक के अनुसार इनका परलोकवास संवत् १५०५ में और दूसरे के अनुसार १५७५ में ठहरता है। दोनों तिथियों में ७० वर्ष का अंतर है। वार न दिए रहने के कारण ज्योतिष की गणना से तिथियों की जाँच नहीं की जा सकती!

डाक्टर फ्यूरर ने अपने 'मानुमेंटल एंटीक्विटीज आफ दि नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज' नामक ग्रंथ में लिखा है कि बस्ती जिले के मगहर ग्राम में, आमी नदी के दक्षिण तट पर, कबीरदासजी का रौजा है जिसे सन् १४५० (संवत् १५०७) में बिजली खाँ ने बनवाया और जिसका जीर्णोद्धार सन् १५६७ (संवत् १६२४) में नवाब फिदाई खाँ ने कराया। यदि ये संवत् ठीक हैं तो कबीर की मृत्यु संवत् १५०७ के पहले ही हो चुकी थी। इस बात को ध्यान में रखकर देखने से १५०५ ही इनका निधन संवत् ठहरता है, और इनका जन्म संवत् १४५६ मान लेने से इनकी आयु केवल ४६ वर्ष की ठहरती है। मेरा अनुमान था कि डाक्टर फ्यूरर ने मगहर [illegible] रौजे के बनने तथा जीर्णोद्धार के संवत् उसमें खुदे किसी शिलालेख के [illegible]र पर दिए होंगे। इस अनुमान से मैं बहुत प्रसन्न था कि इस शिलालेख के आधार पर कबीर जी का समय निश्चित हो जायगा; पर पूछताछ करने पर पता लगा कि वहाँ कोई शिलालेख नहीं है। डाक्टर साहब ने जिस ढंग से संवत् दिए हैं, उससे तो यही जान पड़ता है कि उनके पास कोई आधार अवश्य था। परंतु जब तक उस आधार का पता नहीं लगता, तब तक मैं पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इन संवतों को निश्चित मानने में असमर्थ हूँ। और भी कई बातें हैं जिनसे इन संवतों को अप्रामाणिक मानने को ही जी चाहता है। इन पर आगे विचार किया जाता है।

यह बात प्रसिद्ध है कि कबीरदास सिकंदर लोदी के समय में हुए थे और उसके कोप के कारण ही उन्हें काशी छोड़कर जाना पड़ा था। सिकंदर लोदी का राजत्वकाल सन् १५१७ (संवत् १५७४) से सन् १५२६ (संवत् १५८३) तक माना जाता है। इस अवस्था में यदि कबीर का निधन संवत्

१५०५ मान लिया जाय तो उनका सिकंदर लोदी के समय में वर्तमान रहना असंभव सिद्ध होता है ।

गुरू नानकदेवजी ने कबीर की अनेक साखियों और पदों को आदि-ग्रंथ में उद्धृत किया है गुरु नानकजी का जन्म संवत् १५२६ में और मृत्यु संवत् १५९६ में हुई । रेवरंड वेस्टकाट लिखते हैं कि जब नानक २७ वर्ष के थे, तब कबीरदासजी से उनकी भेंट हुई थी। नानकदेवजी पर कबीरदास का इतना स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है कि इस घटना को सत्य मानने की प्रवृत्ति होती है, जिससे कबीर का संवत् १५५६ में वर्तमान रहना मानना पड़ता है । परंतु संवत् १५०५ में कबीर की मृत्यु मानने से यह घटना असंभव हो जाती है ।

जिन दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इस ग्रंथावली का संपादन हुआ है, उनमें से एक संवत् १५६१ की लिखी है । यदि कबीरदास की मृत्यु १५०५ में हुई तो यह प्रतिलिपि उनकी मृत्यु के ५६ वर्ष पीछे तैयार की गई होगी । ऐसा प्रसिद्ध है कि कबीरदासजी के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदासजी ने संवत् १५२१ में जब कि कबीरदासजी की आयु ६५ वर्ष की थी, अपने गुरु के वचनों का संग्रह किया था । जिस ढंग से कबीरदास जी की वाणी का संग्रह इस प्रति में किया गया है, उसे देखकर यह मानना पड़ेगा कि यह पहला संकलन नहीं था, वरन् अन्य संकलनों के आधार पर पीछे से किया गया था, अथवा कोई आश्चर्य नहीं कि धर्मदास के संग्रह के ही आधार पर इसका संकलन किया गया हो* ।

इस ग्रंथावली में कबीरदासजी के दो चित्र दिए गए हैं---एक युवावस्था का और दूसरा वृद्धावस्था का । पहला चित्र कलकत्ता म्यूजियम से प्राप्त हुआ है और दूसरा मुझे कबीरपंथी स्वामी युगलानंदजी से मिला है । मिलान कराने से दोनों चित्र एक ही व्यक्ति के नहीं मालूम पड़ते, दोनों की आकृतियों में बड़ा अंतर है । यदि दोनों नहीं तो इनमें से कोई एक अवश्य अप्रामाणिक होगा, दोनों ही अप्रामाणिक हो सकते हैं, परंतु श्रीयुत युगला-

* ग्रंथ साहब में कबीरदास की बहुत सी साखियाँ और पद दिए हैं । उनमें से बहुत से ऐसे हैं जो सं० १५६१ की हस्तलिखित प्रति में नहीं हैं । इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह संवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अंदर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदासजी के नाम से प्रचलित हो गई थीं, जो कि वास्तव में उनकी न थीं । यदि कबीरदास का निधन संवत् १५०५ में मान लिया जाता है तो यह बात असंगत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनंतर १४ वर्ष तक कबीरदासजी जीवित रहे हों और इस बीच में उन्होंने और बहुत से पद बनाए हों जो ग्रंथ साहब में सम्मिलित कर लिए गए हों ।

नंदजी वृद्धावस्थावाले चित्र के लिये अत्यंत प्रामाणिकता का दावा करते हैं, जो ४६ वर्ष से अधिक अवस्थावाले व्यक्ति का ही हो सकता है। नहीं कह सकते कि यह दावा कहाँ तक साधार और सत्य है, परंतु यह ठीक है तो मानना पड़ेगा कि कबीरदासजी की मृत्यु संवत् १५०५ के बहुत पीछे हुई।

इन सब बातों पर एक साथ विचार करने से यही संभव जान पड़ता है कि कबीरदास जी का जन्म १४५६ में और मृत्यु संवत् १५७५ में हुई होगी। इस हिसाब से उनकी आयु ११९ वर्ष की होती है, जिस पर बहुत लोगों को विश्वास करने की प्रवृत्ति न होगी, परंतु जो इस युग में भी असंभव नहीं है।

माता पिता

यह कहा जा चुका है कि कबीरदास जी के जीवन की घटनाओं के संबंध में कोई निश्चित बात ज्ञात नहीं होती, क्योंकि उन सबका आधार जनसाधारण और विशेषकर कबीरपंथियों में प्रचलित दंतकथाएँ हैं। कहते हैं कि काशी में एक सात्विक ब्राह्मण रहते थे जो स्वामी रामानंदजी के बड़े भक्त थे। उनकी एक विधवा कन्या थी। उसे साथ लेकर एक दिन वे स्वामीजी के आश्रम पर गए। प्रणाम करने पर स्वामी जी ने उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया ब्राह्मण देवता ने चौंककर जब पुत्री का वैधव्य निवेदन किया तब स्वामीजी ने सखेद कहा कि मेरा वचन तो अन्यथा नहीं हो सकता है, परंतु इतने से संतोष करो कि इससे उत्पन्न पुत्र बड़ा प्रतापी होगा। आशीर्वाद के फलस्वरूप जब इस ब्राह्मण कन्या को पुत्र उत्पन्न हुआ तो लोकलज्जा और लोकापवाद के भय से उसने उसे लहर तालाब के किनारे डाल दिया। भाग्यवश कुछ ही क्षण के पश्चात् नीरू नाम का एक जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उधर से आ निकला। इस दंपति के कोई पुत्र न था। बालक का रूप पुत्र के लिये लालायित दंपति के हृदयों में चुभ गया और वे इसी बालक का भरण पोषण कर पुत्रवान हुए। आगे चलकर यही बालक परम भगवद्भक्त कबीर हुआ। कबीर का विधवा ब्राह्मण कन्या का पुत्र होना असंभव नहीं; किंतु स्वामी रामानंद जी के आशीर्वाद की बात ब्राह्मण कन्या का कलंक मिटाने के उद्देश्य से ही पीछे से जोड़ी गई जान पड़ती है, जैसे कि अन्य प्रतिभाशाली व्यक्तियों के संबंध में जोड़ी गई है। मुसलमान घर में पालित होने पर भी कबीर का हिंदू विचारों में सराबोर होना उनके शरीर में प्रवाहित होनेवाले ब्राह्मण अथवा कम से कम हिंदू रक्त की ही ओर संकेत करता है। स्वयं कबीरदास ने अपने माता पिता का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है और जहाँ कहीं उन्होंने अपने संबंध में कुछ कहा भी है वहाँ अपने को जुलाहा और बनारस का रहनेवाला बताया है।

'जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुण रमै कबीर'॥

'मेरे राम की अभैपद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।'

'तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा।'

परंतु जान पड़ता है कि उनकी हार्दिक इच्छा थी कि यदि मेरा ब्राह्मण कुल में जन्म हुआ होता तो अच्छा होता। वे पूर्व जन्म में अपने ब्राह्मण होने की कल्पना कर अपना परितोष कर लेते हैं। एक पद में वे कहते हैं--

'पूरब जनम हम ब्राह्मन होते वोछे करम तप हीना।
रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा कीना॥'

ग्रंथ साहब में कबीरदास का एक पद दिया है जिसमें कबीरदास कहते हैं--'पहले दर्शन मगहर पायो पुनि कासी बसे आई।' एक दूसरे पद में कबीरदास कहते हैं--'तोरे भरोसे मगहर बसियो मेरे मन की तपन बुझाई।' यह तो प्रसिद्ध ही है कि कबीरदास अंत में मगहर में जाकर बसे और वहीं उनका परलोकवास हुआ। पर 'पहले दर्शन मगहर पायो पुनि काशी बसे आई' से तो यह ध्वनि निकलती है कि उनका जन्म ही मगहर में हुआ था और फिर ये काशी में आकर बस गए और अंत में फिर मगहर में जाकर परलोक सिधारे। तो क्या विधवा ब्राह्मणी के गर्भ में जन्म पाने और नीरू तथा नीमा से पालित पोषित होने की समस्त कथा केवल मनगढंत है और उसमें कुछ भी सार नहीं! यह विषय विशेष रूप से विचारणीय है।

कुछ लोग कबीर को नीरू और नीमा का औरस पुत्र मानते हैं, परंतु इस मत के पक्ष में कोई साधार प्रमाण अब तक किसी ने नहीं दिया। स्वयं कबीर की एक उक्ति हम ऊपर दे चुके हैं जिसमें उनका जन्म से मुसलमान न होना प्रकट होता है, परंतु 'जो रे खुदाई तुरक मोहि करता आपै कटि किन जाई' से यह ध्वनित होता है कि वे मुसलमान माता पिता की संतति थे। सब बातों पर विचार करने से इसी मत के ठीक होने की अधिक संभावना है कि कबीर ब्राह्मणी या किसी हिंदू स्त्री के गर्भ से उत्पन्न और मुसलमानी परिवार में लालित पालित हुए थे। कदाचित् उनका बालकाल मगहर में बीता हो और पीछे से आकर काशी में बसे हों, जहाँ से अंतकाल के कुछ पूर्व उन्हें पुनः मगहर में जाना पड़ा हो।

गुरु

किंवदंती है कि जब कबीर भजन गा गा कर उपदेश देने लगे तब उन्हें पता चला कि बिना किसी गुरु से दीक्षा लिये हमारे उपदेश मान्य नहीं होंगे क्योंकि लोग उन्हें 'निगुरा' कहकर चिढ़ाते थे। लोगों का कहना था कि जिसने किसी गुरु से उपदेश नहीं ग्रहण किया, वह औरों को क्या उपदेश देगा! अतएव कबीर को किसी को गुरु बनाने की चिंता हुई।

कहते हैं, उस समय स्वामी रामानंद जी काशी में सबसे प्रसिद्ध महात्मा थे। अतएव कबीर उन्हीं की सेवा में पहुँचे। परंतु उन्होंने कबीर के मुसलमान होने के कारण उनको अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। इसपर कबीर ने एक चाल चली जो अपना काम कर गई। रामानंदजी पंचगंगा घाट पर नित्य प्रति प्रातःकाल ब्राह्ममूहूर्त में ही स्नान करने जाया करते थे उस घाट की सीढ़ियों पर कबीर पहले से ही जाकर लेट रहे। स्वामीजी जब स्नान करके लौटे तो उन्होंने अँधेरे में इन्हें न देखा, उनका पाँव इनके सिर पर पड़ गया जिस पर स्वामी जी के मुँह से 'राम राम' निकल पड़ा। कबीर ने चट उठकर उनके पैर पकड़ लिए और कहा कि आप राम राम का मंत्र देकर आज मेरे गुरु हुए हैं। रामानंद जी से कोई उत्तर देते न बना। तभी से कबीर ने अपने को रामानंद का शिष्य प्रसिद्ध कर दिया।

'कासी में हम प्रकट भये हैं रामानंद चेताए' कबीर का यह वाक्य इस बात के प्रमाण में प्रस्तुत किया जाता है कि रामनंदजी उनके गुरु थे। जिन प्रतियों के आधार पर इस ग्रंथावली का संपादन किया गया है उसमें यह वाक्य नहीं है और न ग्रंथसाहब ही में यह मिलता है। अतएव इसको प्रमाण मानकर इसके आधार पर कोई मत स्थिर करना उचित नहीं जँचता। केवल किंवदंती के आधार पर रामानंद जी को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किंवदंती भी ऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानंदजी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् १४६७ में हुई, इससे १४ या १५ वर्ष पहले भी उनके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योंकि हम ऊपर उनका जन्म संवत् १४५६ सिद्ध कर आए है। ११ वर्ष के बालक का घूम फिरकर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं होता। और यदि रामानंद जी की मृत्यु संवत् १४५३ के लगभग हुई तो यह किंवदंती झूठ ठहरती है; क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार में आने के लिये अभी तीन चार वर्ष रहे होंगे।

पर जब तक कोई विरुद्ध दृढ़ प्रमाण नहीं मिलते, तब तक हम इस लोकप्रसिद्ध बात को कि रामानंदजी कबीर के गुरु थे, बिलकुल असत्य भी नहीं ठहरा सकते। हो सकता है कि बाल्यकाल में बार बार रामानंदजी के साक्षात्कार तथा उपदेशश्रवण से ('गुरु के सबद मेरा मन लागा') अथवा दूसरों के मुँह से उनके गुण तथा उपदेश सुनने से बालक कबीर के चित्त पर गहरा प्रभाव पड़ गया हो जिसके कारण उन्होंने आगे चलकर उन्हें अपना मानस गुरु मान लिया हो। कबीर मुसलमान माता पिता की संतति हों चाहे नहीं किंतु मुसलमान के घर में लालित पालित होने पर भी उनका हिंदू

विचारधारा में आप्लावित होना उनपर बाल्यकाल ही से किसी प्रभावशाली हिंदू का प्रभाव होना प्रदर्शित करता है।

'हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई सिर तैं उतरया बोझ ॥'

से प्रकट होता है कि अपने गुरु रामानंद से प्रभावित होने से पहले कबीर पर हिंदू प्रभाव पड़ चुका था जिससे वे मुसलमान कुल में परिपालित होने पर भी 'पाहन' पूजनेवाले हो गए थे। कबीर लोगों के कहने से कोई काम करनेवाले नहीं थे। उन्होंने अपना सारा जीवन ही अपने समय के अंध-विश्वासों के विरुद्ध लगा दिया था। यदि स्वयं उनका हार्दिक विश्वास न होता कि गुरु बनाना आवश्यक है, तो वे किसी के कहने की परवा न करते। किंतु उन्होंने स्वयं कहा है--

'गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै।'
'गुरु बिन इह जग कौन भरोसा, काके संग ह्वै रहिए ॥'

परंतु वे गुरु और शिष्य का शारीरिक साक्षात्कार आवश्यक नहीं समझते थे। उनका विश्वास था कि गुरु के साथ मानसिक साक्षात्कार से भी शिष्य के शिष्यत्व का निर्वाह हो सकता है।

कबीर गुरु बसै बनारसी सिष समंदर तीर।
बिसरया नहीं बीसरे जे गुण होई सरीर ॥'

कबीर अपने आप में शिष्य के लिये आवश्यक गुणों का अभाव नहीं समझते थे। वे उन एक आध में से थे जो गुरुज्ञान से अपना उद्धार कर सकते थे, जिनके संबंध में कबीर ने कहा है--

'माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान थैं, एक आध उबरंत ॥'

मुसलमान कबीरपंथियों का कहना है कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से दीक्षा ली थी। कबीर ने अपने गुरु के बनारस निवासी होने का स्पष्ट उल्लेख किया है। इस कारण ऊँजी के पीर और तकी उनके गुरु नहीं हो सकते। 'घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख' में उन्होंने तकी का नाम उस आदर से नहीं लिया है जिस आदर से गुरु का नाम लिया जाता है और जिसके प्रभाव से कबीर ने असंभव का भी संभव होना लिखा है।

'गुरु प्रसाद सूई कै नोकैं हस्ती आवै जाहि ॥'

बलिक वे तो उलटे तकी को ही उपदेश देते हुए जान पड़ते हैं। यद्यपि यह वाक्य इस ग्रंथावली में कहीं नहीं मिलता फिर भी स्थान स्थान पर 'शेख' शब्द का प्रयोग मिलता है जो विशेष आदर से नहीं लिया गया है वरन् जिसमें फटकार की मात्रा ही अधिक देख पड़ती है। अतः तकी कबीर के गुरु

तो हो ही नहीं सकते, हाँ यह हो सकता है कि कबीर कुछ समय तक उनके सत्संग में रहे हों, जैसा कि नीचे लिखे वचनों से भी प्रकट होता है। पर यह स्वयं कबीर के बचन हैं, इसमें भी संदेह है--

'मानिकपुरहि कबीर बसेरी। मदहति सुनि शेख तकि केरी ॥
ऊजी सुनी जौनपुर थाना। झूँसी सुनि पीरन के नामा ॥'

परंतु इसके अनंतर भी वे जीवनपर्यंत राम नाम रटते रहे जो स्पष्टतः रामानंद के प्रभाव का सूचक है; अतएव स्वामी रामानंद को कबीर का गुरु मानने में कोई अड़चन नहीं है; चाहे उन्होंने स्वयं उन्हीं से मंत्र ग्रहण किया हो अथवा उन्हें अपना मानस गुरु बनाया हो। उन्होंने किसी मुसलमान फकीर को अपना गुरु बनाया हो इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

धर्मदास और सुरतगोपाल नाम के कबीर के दो चेले हुए। धर्मदास बनिए थे। उनके विषय में लोग कहते हैं कि वे पहले मूर्तिपूजक थे, उनका कबीर से पहले पहल काशी में साक्षात्कार हुआ था। उस समय कबीर ने उन्हें मूर्तिपूजक होने के कारण खूब फटकारा था। फिर वृंदावन में दोनों की भेंट हुई। उस समय उन्होंने कबीर को पहचाना नहीं; पर बोले--'तुम्हारे उपदेश ठीक वैसे हैं जैसे एक साधु ने मुझे काशी में दिए थे।' इस समय कबीर ने उनकी मूर्ति को, जिसे वे पूजा के लिए सदैव अपने साथ रखते थे, जमुना में डाल दिया। तीसरी बार कबीर स्वयं उनके घर बाँधोगढ़ पहुँचे। वहाँ उन्होंने उनसे कहा कि तुम उसी पत्थर की मूर्ति पूजते हो जिसके तुम्हारे तोलने के बाट हैं। उनके दिल में यह बात बैठ गई और ये कबीर के शिष्य हो गए। कबीर की मृत्यु के बाद धर्मदास ने छत्तीसगढ़ में कबीरपंथ की एक अलग शाखा चलाई और सुरतगोपाल काशीवाली शाखा की गद्दी के अधिकारी हुए। धीरे धीरे दोनों शाखाओं में बहुत भेद हो गया।

कबीर कर्मकांड को पाखंड समझते थे और उसके विरोधी थे; परंतु आगे चलकर कबीरपंथ में कर्मकांड की प्रधानता हो गई। कंठी और जनेऊ कबीरपंथ में भी चल पड़े। दीक्षा से मृत्युपर्यंत कबीरपंथियों को कर्मकांड की कई क्रियाओं का अनुसरण करना पड़ता है। इतनी बात अवश्य है कि कबीरपंथ में जातपाँत का कोई भेद नहीं और हिंदू मुसलमान दोनों धर्म के लोग उसमें सम्मिलित हो सकते हैं। परंतु ध्यान रखने की बात यह है कि कबीरपंथ में जाकर भी हिंदू मुसलमान का भेद नहीं मिट जाता। हिंदू धर्म का प्रभाव इतना व्यापक है कि उससे अलग होने पर भी भारतीय नए नए पंथ उसके प्रभाव से नहीं बच सकते।

कबीर के साथ प्राय: लोई का भी नाम लिया जाता है । कुछ लोग कहते हैं कि यह कबीर की शिष्या थी और आजन्म उनके साथ रही ! अन्य इसे उनकी परिणीता स्त्री बताते हैं और कहते हैं कि इसके गर्भ से कबीर को कमाल नाम का पुत्र और कमाली नाम की पुत्री हुई थी । कबीर ने लोई को संबोधन करके कई पद कहे हैं । एक पद में वे कहते हैं--

गार्हस्थ्य जीवन

रे यामें क्या मेरा क्या तेरा, लाज न मरहिं कहत घर मेरा ।

... ...

कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम विनसि रहेगा सोई ।

इसमें लोई और कबीर का एक घर होना कहा गया है । जिससे लोई का कबीर की स्त्री होना ही अधिक संभव जान पड़ता है । कबीर ने कामिनी की बहुत निंदा की है । संभवत: इसीलिये लोई के संबंध में उनकी पत्नी के स्थान में शिष्या होने की कल्पना की गई है ।

'नारि नसावै तीनि सुख, जा नर पासै होइ ।
भगति मुकति निज ज्ञान में, पैसि न सकई कोई ।।
एक कनक अरु कामिनी, विष फल कीएउ पाइ ।
देखे ही थे विष चढ़े, खाए सूँ मरि जांइ ।।'

परंतु कामिनी कांचन की निंदा के उनके वाक्य वैराग्यावस्था के समझने चाहिए । यह अधिक संगत जान पड़ता है कि लोई कबीर की पत्नी थी जो कबीर के विरक्त होकर नवीन पंथ चलाने पर उनकी अनुगामिनी हो गई । कहते हैं कि लोई एक बनखंडी वैरागी की परिपालिता कन्या थी । वह लोई उस वैरागी को स्नान करते समय लोई में लपेटी और टोकरी में रखी हुई गंगाजी में बहती हुई मिली थी । लोई में लपेटी हुई मिलने के कारण ही उसका नाम लोई पड़ा । बनखंडी वैरागी की मृत्यु के बाद एक दिन कबीर उनकी कुटिया में गए । वहाँ अन्य संतों के साथ उन्हें भी दूध पीने को दिया गया, औरों ने तो दूध पी लिया, पर कबीर ने अपने हिस्से का रख छोड़ा । पूछने पर उन्होंने कहा कि गंगापार से एक साधु आ रहे हैं, उन्हीं के लिये रख छोड़ा है । थोड़ी देर में सचमुच एक साधु आ पहुँचा जिससे अन्य साधु कबीर की सिद्धई पर आश्चर्य करने लगे । उसी दिन से लोई उनके साथ हो ली ।

कबीर की संतति के विषय में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता । कहते हैं कि उनका पुत्र कमाल उनके सिद्धांतों का विरोधी था । इसी से कबीर ने कहा—

'डूबा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल ।
हरि का सुमिरन छाँड़ि के, घर ले आया माल ।

इस दोहे के भी कबीरकृत होने में संदेह ही है। परंतु कमाल के कई पद ग्रंथसाहब में सम्मिलित किए गए हैं।

कबीर के विषय में कई आश्चर्यजनक कथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनसे उनमें लोकोत्तर शक्तियों का होना सिद्ध किया जाता है। महात्माओं के विषय में प्रायः ऐसी कल्पनाएँ की ही जाती हैं यद्यपि इस युग में इस प्रकार की बातों पर शिक्षित और समझदार लोग विश्वास नहीं करते; परंतु फिर भी महात्मा गांधी के विषय में भी असहयोग के समय में ऐसी कई गप्पें उड़ी थीं। अतएव हम उन सबका उल्लेख मात्र करके व्यर्थ इस प्रस्तावना का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं समझते। यहाँ एक ही कथा दे देना पर्याप्त होगा, जिसके लिये कुछ स्पष्ट आधार है।

अलौकिक कृत्य

कहते हैं कि एक बार सिकंदर लोदी के दरबार में कबीर पर अपने आपको ईश्वर कहने का अभियोग लगाया गया। काजी ने उन्हें काफिर बताया और उनको मंसूर हल्लाज की भाँति मृत्युदंड की आज्ञा हुई। बेड़ियों से जकड़े हुए कबीर नदी में फेंक दिए गए। परंतु जिन कबीर को माया मोह की शृंखला न बाँध सकती थी, जिनकी पाप की बेड़ियाँ कट चुकी थीं उन्हें यह जंजीर बाँधे न रख सकी और वे तैरते हुए नदी तट पर आ खड़े हुए। अब काजी ने उन्हें धधकते हुए अग्निकुंड में डलवाया; किंतु उनके प्रभाव से आग बुझ गई और कबीर की दिव्य देह पर आँच तक न आई। उनके शरीरनाश के इस उद्योग के भी निष्फल हो जाने पर उनपर एक मस्त हाथी छोड़ा गया। उनके पास पहुँचकर हाथी उन्हें नमस्कार कर चिग्घाड़ता हुआ भाग खड़ा हुआ। इसका आधार कबीर का यह पद कहा जाता है—

'अहो मेरे गोव्यंद तुम्हारा जोर, काजी बकिवा हस्ती तोर ॥
बाँधि भुजा भले करि डारयौ, हस्ती कोपि सूँड मैं मारयौ ॥
भाग्यो हस्ती चीसा मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी ॥
महावत तोकूँ मारौं साँटी, इसहि मराऊँ घालौं काटी ॥
हस्ती न तोरै धरै धियान, वाकै हिरदै बसै भगवान ॥
कहा अपराध संत हौं कीन्हाँ, बाँधि पोट कुंजर कूँ दीन्हा ॥
कुंजर पोट बहु बंदन करै, अजहूँ न सूझै काजी अँधरै ॥
तीनि बेर पतियारा लीन्हा, मन कठोर अजहूँ न पतीनाँ ॥
कहै कबीर हमारे गोव्यंद, चौथे पद मैं जन को ग्यंद ॥

परंतु यह पद प्राचीन प्रतियों में नहीं मिलता। यदि यह कबीर जी का ही कहा हुआ है तो इस पद से केवल यह प्रकट होता है कि उनको मारने के

तीनों प्रयत्न हाथी के द्वारा किए गए थे, क्योंकि इसमें उनके नदी में फेंके जाने या आग में जलाए जाने का कोई उल्लेख नहीं है।

ग्रंथसाहब में कबीर जी का यह पद भी मिलता है जो गंगा में जंजीर से बाँधकर फेंके जानेवाली कथा से संबंध रखता है।

'गंगा गुसाइन गहिर गँभीर। जंजीर बाँध करि खरे कबीर॥
गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर। मृगछाला पर बैठे कबीर॥

मृत्यु

कबीर का जीवन अंधविश्वासों का विरोध करने में ही बीता था अपनी मृत्यु से भी उन्होंने इसी उद्देश्य की पूर्ति की। काशी मोक्षदापुरी कही जाती है। मुक्ति की कामना से लोग काशीवास करके यहाँ तन त्यागते हैं और मगहर में मरने का अनिवार्य परिणाम या फल नरकगमन माना जाता है। यह अंधविश्वास अब तक चला आता है। कहते हैं कि इसी के विरोध में कबीर मरने के लिये काशी छोड़कर मगहर चले गए थे। वे अपनी भक्ति के कारण ही अपने आपको मुक्ति का अधिकारी समझते थे। उन्होंने कहा भी है—

'जौ काशी तन तजै कबीरा तौ रामहि कहा निहोरा रे।'

इस अंधविश्वास का उन्होंने जगह जगह खंडन किया है—

(क) 'हिरदै कठोर मरया बनारसी नरक न बंच्या जाई।
हरि को दास मरै जो मगहर सेन्या सकल तिहाई॥'

(ख) 'जस कासी तस मगहर ऊसर हृदय रामसति होई।'

आदि ग्रंथ में उनका नीचे लिखा पद्द मिलता है—

'ज्यों जल छाड़ि बाहर भयो मीना। पूरब जनम हौं तप का हीना॥
अब कहु राम कवन गति मोरी। तजिले बनारस मति भइ थोरी॥
बहुत बरष तप कीया कासी। मरनु भया मगहर की बासी॥
कासी मगहर सम बीचारी। ओछी भगति कैसे उतरसि पारी॥
कहु गुर गति सिव संभु को जानै। मुआ कबीर रमता श्री रामै॥'

कबीर के ये वचन मरने के कुछ ही समय पहले के जान पड़ते हैं। आरंभिक चरणों में जो क्षोभ प्रकट किया है, वह इसलिये कि बनारस उनका जन्मस्थान था जो सभी को अत्यंत प्रिय होता है। बनारस के साथ वे अपना संबंध वैसा ही घनिष्ट बतलाते हैं जैसा जल और मछली का होता है। काशी और मगहर को वे अब भी समान समझते थे। अपनी मुक्ति के संबंध में उन्हें तनिक भी संदेह नहीं था, क्योंकि उन्हें परमात्मा की सर्वज्ञता में अटल

विश्वास था, 'शिव सम को जानै' और राम का नाम जाप करते करते वे शरीर त्याग ने जा रहे थे 'मुआ कबीर रमत श्री राम।'

उनकी अंत्येष्टि क्रिया के विषय में एक बहुत ही विलक्षण प्रवाद प्रसिद्ध है। कहते हैं हिंदू उनके शव का अग्निसंस्कार करना चाहते थे और मुसलमान उसे कब्र में गाड़ना चाहते थे। झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि तलवारें चलने की नौबत आ गई। पर हिंदू मुसलिम ऐक्य के प्रयासी कबीर की आत्मा यह बात कब सहन कर सकती थी। आत्मा ने आकाशवाणी की 'लड़ो मत! कफन उठाकर देखो।' लोगों ने कफन उठाकर देखा तो शव के स्थान पर एक पुष्प राशि पाई गई, जिसको हिंदू मुसलमान दोनों ने आधा आधा बाँट लिया। अपने हिस्से के फूलों को हिंदुओं ने जलाया और उनकी राख को काशी ले जाकर समाधिस्थ किया। वह स्थान अब तक कबीरचौरा के नाम से प्रसिद्ध है। अपने हिस्से के फूलों के ऊपर मुसलमानों ने मगहर ही में कब्र बनाई। यह कहानी भी विश्वास करने योग्य नहीं है, परंतु इसका मूल भाव अमूल्य है।

तात्विक सिद्धांत

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कबीर ने चाहे जिस प्रकार हो रामानंद से रामनाम की दीक्षा ली थी; परंतु कबीर के राम रामानंद के राम से भिन्न थे। वे 'दुष्टदलन रघुनाथ' नहीं थे जिनके सेवक 'अंजनिपुत्र : महाबलदायक, साधु संत पर सदा सहायक' थे। राम से उनका अभिप्राय कुछ और ही था।

'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम का मरम है आना॥'

राम से उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्म से है। उन्होंने 'निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई' का उपदेश दिया है। उनकी रामभावना भारतीय ब्रह्म भावना से सर्वथा मिलती है। जैसा कि कुछ लोग भ्रमवश समझते हैं, वे ब्राह्यार्थवादमूलक मुसलमानी एकेश्वरवाद या खुदावाद के समर्थक नहीं थे। निरगुण भावना भी उनके लिये स्थूल भावना है जो मूर्तिपूजकों की सगुण भावना के विरोधोपक्ष का प्रदर्शन मात्र करती है। उनकी भावना इससे भी अधिक सूक्ष्म है। वे राम, को सगुण और निर्गुण दोनों समझते हैं।

'अला एकै नूर उपनाया ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थैं जग कीया कौन भला कौन मंदा॥'

यह मुसलमानों की ही तर्कशैली का आश्रय लेकर 'खुदा के बंदों और 'काफिरों की एकता प्रतिपादन करने के लिये कहा जान पड़ता है, मुसलमानी मत के समर्थन में नहीं, क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है—

'खालिक खलक, खलक में खालिक सब घट रह्यो समाई ।'
जो भारतीय ब्रह्म भावना के ही परम अनुकूल है ।

कबीर केवल शब्दों को लेकर झगड़ा करनेवाले नहीं थे । अपने भाव व्यक्त करने के लिये उन्होंने उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि सभी शब्दों का उपयोग किया है । अपने भाव प्रकट करने भर से उन्होंने मतलब रखा है । शब्दों के लिये वे विशेष चिंतित नहीं दिखाई देते । ब्रह्म के लिये, राम, रहीम, अल्ला, सत्यनाम, गोव्यंद, साहब, आप आदि अनेक शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया है । उन्होंने कहा भी है 'अपरंपार का नाउँ अनंत ।' ब्रह्म के निरूपण के लिये शब्दों के प्रयोग में जो अत्यंत शुद्धता और सावधानी बहुत आवश्यक है, कबीर में उसे पाने की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि कबीर का तत्वज्ञान दार्शनिक ग्रंथों के अध्ययन का फल नहीं है, वह उनकी अनुभूति और सारग्राहिता का प्रसाद है। पढ़े लिखे तो वे थे ही नहीं, उन्होंने जो कुछ ज्ञानसंचय किया, वह सब सत्संग और आत्मानुभव से था। हिंदू मुसलमान सभी संत फकीरों का इन्होंने समागम किया था, अतएव हिंदू भावों के साथ इनमें मुसलमानी भाव भी पाए जाते हैं । यद्यपि इनकी रचनाओं में भारतीय ब्रह्मवाद का पूरा पूरा ढाँचा पाया जाता है, तथापि उसकी प्रायः वे ही बातें इन्होंने अधिक विस्तृत रूप से वर्णन के लिये उठाई हैं जो मुसलमानी एकेश्वरवाद के अधिक मेल में थीं । इनका ध्येय सर्वदा हिंदू मुस्लिम ऐक्य रहा है, यह भी इसका एक कारण है ।

स्थूल दृष्टि से तो मूर्तिद्रोही एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजक बहुदेववाद में बहुत बड़ा अंतर है, परंतु यदि सूक्ष्मदृष्टि से विचार किया जाय तो उनमें उतना अंतर नहीं देख पड़ेगा, जितना एकेश्वरवाद और ब्रह्मवाद में है, वरन् सारतः वे दोनों एक ही हैं, क्योंकि बहुत से देवी देवताओं को अलग अलग मानना और सबके गुरु गोवर्धनदास एक ईश्वर को मानना एक ही बात है। परंतु ब्रह्मवाद का मूलाधार ही भिन्न है । उसमें लेशमात्र भी भौतिकवाद नहीं है, वह जीवात्मा, परमात्मा और जड़ जगत् तीनों की भिन्न सत्ता मानता है, जब कि ब्रह्मवाद शुद्ध आत्मतत्व अर्थात् चैतन्य के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं मानता। उसके अनुसार आत्मा भी परमात्मा ही है जड़ जगत भी ब्रह्म है । कबीर में भौतिक या वाह्यार्थवाद कहीं मिलता ही नहीं और आत्मवाद की उन्होंने स्थान स्थान पर अच्छी झलक दिखाई है ।

ब्रह्म ही जगत् में एकमात्र सत्ता है, इसके अतिरिक्त संसार में और कुछ नहीं है । जो कुछ है, ब्रह्म ही है । ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति होती है और फिर उसी में सब लीन हो जाते हैं । कबीर के शब्दों में---

'पाणी हीं ते हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कह्या न जाइ॥'

विश्वविस्तृत सृष्टि और ब्रह्म का संबंध दिखाने के लिये ब्रह्मवादी दो उदाहरण दिया करते हैं। जिस प्रकार एक छोटे से बीज के अंदर वट का बृहदाकार वृक्ष अंतर्हित रहता है उसी प्रकार यह सृष्टि भी ब्रह्म में अंतर्हित रहती है; और जिस प्रकार दूध में घी व्याप्त रहता है उसी प्रकार ब्रह्म भी इस अंडकटाह में सर्वत्र व्याप्त रहता है। कबीर ने इसे इस तरह कहा है—

'खालिक खलक, खलक में खालिक सब जग रह्यो समाई।'

सर्वव्यापि ब्रह्म जब अपनी लीला का विस्तार करता है तब इस नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है, जिसे वह इच्छा होने पर अपने ही में समेट लेता है—

'इन मैं आप आप सबहिन में आप आप सूँ खेलै।
नाना भाँति घड़े सब भाँड़े रूप धरे धरि मेलै॥'

वेदांत में नामरूपात्मक जगत् से ब्रह्म का संबंध और कई प्रकार से प्रकट किया जाता है, जिनमें से एक प्रतिबिंबवाद है जिसका कबीर ने भी सहारा लिया है। प्रतिबिंबवाद के अनुसार ब्रह्म बिंब है और नामरूपात्मक दृश्य जगत् उसका प्रतिबिंब है। कबीर कहते हैं—

खंडित मूल विनास कहौ किम बिगतह कीजै।
ज्यूं जल मैं प्रतिव्यंब, त्यूँ सकल रामहिं जाणीजै॥'

'जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में है' कहकर भी ब्रह्म का निरूपण किया जाता है परंतु केवल वाक्य के आश्रय से बननेवाले ज्ञानियों को इससे भ्रम हो सकता है कि पिंड और ब्रह्मांड ब्रह्म की अवस्थिति के लिये आवश्यक हैं। ऐसे लोगों के लिये कबीर कहते हैं—

प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोई॥'

वेदांत के 'कनककुंडलन्याय' के अनुसार जिस प्रकार सोने से कुंडल बनता है और उस कुंडल के टूटटाट अथवा पिघल जाने पर पर वह सोना ही रहता है, उसी प्रकार नामरूपात्मक दृश्यों की उत्पत्ति ब्रह्म से होती है और ब्रह्म ही में वे समा जाते हैं—

'जैसे बहु कंचन के भूषन ये कहि गालि तवावहिंगे।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे सुन्निहि माँहि समायहिंगे॥'

इसी प्रकार का जलतरंग-न्याय भी है—

'जैसे जलहि तरंग तरंगनी ऐसे हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर हंसहिं हंस मिलायहिंगे॥'

एक और तरह से कबीर ने भारतीय पद्धति से यह संबंध प्रदर्शित किया है—

'जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समानां, यह तत कथौ गियानी ॥'

यह नामरूपात्मक दृश्य जो चर्म चक्षुओं को दिखाई देता हैं, जल में का घड़ा है जिसके बाहर भी ब्रह्मरूप वारि है और अंदर भी। बाह्य रूप का नाश हो जाने पर घड़े के अंदर का जल जिस प्रकार बाहरवाले जल में मिल जाता है उसी प्रकार बाह्य रूप के अभ्यंतर का ब्रह्म भी अपने बाह्यस्थ ब्रह्म में समा जाता है ।

सब प्रकार से यही सिद्ध किया गया है कि परिवर्तनशील नाशवान् दृश्यों का अध्यारोप जिस एक अव्यय तत्व पर होता है, वही वास्तव है । जो कुछ दिखाई देता है, वह असत्य है, केवल मायात्मक भ्रांतिज्ञान है । यह बात कबीर ने स्पष्ट ही कह दी है—

'संसार ऐसा सुपिन जैसा जीव न सुपिन समान ।'

जो मनुष्य माया के इस प्रसार को सच्चा समझकर उसमें लिपट जाता है उसे शुद्ध हंस स्वरूप जीव अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

बुद्धदेव के 'दुःख का सत्य' सिद्धांत के समान ही कबीर का भी सिद्धांत है कि यह संसार दुःख ही का घर है—

'दुनियाँ भांड़ा दुःख का भरी मुँहामुँह मूष ।
अदया अलह राम की कुरहै ऊँणी कूष ॥'

संसार का यह दुःख मायाकृत है परंतु जो लोग माया में लिपटे रहते हैं वे इस दुःख में पड़े हुए भी उसे समझ नहीं सकते । इस दुःख का ज्ञान उन्हीं को हो सकता है जिन्होंने मायात्मक अज्ञानावरण हटा दिया है । माया में पड़े हुए लोग तो इस दुःख को सुख ही समझते हैं—

'सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै ।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवै ॥

कबीर का दुःख अपने लिये नहीं है, वे अपने लिये नहीं रोते, संसार के लिये रोते हैं क्योंकि उन्होंने साईं के सब जीवों के लिये अपना अस्तित्व समर्पित कर दिया था, संसार के लिये ईसामसीह की तरह उन्होंने अपने आपको मिटा दिया था ।

माया में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी ही बात सोचता रहता है, इसी से वह परमात्मा को नहीं पा सकता । परमात्मा को पाने के लिये इस 'ममता' को छोड़ना पड़ता है—

'जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं ।

इसीलिये ज्ञानी माया का त्याग आवश्यक बताते हैं। परंतु माया का त्याग कुछ खेल नहीं है। बाहर से वह इतनी मधुर जान पड़ती है कि उसे छोड़ते ही नहीं बनता—

'मीठी मीठी माया तजी न जाई।
अग्यानी पुरिष को भोलि भोलि खाई॥'

माया ही विषय वासनाओं को जन्म देती है—

'इक डाइन मेरे मन बसै। नित उठि मेरे जिय को डसै॥
या डाइन के लरिका पाँच रे। निसि दिन मोहि नचावै नाच रे॥'

माया के पाँच पुत्र काम, क्रोध लोभ, मोह, मद और मत्सर हैं। मनुष्य के अधःपात के कारण ये ही हैं। आत्मा की परमात्मिकता को यही व्यवधान में डालते हैं। अतएव परम तत्वार्थियों को इनसे सावधान रहना चाहिए—

'पंच चोर गढ़ मंभा, गढ़ लूटै दिवस अरु संझा।
जो गढ़पति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई॥'

माया ही पाखंड की जननी है। अतएव माया का उचित स्थान पाखंडियों के ही पास है। इसलिये माया को संबोधन कर कबीर कहते हैं—

'तहाँ जाहु जहँ पाट पटंबर, अगर चंदन घसि लीना।'

कर्मकांड को भी कबीर पाखंड ही के अंतर्गत मानते हैं क्योंकि परमात्मा की भक्ति का संबंध मन से है, मन की भक्ति तन को स्वयं ही अपने अनुकूल बना लेगी, भक्ति की सच्ची भावना होने से कर्म भी अनुकूल होने लगेंगे परंतु केवल बाहरी माला जपने अथवा पूजापाठ करने से कुछ नहीं हो सकता। यह तो मानो और भी अधिक माया में पड़ना है—

'जप तप पूजा अरचा जोतिग जग बौराना।
कागद लिखि लिखि जगत भुलाना मन ही मन न समाना॥'

इसीलिये कबीर ने 'कर का मनका छाँड़ि के, मन का मनका फेर' का उपदेश दिया है। उनका मत है कि जो माया ऋषि, मुनि दिगंबर, जोगी और वेदपाठी ब्राह्मणों को भी धर पछाड़ती है, वही 'हरि भगत कै चेरी' है। काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, मत्सर आदि माया के सहचारियों का मिट जाना 'हरि भजन' का आवश्यक अंग है—

'राम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नाहीं।
सत संतोष लीयै रहैं, धीरज मन माहीं॥
जन कौं काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णा न जरावै।
प्रफुलित आनंद मै, गोब्यंद गुण गावै॥'

माया से बचने का एक उपाय जो भक्तों को बताया गया है, वह संसार से विमुख रहना है। जैसे उलटा घड़ा पानी में नहीं डूबता परंतु सीधा घड़ा

भरकर डूब जाता है, वैसे ही संसार के संमुख होने से मनुष्य माया में डूब जाता है, परंतु संसार से विमुख होकर रहने से माया का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता—

'औंधा घड़ा न जल मैं डूबे, सूधा सूभर भरिया।
जाकौं यह जग घिन करि चालै, ता प्रसादि निस्तरिया ॥'

माया का दूसरा नाम अज्ञान है। दर्पण पर जिस प्रकार काई लग जाती है, उसी प्रकार आत्मा पर अज्ञान का आवरण पड़ जाता है जिससे आत्मा में परमात्मा का प्रदर्शन अर्थात् आत्मज्ञान दुर्लभ हो जाता है अतएव आत्मा रूपी दर्पण को निर्मल रखना चाहिए--

'जो दरसन देख्या चाहिए, तौ दरपन मंजत रहिए।
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ॥'

दरपन का यही माँजना हरिभक्ति करना है। भक्ति ही से मायाकृत अज्ञान दूर होता है और ज्ञानप्राप्ति के द्वारा अपने पराए का भेद मिटता है--

उचित चेति च्यंति लै ताहीं। जा च्यंत आपा पर नाहीं ॥
हरि हिरदै एक ग्यान उपाया। ताथै छूट गई सब माया।'

इस पद में 'च्यंति' शब्द विचारणीय है क्योंकि यह कबीर की भक्ति की विशेषता प्रकट करता है। यह कहना अधिक उचित होगा कि ज्ञानियों की ब्रह्मजिज्ञासा और वैष्णवों की सगुणभक्ति की विशेष विशेष बातों को लेकर कबीर ने अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया अथवा वैष्णवों के तात्विक सिद्धांतों और व्यावहारिक भक्ति के मिश्रण से कबीर की भक्ति का उद्भव हुआ है। सिद्धांत और व्यवहार में, कथनी और करनी में भेद रखना कबीर के स्भाव के प्रतिकूल है। वैष्णवों में सदा से सिद्धांत और व्यवहार में भेद रहा है। सिद्धांत रूप से रामानुज जी ने विशिष्टाद्वैत वल्लभाचार्य जी ने शुद्धाद्वैत और माधवाचार्य ने द्वैत का प्रचार किया; पर व्यवहार के लिये सगुण भगवान की भक्ति का ध्येय ही सामने रखा गया।

सिद्धांत पक्ष का अज्ञेय ब्रह्म व्यवहार पक्ष में जाने बूझे मनुष्य के रूप में आ बैठा। हम दिखला चुके हैं कि कबीर अपने को वैष्णव समझते थे। परंतु सिद्धांत और व्यवहार का, कथनी और करनी का भेद वे पसंद नहीं कर सकते थे, अतएव उन्होंने दोनों का मिश्रण कर अपनी निर्गुणभक्ति का भवन खड़ा किया जिसका मुसलमानी खुदावाद से भी बाहरी मेल था।

ज्ञानमार्ग के अनुसार निर्गुण निराकार ब्रह्म शुष्क चिंतन का विषय है। कबीर ने इस शुष्कता को निकालकर प्रेमपूर्ण चिंतन की व्यवस्था की है।

कबीर के इस प्रेम के दो पक्ष हैं, पारमार्थिक और ऐहिक। पारमार्थिक अर्थ में प्रेम का अर्थ लगन है, जिसमें मनुष्य अपनी वृत्तियों को संसार की सब वस्तुओं से विमुख करके समेट लेता है और केवल ब्रह्म के चिंतन में लगा देता है तथा ऐहिक पक्ष में उसका अभिप्राय संसार के सब जीवों से प्रेम और दया का व्यवहार करना है।

जिन्हें ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है केवल वे ही अमर हैं; जन्ममरण का भय उन्हें नहीं रह जाता। उनके अतिरिक्त और सब नश्वर हैं। कबीरदास कहते हैं कि मुझे ब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है, इसीलिये वे अपने आप को अमर समझते हैं—

'हम न मरैं मरिहै संसारा, हम कूँ मिल्या जिवावनहारा।
अब न मरौं मरनै मन मानां, तेई मुए जिन राम न जाना॥'

मनुष्य की आत्मा ब्रह्म के साथ एक है और ब्रह्म ही एकमात्र चिरस्थायी सत्ता है, जिसका नाश नहीं हो सकता। अतएव मनुष्य की आत्मा का भी नाश नहीं हो सकता, यहीं कबीर के अस्तित्व का रहस्य है—

'हरि मरिहै तौ हम मरिहैं, हरि न मरै हम काहे कूँ मरिहैं।'

परंतु साक्षात्कार के पहले इस अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। परंतु उस प्रेम का मिलना सहज नहीं है, यह व्यक्तिगत साधना ही से उपलब्ध हो सकता है। यह पूर्ण आत्मोत्सर्ग चाहता है—

'कबीर भाटी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहि तो पिया न जाइ॥'

जब मनुष्य आत्मोत्सर्ग की इस चरम सीमा पर पहुँच जाता है, तब उसके लिये यह प्रेम अमृत हो जाता है—

'नीझर झरै अमीरस निकसै तिहि मदिरावलि छाका।'

इस प्रेमरूप मदिरा को मनुष्य यदि एक बार भी पी लेता है तो जीवन-पर्यंत उसका नशा नहीं उतरता और उसे अपने तन मन की सब सुध बुध भूल जाती है

हरि रस पीया जानिए, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत रहै, नाहीं तन की सार॥'

यह परमानंद की अवस्था है, जिसमें मनुष्य का लौकिक अंश, जो अज्ञानावस्था में प्रधान रहता है, किसी गिनती में नहीं रह जाता; उसे अपने में अंतर्हित आत्मतत्व का ज्ञान हो जाता है और उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य की अनुभूति हो जाती है। इसी को साक्षात्कार होना कहते हैं। यह साक्षात्कार हो जाने पर अर्थात् ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने पर मनुष्य ब्रह्म ही

हो जाता है--ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति । उपनिषद् के 'तत्त्वमसि' अथवा 'सोऽहं' भाव का यही रहस्य है ।

'तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखीं तित तूँ ॥

यह सच है कि ऐतिहासिक अर्थ में निराकार निर्गुण ब्रह्म प्रेम का आलंबन नहीं हो सकता, केवल चिंतन का ही विषय हो सकता है, परंतु उस निराकार की इस विश्वविस्तृत सृष्टि में उस मूल तत्व की सत्ता का जो आभास मिल जाता है उसके कारण निर्गुण संसार के समस्त प्राणियों को अपने प्रेम और दया का पात्र बना लेता है, जब कि सगुण भक्त की बहुत कुछ भावुकता ठाकुर जी की मूर्ति के बनाव शृंगार और उनके भोगराग के आडंबर ही में व्यय हो जाती है। इसी प्रेम ने कबीर को ऊँच नीच का भेदभाव दूर कर सबकी एकता प्रतिपादित करने की प्रेरणा दी थी ।

'एक बूंद एक मल मूतर एक चाम एक गूदा ।
एक जाति थै सब उपजा कौन बाह्मन कौन सूद्रा ॥'

जातिपांति का ही नहीं इसी से धर्माधर्म का भेद भी उन्हें अवास्तविक जँचा---

'कहैं कबीर एक राम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई ।'

कबीर का प्रेम मनुष्यों तक ही परिमित नहीं है, परमात्मा की सृष्टि के सभी जीव जंतु उसकी सीमा के अंदर आ जाते हैं; क्योंकि 'सबै जीव साईं के प्यारे हैं।' अँगरेजी के कवि कॉलरिज ने भी यही भाव इस प्रकार प्रकट किया है---

'ही प्रेथ बेस्ट हू लव्थ बेस्ट,
आल थिंग्स बोथ ग्रेट ऐंड स्माल;
फार दि डियर गॉड हू लव्थ अस,
ही मेड ऐंड लव्थ आल।'

कबीर का यह प्रेमतत्व, जिसका ऊपर निरूपण किया गया है, सूफियों के संसर्ग का फल है परंतु उसमें भी उन्होंने भारतीयता का पुट दे दिया है। सूफी परमात्मा को प्रियतमा के रूप में देखते हैं। उनके 'मजनूं को अल्लाह भी लैला नजर आता है' परंतु कबीरदास ने परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखा है जो भारतीय माधुर्य भाव के सर्वथा मेल में है। फारस में विरह-व्यथा, पुरुषों के मत्थे और भारत में स्त्रियों के ही मत्थे अधिक मढ़ी जाती है। वहाँ प्रेमी प्रिया को अपना प्रेम बताने के लिये उत्कट उद्योग करते हैं, और यहाँ प्रेमिका विरह से व्याकुल होकर मुरझाए हुए फल की तरह अपनी सत्ता तक मिटा देती है। इसी से वहाँ उपासक को पुरुष रूप में और यहाँ

स्त्री रूप में भावना की गई है। परंतु कबीर के सूफियाना भावों में भारतीयता कूट कूटकर भरी हुई है।

इस प्रकार निर्गुणवाद और सगुणवाद की एकेश्वरवाद से बाहरी समता रखनेवाली बातों के संमिश्रण और उसके प्रेमतत्व के योग से कबीर की भक्ति का निर्माण हुआ। कबीर का विश्वास है कि भक्ति से मुक्ति हो जाती है--

'कहै कबीर संसा नाहीं भगति मुगति गति पाई रे !'

परंतु भक्ति निष्काम होनी चाहिए। परमात्मा का प्रेम अपस्वार्थ की पूर्ति का साधन नहीं है, मनुष्य को यह न सोचना चाहिए कि उससे मुझे कोई फल मिलेगा। यदि फल की कामना हो गई, तो वह भक्ति भक्ति न रह गई और न उससे सत्य की प्राप्ति ही हो सकती है--

'जब लग है बैकुंठ की आशा। तब लग न हरि चरन निवासा ॥'

ब्रह्म लौकिक वासनाओं से परे है। व्यक्तिगत उच्चतम साधना से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है, वह स्वयं भक्त के लिये विशेष चिंतित नहीं रहता। क्योंकि भक्त भी ब्रह्म ही है। वह किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता, उसे अपने ब्रह्मत्व की अनुभूति भर कर लेनी पड़ती है जो, जैसा कि हम देख चुके हैं, कोई खेल नहीं है। इसीलिये ब्रह्म को अवतार धारण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। जो कबीर मनुष्य से ऐहिक अंश छुड़ाकर उसे ब्रह्मत्व तक पहुँचाना चाहते हैं, उनकी ब्रह्म में लौकिक भावनाओं का समावेश करके उसका अतःपात करने की व्यग्रता स्वाभाविक ही है--

'ना दसरथ घरि औतरि आवा, लंका का राव सतावा।
देवै कूष न औतरि आवा, ना जसवै गोद खिलावा ॥
ना वो ग्वालन के संग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया।
बावन होय नहीं बलि छलिया, धरनी बेद ले न उधरिया ॥
गंडक सालिकराम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला।
बद्री बैस्य ध्यान नहि लावा, परसराम ह्वै खत्री न सँतावा ॥

प्रतिमापूजन के वे घोर विरोधी थे। जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं, देशकाल का जिसके लिये कोई आधार आवश्यक नहीं, उसकी मूर्ति कैसी ? जगह जगह पर उन्होंने मूर्तिपूजा के प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित की है--

'हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डारचा सिर थैं बोझ ॥
सेवैं सालिगराम कूँ मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपिनै नहीं, दिन दिन अधकी लाइ ॥

जिसका आकार नहीं, उसकी मूर्ति का सहारा लेकर उसकी प्राप्ति का प्रयत्न वैसा ही है जैसा झूठ के सहारे सच तक पहुँचने का प्रयत्न। असत्य से मन की भ्रांति बढ़ेगी ही, घट नहीं सकती; और उससे जिज्ञासा की तृप्ति होना तो असंभव ही है।

मूर्तिपूजा में भगवान् की मूर्ति को जो भोग लगाने की प्रथा है, उसकी वे इस तरह हँसी उड़ाते हैं--

'लाडू लावर लापसी पूजा चढ़े अपार।
पूजि पुजारा ले चला दे मूरति के मुख छार॥'

यद्यपि कबीर अवतारवाद और मूर्तिपूजा के विरोधी थे, तथापि हिंदूमत की कई बातें वे पूर्णतया मानते हैं। हिंदुओं का जन्म-मरण-संबंधी सिद्धांत वे मानते हैं। मुसलमानों की तरह वे एक ही जन्म नहीं मानते, जिसके बाद मरने पर प्राणी कब्र में पड़ा पड़ा कयामत तक सड़ा करता है, जब तक कि प्राणी पुनरुज्जीवित होकर खुदावंद करीम के सामने अपने अपने कर्मों के अनुसार अनंत काल तक दोजख की आग में जलने अथवा बिहिश्त में हूरों और गिलमों का सुख भोगने के लिये पेश किए जायँ। एक स्थान पर, उबरहुगे किस बोले' कह कर कबीर ने इसी विश्वास की ओर संकेत किया है। परंतु यह उन्होंने बोलचाल के ढंग पर कहा है, सिद्धांत के रूप में नहीं। ये बातें कुछ उसी प्रकार कही गई हैं, जिस प्रकार सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के घूमने के कारण दिन रात का होना मानने पर भी साधारण बोल चाल में यह कहना कि 'सूर्य उगता है'। सिद्धांत रूप से वे अनेक जन्म मानते हैं। 'जनम अनेक गया अरु आया'। इस जन्म में जो कुछ भोगना पड़ता है वह पूर्व जन्म के कर्मों का ही फल है, 'देखौ कर्म कबीर का कछू पूरब जनम का लेखा'। कबीर ने यह तो कहा है कि सृष्टि के सृजन और लय का कारण परमात्मा है, परंतु उन्होंने यह नहीं कहा कि सृष्टि की रचना कैसे और किस क्रम से हुई है, कौन तत्व पहले हुआ और कौन पीछे। इस विषय में वे शंका मात्र उठाकर रह गए हैं, उसका समाधान उन्होंने नहीं किया--

'प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पवन कि पांणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू प्रथमे कौन बिनांणी॥
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत की रेंत।
प्रथमे पुरिष की नारी प्रथमे प्रभू प्रथमे, बीज की खेत॥
प्रथमे दिवस कि रैंणि प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुण्यं।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कछू आहि कि सुन्यं॥'

ऊपर हमने कबीर की रचना में वेदांतसंमत अद्वैतवाद की एक पूरी पूरी पद्धति के दर्शन किए हैं, जिसे हम शुद्धाद्वैत नहीं मान सकते। शुद्धाद्वैत में माया ब्रह्म की ही शक्ति मानी जाती है, परंतु कबीर ने माया को मिथ्या या भ्रममात्र माना है, जिसका कारण अज्ञान है। यह शंकर का अद्वैत है, जिसमें आत्मा और परमात्मा परमार्थतः एक माने जाते हैं, परंतु बीच में अज्ञान के आ पड़ने से आत्मा अपनी पारमार्थिकता को भूल जाती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर अज्ञानकृत भेद मिट जाता है और आत्मा को अपनी पारमात्मिकता की अनुभूति हो जाती है। यही बात हम कबीर में देख चुके हैं।

परंतु उनपर समय और परिस्थितियों का अलक्ष्य प्रभाव भी पड़ा था, जिसके कारण वे असावधानी में ऐसी बातें भी कह गए हैं जो उनके अद्वैत सिद्धांत से मेल नहीं खातीं। उन्होंने स्थान स्थान पर अवतारवाद का विरोध ही किया है, परंतु उनके नीचे लिखे पद से अवतारवाद का समर्थन भी होता है—

'बांधि मारि भावै देह जारि जौ, हूं राम छाड़ौं तौ मेरे गुरहि गारि।
तब काढ़ि खड्ग कोप्यो रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ॥
खंभा में प्रगट्यो गिलारि, हरनाकस मार्यो नख बिदारि।
महा पुरुष देवाधिदेव, नरस्यंध प्रकट किए भगति भेव॥
कहै कबीर कोई लहै न पार; प्रहिलाद उबार्यो अनेक बार।'

बात यह है कि उपासना के लिये उपास्य में कुछ गुणों का आरोप आवश्यक होता है, बिना गुणों के प्रेम का आलंबन हो ही नहीं सकता। उपनिषदों तक में निराकार निर्गुण ब्रह्म में उपासना के लिये गुणों का आरोप किया गया है। एकेश्वरवादी धर्मों में जहाँ कट्टरपन ने परमात्मा में गुणों का आरोप नहीं करने दिया, वहाँ परमात्मा और मनुष्य के बीच में एक और मनुष्य का सहारा लिया गया है। ईसाइयों को ईसा और मुसलमानों को मुहम्मद का अवलंबन ग्रहण करना पड़ा। भक्ति झोंक में कबीर भी जब सांसारिक प्रेममूलक संबंधों के द्वारा परमात्मा की भावना करने लगे, तब परमात्मा में स्वयं ही गुणों का आरोप हो गया। माता पिता और प्रियतम निर्जीव पत्थर नहीं हो सकते। माता के रूप में परमात्मा की भावना करते हुए वे कहते हैं।

'हरि जननी मैं बालिक तेरा। कस नहिं बकसहु अवगुण मेरा!'

अवतारवाद में यही सगुणवाद पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ है।

कबीर में कई बात ऐसी भी हैं, जिसमें दिखाई देनेवाला विरोध केवल भाषा की असावधानी से आया है। कबीर शिक्षित नहीं थे, इसलिये उनकी रचनाओं में यह दोष क्षम्य है।

कबीरदासजी ने धार्मिक सिद्धांतों के साथ साथ उनकी पुष्टि के लिये अनेक स्थानों पर अलौकिक आचरण अथवा व्यवहारों का वर्णन किया है।

व्यावहारिक सिद्धांत

यदि उनकी वाणी का पूरा पूरा विवेचन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा कि उनकी साखियों का विशेष संबंध लौकिक आचरणों से है तथा पदों का संबंध विशेष कर धार्मिक सिद्धांतों तथा अंशतः लौकिक आचरण से है। लौकिक आचरण की इन बातों को भी दो भागों में विभक्त कर सकते हैं, कुछ तो निवृत्तिमूलक हैं और कुछ प्रवृत्तिमूलक।

कबीर स्वतंत्र प्रकृति के मनुष्य थे। उनके चारों ओर शारीरिक दासता का घेरा पड़ा हुआ था। वे इस बात का अनुभव करते थे कि शारीरिक स्वातंत्र्य के पहले विचार स्वातंत्र्य आवश्यक है। जिनका मन ही दासता की बेड़ियों से जकड़ा हो, वह पैरों की जंजीरें क्या तोड़ सकेगा। उन्होंने देखा था कि लोग नाना प्रकार के अंधविश्वासों में फँसकर हीन जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अतः लोगों को इसी से मुक्त करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों के रोजा, नमाज, हज, ताजिएदारी, और हिंदुओं के श्राद्ध, एकादशी, तीर्थव्रत, मंदिर सबका उन्होंने विरोध किया है। कर्मकांड की उन्होंने भर पेट निंदा की है। इस बाहरी पाखंड के लिये उन्होंने हिंदू मुसलमान दोनों को खूब फटकारें सुनाई हैं। धर्म को वे आडंबर से परे एकमात्र सत्य सत्ता मानते थे, जिसके हिंदू मुसलमान आदि विभाग नहीं हो सकते। उन्होंने किसी नाम-धारी धर्म के बंधन में अपने आपको नहीं डाला और स्पष्ट कह दिया है कि मैं न हिंदू हूँ न मुसलमान।

जिस सत्य को कबीर धर्म मानते हैं, वह सब धर्मों में है। परंतु इस सत्य को सबने मिथ्या विश्वास और पाखंड से परिच्छिन्न कर दिया है। इस बाहरी आडंबर को दूर कर देने से धर्मभेद के समस्त झगड़े, बखेड़े दूर हो जाते हैं, क्योंकि उससे वास्तव में धर्मभेद ही नहीं रह जाता। फिर तो हिंदू मुस्लिम ऐक्य का प्रश्न स्वयं ही हल हो जाता है। पर एक अलग धार्मिक संप्रदाय के रूप में कबीरपंथ तो कबीर के मूल सिद्धांतों के वैसे ही विरुद्ध है जैसे हिंदू और मुसलमान धर्म, जिनका उन्होंने जी भर खंडन किया है।

धार्मिक सुधार और समाजसुधार का घनिष्ठ संबंध है। धर्मसुधारक को समाजसुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाजसुधार के लिये अपनी वाणी का उपयोग किया है। हिंदुओं की जातिपाँति, छूआछूत, खानपान आदि के व्यवहारों और मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने, मुसलमानी आदि कराने का उन्होंने चुभती भाषा में विरोध किया है और इनके विषय

में हिंदू मुसलमान दोनों की जी भरकर धूल उड़ाई है। हिंदुओं के चौके के विषय में वे कहते हैं—

'एकै पवन एक ही पांणी करी रसोई न्यारी जानी।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ धूँ छोती॥
धरती लीपि पवितर कीन्हीं, छोति उपाय लीक बिचि दीन्हीं।
याका हम सूँ कहो विचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इहि आचारा॥

छूआछूत का उन्होंने इन शब्दों में खंडन किया है—

'काहैं कौ कीजै पाँडे छोति विचारा। छोतिहिं ते उपना संसारा॥
हमारे कैसैं लोहू तुम्हारे कैसैं दूध। तुम्ह कैसैं ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।
छोति छोति करता तुम्हहीं जाए। तौ ग्रभवास काहे को आए॥
जनमत छोति मरत ही छोति। कहै कबीर हरि की निर्मल जोति।

जन्म ही से कोई द्विज या शूद्र अथवा हिंदू या मुसलमान नहीं हो सकता। इसकी कबीर ने कितने सीधे किंतु मन में जम जानेवाले ढंग से कहा है—

'जौ तूँ बाँभन बंभनी जाया। तौ आन वाट ह्वै क्यों नहिं आया।
'जौ तूँ तुरक तुरकनीं जाया। तौ भीतर खतना क्यों न कराया॥'

उच्चता और नीचता का संबंध उन्होंने व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा है क्योंकि कोई व्यवसाय नीच नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उन्होंने कहीं संकोच नहीं किया और वे स्वयं आजीवन जुलाहे का व्यवसाय करते रहे। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे जो हाथ पाँव समेट कर पेट भरने के लिये समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। वे परिश्रम का महत्व जानते थे और अपनी आजीविका के लिये अपने हाथों का आसरा रखते थे।

परंतु अपनी आजीविका भर से वे मतलब रखते थे, धन संपत्ति जोड़ना वे उचित नहीं समझते थे। थोड़े ही में संतोष करने का उन्होंने उपदेश दिया है। जो कुछ वे दिन भर में कमाते थे, उसका कुछ अंश अवश्य साधु-संतों की सेवा में लगाते थे, और कभी कभी सब कुछ उनकी सेवा में अर्पित कर डालते और आप निराहार रह जाते थे। कहते हैं, कि एक दिन वे गाढ़े का एक थान बेचने के लिये हाट गए। वस्त्र के अभाव से दुखी एक फकीर को देखकर उन्होंने उसमें से आधा उसे दे दिया। पर जब फकीर ने कहा कि मेरा तन ढकने के लिये वह काफी नहीं है, तब उन्होंने सारा उसे ही दे डाला और खाली हाथ घर चले आए। धन धरती जोड़ना कबीर की संतोषी वृत्ति के विरुद्ध था। उन्होंने कहा भी है—

'काहे कूँ भीत बनाऊँ टाटी, का जाणूँ कहँ परिहै माटी।
काहे कूँ मंदिर महल चिनाऊँ, मूवाँ पीछैं घड़ी एक रहन न पाऊँ॥

काहे कूं छाऊँ ऊँच उचेरा, साढ़े तीन हाथ घर मेरा ।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेतीं भुइ लीजै ॥

कबीर अत्यंत सरल हृदय थे। बालकों में सरलता की पराकाष्ठा होती है; यह सब जानते हैं। इसका कारण वर्ड्सवर्थ के अनुसार यह है कि बालक में पारमार्थिकता अधिक रहती है। पर ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसमें पारमार्थिकता की न्यूनता होती जाती है। इसीलिये अपने खोए हुए बालकत्व के लिये वर्ड्सवर्थ कवि क्षुब्ध हैं। परंतु कबीर कहते हैं कि यदि मनुष्य स्वयं भक्ति भाव से अपने मन को निर्मल कर परमात्मा की ओर मुड़े तो वह फिर से इस सरलता को प्राप्त कर बालक हो सकता है—

जों तन माहैं मन धरै,मन धरि निर्मल होइ।
साहिब सों सनमुख रहै; तौ फिरि बालक होइ ॥

कबीर का सारल्य ऐसे ही बालकत्व का फल था।

कबीर की गर्वोक्तियों के कारण लोग उन्हें घमंडी समझते हैं। ये गर्वोक्तियाँ कम नहीं हैं। उनके नाम से प्रसिद्ध नीचे लिखा पद, जो इस ग्रंथावली में नहीं है, लोगों में बहुत प्रसिद्ध है—

'झीनी झीनी बीनी चदरिया।'

काहै कै ताना काहैं कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साँइ को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

इस ग्रंथावली में भी ऐसी गर्वोक्तियों की कोई कमी नहीं है—

'हम न मरै मरिहै संसार।'

(क) 'एक न भूला दोइ न भूला भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकै राम आधारा ॥'

(ग) देखो कर्म कबीर का, कछू पूरब जनम का लेखा।
जाका महल न मुनि लहै, सो दोसत किया अलेखा ॥'

परंतु यह गर्व लोगों को नीचे देखनेवाला गर्व नहीं है—साक्षात्कारजन्य गर्व है, स्वामी के आधार का गर्व है, जो सबमें पारमात्मिकता का अनुभव करके प्राणिमात्र को समता की दृष्टि से देखता है। अपनी

पारमात्मिकता की अनुभूति की गरमी में उनका ऐसा कहना स्वाभाविक ही है जो उनके मुँह से अनुचित भी नहीं लगता। जो हो, कम से कम छोटे मुँह बड़ी बात की कहावत उनके विषय में चरितार्थ नहीं हो सकती। वे पहुँचे हुए महात्मा थे। उन्होंने स्वयं ही अपनी गिनती गोपीचंद, भर्तृहरि और गोरखनाथ के साथ की है—

'गोरष भरथरि गोपीचंदा। ता मन सो मिलि करै अनंदा।
अकल निरंजन सकल सरीरा। ता मन सौं मिलि रहा कबीरा।'

परंतु इतने ऊँचे पद पर वे विनय के द्वारा ही पहुँच सके हैं। इसी से उनका गर्व उच्चतम मनुष्यता का प्रेममय गर्व है जिसकी आत्मा विनय है। सच्चे भक्त की भाँति उन्होंने परमात्मा के महत्व और अपनी हीनता का अनुभव किया है—

'तुम्ह समानि दाता नहीं, हम से नहीं पापी।'

स्वामी के सामने वे विनय के अवतार हैं—

'कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाऊँ॥'

उनकी विनय यहाँ तक पहुँची है कि वे बाट का रोड़ा होकर रहना चाहते हैं जिस पर सबके पैर पड़ते हैं। परंतु रोड़ा पाँव में चुभकर बटोहियों को दुःख देता है, इसलिये वह धूल के समान रहना उचित समझते हैं। किंतु धूल भी उड़कर शरीर पर गिरती है और उसे मैला करती है, इसलिये पानी की तरह होकर रहना चाहिए जो सबका मैल धोवे। पर पानी भी ठंडा और गरम होता है जो अरुचि का विषय हो सकता है। इसलिए भगवान् की ही तरह होकर रहना चाहिए। कबीर का गर्व और दैन्य दोनों मनुष्य को उसकी पारमात्मिकता की अनुभूति करानेवाले हैं।

कबीर पहुँचे हुए ज्ञानी थे। उनका ज्ञान पोथियों से चुराई हुई सामग्री नहीं थी और न वह सुनी सुनाई बातों का बेमेल भंडार ही था। पढ़े लिखे तो वे थे नहीं, परंतु सत्संग से भी जो बातें उन्हें मालूम हुईं, उन्हें वे अपने विचारधारा के द्वारा मानसिक पाचन से सर्वदा अपना ही बना लेने का प्रयत्न करते थे। उन्होंने स्वयं कहा है 'सो ज्ञानी आप विचारै'। फिर भी कई बातें उनमें ऐसी मिलती हैं, जिनका उनके सिद्धांतों के साथ मेल नहीं पड़ता। उनकी ऐसी उक्तियों को समय और परिस्थितियों का तथा भिन्न भिन्न मतावलंबियों के संसर्ग का अलक्ष्य प्रभाव समझना चाहिए।

कबीर बहुश्रुत थे। सत्संग से वेदांत, उपनिषदों और पौराणिक कथाओं का थोड़ा बहुत ज्ञान उनको हो गया था, परंतु वेदों का उन्हें कुछ भी ज्ञान

नहीं था। उन्होंने वेदों की जो निंदा की है, वह यह समझकर कि पंडितों में जो पाखंड फैला हुआ है, वह वेदज्ञान के कारण ही है। योग की क्रियाओं के विषय में भी उनकी जानकारी थी। इंगला, पिंगला, सुषुम्ना षट्चक्र आदि का उन्होंने उल्लेख किया है, परंतु वे योगी नहीं थे। उन्होंने योग को भी माया में संमिलित किया है। केवल हिंदू मुसलमान दो धर्मों का उन्होंने मुख्यतया उल्लेख किया है पर इससे यह न समझना चाहिए कि भारतवर्ष में प्रचलित और धर्मों से वे परिचित नहीं थे। वे कहते हैं--

'अरु भूले षटदरसन भाई। पाषंड भेष रहे लपटाई।
जैन बोध औरे साकत सैना। चारवाक चतुरंग बिहूना॥
जैन जीव की सुधि न जाने। पाती तोरी देहुरै आनै।

इससे ज्ञात होता है कि अन्य धर्मों से भी उनका परिचय था, पर कहाँ तक उनके गूढ़ रहस्यों को वे समझते थे यह नहीं विदित होता। जहाँ तक देखा जाता है, ऐसा जान पड़ता है कि ऊपरी बातों पर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। मार्मिक तात्विक बातों तक ये नहीं गए हैं। ईसाई धर्म का उनके समय तक इस देश में प्रवेश नहीं हुआ था पर बिलाइत का नाम उनकी साखी में एक स्थान पर अवश्य आया है--'बिन बिलाइत बड़ राज'। यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि 'बिलाइत' से उनका यूरोप के किसी देश से अभिप्राय था अथवा केवल विदेश से। कबीरदास जी ने शाक्तों की बड़ी निंदा की है। जैसे--

बैश्नो की छपरी भली, ना साकत का बड़ागाँव।
'साषत ब्राभण मति मिलै, वैषनों मिलै चंडाल।
अंक माल दे भेटिये मानौं मिलै गोपाल॥

कबीर रहस्यवादी कवि हैं। रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसारचक्र का प्रवर्तन किसी अज्ञान शक्ति के द्वारा

रहस्यवाद

होता है, इस बात का अनुभव मनुष्य अनादि काल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है और रहेगी परंतु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नहीं दिखाई दे सकती, जिस प्रकार जगत् के अन्य दृश्य रूप; और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार साधारण विचारधारा के द्वारा हो सकता है, जिस प्रकार इन दृश्य रूपों का होता है। अपनी लगन से जो इस छेत्र में सिद्ध हो गए हैं, उन्होंने जब जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब तब अपनी उक्तियों की स्पष्टता देने में अपने आपको समर्थ नहीं पाया है। कबीर ने स्पष्ट कर दिया है कि परमात्मा का प्रेम और उसकी अनुभूति गूंगे के गुड़ सा है--

(क) 'अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाइ ।
गूंगे केरी सरकरा, बैठा मुसकाई ॥'

(ख) 'तजि बावै दाहिनै बिकार, हरि पद दिढ़ करि गहिए ।
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया, बूझै तो का कहिए ॥'

यही रहस्यवाद का मूल है । वेद और उपनिषदों में रहस्यवाद की झलक विद्यमान है । गीता में भगवान् के मुँह से उनकी विभूति का जो वर्णन कराया गया है वह भी अत्यंत रहस्यपूर्ण है ।

परमात्मा को पिता, माता, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप में देखना रहस्यवाद ही है; क्योंकि लौकिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है । आदर्श पुरुषों में परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनको अवतार मानने के मूल में भी रहस्यवाद ही है । मूर्ति को परमात्मा मानकर उसे मस्तक नवाना आदिम रहस्यवाद है ।

परमात्मा के पितृत्व की भावना बहुत प्राचीन काल से वेदों ही में मिलने लगती है । ऋग्वेद की एक ऋचा में में 'यो नः पिता जनिता यो विधाता' कहकर परमात्मा का स्मरण किया गया है । वेदों में परमात्मा को माता भी कहा गया है—'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शक्रतो बभूविथ' । परमात्मा के मातृपितृ से प्राणियों के भ्रातृत्व की भावना का उदय होता है । 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठासः एते संभ्रातरो' । बहुत पीछे के ईसाई ईश्वरवाद में परमात्मा के पितृत्व और प्राणियों के भ्रातृत्व की यही भावना पाई जाती है; अतएव पश्चिमी रहस्यवाद में भी इस भावना का प्राबल्य है । कबीर में भी यह भावना मिलती है

'बाप राम राया अबहूँ सरन तिहारी ।'

उन्होंने परमात्मा को 'माँ' भी कहा है—

'हरि जननी मैं बालिक तेरा ।'

परंतु भारतीय रहस्यवाद की विशेषता सर्वात्मवादमूलक होने में है जो भारतीयों की ब्रह्मजिज्ञासा का फल है । उपनिषदों और गीता का रहस्यवाद यही रहस्यवाद है । जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचकर कवि भी होना चाहता है तब तो अवश्य ही वह इस रहस्यवाद की ओर झुकता है । चिंतन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप पकड़ता है । सर्वात्मवादी कवि के रहस्योद्भावी मानस में संसार उसी रूप में प्रतिबिंबित नहीं होता जिस रूप में साधारण मनुष्य उसे देखता है । यह परमात्मा के साथ सारी सृष्टि का अखंड संबंध देखता है, जिसके चरितार्थ करने का प्रयत्न करते हुए जायसी ने

जगत् के सब रूपों को दिखलाया है। जगत् के नाना रूप उसकी दृष्टि में परमात्मा से भिन्न नहीं हैं, उसी के भिन्न भिन्न व्यक्त रूप हैं। स्वातंत्र्य के अवतार स्वत्व का आध्यात्मिक मूल समझनेवाले अँगरेजी के कवि शेली को भी सर्वात्मवादी रहस्यवाद ही 'मर्मर करते हुए काननों में, झरनों में, उन पुष्पों की परागगंध में जो उस दिव्य चुंबन के सुखस्पर्श से सोए हुए कुछ वर्तीते से मुग्ध पवन को उसका परिचय दे रहे हैं, इसी प्रकार मंद या तीव्र समीर में, प्रत्येक आते जाते मेघखंड की झड़ी में, वसंतकालीन विहंगमों के कलकूजन में और सब ध्वनियों और स्तब्धता में भी प्रियतम की मधुर वाणी सुनाई दी है। कबीर में ऊपर परिगणित कुछ अन्य रहस्यवादी भावनाओं के होते हुए भी प्रधानता इसी रहस्यवाद की है। मुसलमान कवियों की प्रेमाख्यान परंपरा के जायसी एक जगमगाते रत्न हैं। वे रहस्यवादी कवियों की ही एक लड़ी हैं जिसमें सूफियों के मार्ग से होते हुए भारतीय सर्वात्मवाद आया है।

सर्वात्मवादमूलक रहस्यवाद में 'माधुर्य भाव' का उदय हुआ, जो कबीर और प्रेमाख्यानक सब मुसलमान कवियों में विद्यमान है। वैष्णवों और सूफियों की उपासना माधुर्य भाव से युक्त होती है। दार्शनिकों ने परमात्मा को पुरुष और जगत् को स्त्रीरूपा प्रकृति कहा है। माधुर्य भाव इसी का भावुक रूप है, जिसमें परमात्मा की प्रियतम के रूप में भावना की जाती है और जगत् के नाना रूप स्त्रीरूप में देखे जाते हैं। मीराबाई ने तो केवल कृष्ण को ही पुरुष माना है जगत् में पुरुष उन्हें और कोई दिखाई ही नहीं दिया। कबीर भी कहते हैं---

(क) 'कहै कबीर ब्याहि चले हैं 'पुरुष एक अबिनासी।'

(क) 'सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा ।।'

इस तरह के एक दो नहीं कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। राम की सुहागिन पहले अपना प्रेमनिवेदन करती है--

'गोकुल नायक बीठुला मेरो मन लागो तोहि रे।'

यह जीवात्मा का परमात्मा में लगन लगने का आरंभिक रूप है। इसे ब्याह के पहले का पूर्वानुराग समझना चाहिए।

कभी वह वियोगिनी के रूप में प्रकट होती है और उस वियोगाग्नि में जले हुए हृदय के उद्गार प्रकट करती है--

'यह तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ
लेखणि करौं करंक की लिखि लिखि राम पठाउँ ।।

परमात्मा के वियोग से जनित सारी सृष्टि का दुख कितना घना होकर कबीर के हृदय में समाया है।

राम की वियोगिन आकुलता से उन दिनों की बाट देखती है जब वह प्रियतम का आलिंगन करेगी--

'वै दिन कब आवैंगे भाई।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंग लगाई ॥'

यहाँ जीवात्मा के परमात्मा से मिलने की आकुलता की ओर संकेत है। इस आकुलता के साथ साथ भय भी रहता है। सारा विश्व जिसका व्यक्त रूप है, उस प्रियतम से मिलने के लिये असाधारण तैयारी करने की आवश्यककता होती है। 'हरि की दूलहिन' को भय इस आशंका से होता है कि वह उतनी तैयारी कर सकेगी या नहीं। उसे अपने ऊपर विश्वास नहीं होता। फिर रहस्य केलि के समय प्रियतम के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना होगा, यह भी नहीं जानती--

'मन प्रतीति न प्रेमरस ना इस तन में ढंग।
क्या जाणौं उस पीय सूँ कैसे रहसी रंग ॥'

इसमें साक्षात्कार की महत्ता का आभास है जो एक साधारण घटना नहीं है।

ज्यों ज्यों जीवात्मा को अपनी पारमात्मिकता का अनुभव होता जाता है, त्यों त्यों उसका भय जाता रहता है। लौकिक भाषा में इसी की ओर इस पद में इशारा है--

अब तोहिं जान न देहूँ राम पियारे। ज्यूँ भावै त्यूँ होहु हमारे।
यह प्रेम की ढिठाई है।

परमात्मा से मिलने के लिये ऐसी 'ऊँची गैल, राह रपटीली नहीं तै करनी पड़ती जहाँ 'पाँव नहीं ठहराय'। वह तो घर बैठे मिल जायँगे पर उसके लिये पहुँची हुई लगन चाहिए, क्योंकि परमात्मा तो हृदय ही में है--

बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये। भाग बड़े घरि बैठे आये।'

कबीरदास के नाम से लोगों की जिह्वा पर जो यह पद--

'मो को कहाँ ढूँढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ॥'

बहुत दिनों से चढ़ा चला आ रहा है, उसका भी वही भाव है। जायसी ने यही भाव यों प्रकट किया है।

'पिउ हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाय, कहौं केहि रोई ॥'

रहस्यमय उक्तियों की हृदयात्मकता उनके लोकनियोजित शब्दार्थ में नहीं है। उस अर्थ को मानने से उनकी रहस्यात्मकता जाती रहती है, उनका संकेत मात्र ग्रहण करना चाहिए। मूर्ति को परमात्मा मानकर उसका पूजना

इसीलिये करना चाहिये कि ईश्वरप्राप्ति में आगे की सीढ़ी सहज में चढ़ सके, क्योंकि साधारणतः सबलोग परमात्मा या ब्रह्म का ठीक ठीक स्वरूप समझने में नितांत असमर्थ होते हैं। अतः मूर्तिपूजा के द्वारा मानों मनुष्य को ब्रह्म के भी साक्षात्कार की प्रारंभिक शिक्षा मिलती है। उसके आगे बढ़कर सचमुच पत्थर को परमात्मा मानने से फिर कोई रहस्य नहीं रह जाता। ईसाइयों ने परमात्मा के पितृत्व भाव की उसी समय इतिश्री कर दी, जब ईसा को लौकिक अर्थ में परमात्मा या पवित्रात्मा का पुत्र मान लिया। राम और कृष्ण को साक्षात् परमात्मा ही मानने के कारण तुलसी और और सूर में अवतारवाद की मूलभूत रहस्यभावना नहीं आ पाई है। सखी संप्रदाय ने मनुष्यों को सचमुच स्त्री मानकर और उनके नाम भी स्त्रियों जैसे रखकर और यहाँ तक कि उनसे ऋतुमती स्त्रियों का अभिनय कराकर 'माधुर्य भाव' के रहस्यवाद को वास्तववाद का रूप दे दिया। रहस्यवाद के वास्तववाद में पतित हो जाने के कारण ही सदुद्देश्य से प्रवर्तित अनेक धर्म संप्रदायों में इंद्रियलोलुपता का नारकीय नृत्य देखने में आता है। रहस्यवादी कवियों का वास्तववादियों से इसी बात में भेद है कि वास्तववादी कवि अपने विषय का यथातथ्य वर्णन करते हैं, और रहस्यवादी केवल संकेत मात्र कर देते हैं, अपने वर्ण्यविषय का आभास भर दे देते हैं। उनमें जो यह धुँधलापन पाया जाता है, उसका कारण उनकी आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। परमात्मा की सत्ता का आभास मात्र ही दिया जा सकता है। इसके लिये वे व्यंजनावृत्ति से अधिकतर काम लिया करते हैं और चित्राधान उनका प्रधान उपादान होता है। उनकी बातें अन्योक्ति के रूप में हुआ करती हैं। किसी प्रत्यक्ष व्यापार के चित्र को लेकर वे उससे दूसरे परोक्ष व्यापार के चित्र की व्यंजना करते हैं। इसी से रहस्यवादी कवियों में वास्तववादियों की अपेक्षा कल्पना का प्राचुर्य अधिक होता है।

रसिकों की सम्मति में कबीर का रहस्यवाद रूखा है, उनका माधुर्य भाव भी उन्हें फीका लगता है, उनके चित्रों में उन्हें अनेकरूपता नहीं दिखाई देती। कबीर ने अपनी उक्तियों को काव्य की काटछाँट नहीं दी है, परंतु इसकी उन्हें जरूरत ही नहीं थी। इस बात का प्रयास वह करेगा जिसमें कुछ सार न हो।

कबीर में चित्रों की अनेकरूपता न देखना उनके साथ अन्याय करना है। ब्याह का ही दृश्य वे कई बार अवश्य लाए हैं, पर जैसा कि पाठकों को आगे चलने पर मालूम होता जाएगा, उनका रहस्यवाद माधुर्य भाव में ही नहीं समाप्त हो जाता। प्रकृति से चुने चुने चित्र उनकी उक्तियों में अपने आप आ बैठे हैं। हाँ, उन्होंने प्रयास करके अपनी उक्तियों को काव्य की

मधुरता नहीं दी है। फिर भी उनकी ऊपरी सहृदयता न सही तो अनन्य-हृदयता और तल्लीनता व्यर्थ कैसे जा सकती थी। जो उन्हें बिल्कुल ही रूखा समझते हैं, उन्हें उनकी रहस्यमयी अन्योक्तियों को देखना चाहिए।

'काहे री नलिनीं ! तू कुमिलानी। तेरे ही नालि सरोवर पानीं।
जल में उतपति जल में वास, जल में नलिनी तोर निवास॥
ना तलि तपति न ऊपर आगि, तोर हेत कहु कासनि लागि॥
कहै कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हमारे जान।'

कैसा मृदुल मनोमोहक चित्र है! इसका सहज माधुर्य किसे न मोह लेगा। प्रकृति का प्रतिनिधि मनुष्य नलिनी है, जल ब्रह्म तत्व है। इसी में प्रकृति के नाना रूपों की उत्पत्ति होती है, यही पोषक तत्व है जो मनुष्य और नाना रूपों में स्वयं विद्यमान है। इस जल की शीतलता के सामने कोई ताप ठहर नहीं सकता। यह तत्व समझकर इस पोषण सामग्री का उपयोग करने-वाला (अर्थात् ज्ञानी) मर ही कैसे सकता है ?

औद्यानिक भाषा में सांसारिक जीवन की नश्वरता का कितना प्रभावशाली आभास नीचे लिखे दोहे में है—

'मालनी आवत देखि करि, कलियाँ करीं पुकार।
फूले फूले चुन लिए, कालिह हमारी बार॥'

और देखिए—

'बाढ़ी आवत देखि करि, तरिवर डोलन लाग।
हम कटे कि कछु नहीं, पंखेरू घर भाग।'

बढ़ई काल है, वृक्ष का डोलना वृद्धावस्था का कंप है पक्षी आत्मा है। यह डोलना आत्मा को इस बात की चेतावनी देता है कि शरीर के नाश का दुख न करके ब्रह्म तत्व में लीन होने का प्रबंध करो; पक्षी का घर भागना यही है। काटते समय पेड़ को हिलते और वृद्धावस्था में शरीर को काँपते किसने नहीं देखा होगा। परंतु किसलिये वह हिलता काँपता है, इसका रहस्य कबीर ही जान पाए हैं। यह आभास किसको नहीं मिलता, पर कितने हैं जो उनको समझ पाते हैं !

नाश नीची स्थितिवालों के लिये ही मुँह बाए नहीं खड़ा है, ऊँची स्थितिवाले भी उसी घाट उतरेंगे इस बात का संकेत यह दोहा देता है—

फागुण आवत देखि करि, बन रूना मन माँहि।
ऊँची डाली पात हैं, दिन दिन पीले थाँहि॥'

कबीर की चमत्कारपूर्ण उलटबाँसियाँ भी रहस्यपूर्ण हैं। कठोपनिषद् के अनुसार मनुष्य का शरीर रथ है, जिसमें इंद्रियों के घोड़े जुते हैं, घोड़ों पर मन

की लगाम लगी हुई है जो सारथी रूपी बुद्धि के हाथ में है। 'परमपद' की पथिक आत्मा इस रथ पर सवार है, उसकी इच्छा के अनुसार उसका परिचालन होना चाहिए। शरीर सेवक है, आत्मा स्वामी है। यह स्वाभाविक क्रम है। परंतु जब स्वामी सो जाय, सारथी किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाय और घोड़ों की लगाम निरुद्देश्य ढीली पड़ जाय, तब यह क्रम उलट जाता है, स्वामी का स्थान सेवक ले लेता है। रथ के अधीन होकर स्वामी भटका करता है और प्रायः ऐसा होता है कि घोड़ों (इंद्रियों) के मनमाने आचरण से रथ (शरीर) और स्वामी (आत्मा) दोनों को अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। भवजाल में पड़े हुए मनुष्यों की इसी उलटी अवस्था को विशेषकर कबीर ने अपनी उलटबाँसियों द्वारा व्यंजित कर लोगों को आश्चर्य में डाला है—

> 'ऐसा अद्भुत मेरा गुरु कथ्या, मैं रह्या उमेषै।
> मूसा हस्ती सौं लड़ै कोई बिरला पेषै॥
> मूसा बैठा बाँबि मैं, लारै सापणि धाई।
> उलटि मूसैं सापिणि गिली यह अचरज भाई॥
> चींटी परबत ऊषण्यां ले राख्यौ चौड़ै।
> मुर्गा मिनकी सूँ लड़ै झल पाणीं दौड़ै॥
> सुरही चूंषै बछतलि, बछा दूध उतारै।
> ऐसा नवल गुणी भया, सारदूलहि मारै।
> भील लुक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै।
> कहै कबीर ताहि गुरु करौं, जो या पदहि बिचारै॥'

सबका कारण परब्रह्म किसी का कार्य नहीं है, इस बात का आभास देनेवाला यह सांकेतिक पद कितना रहस्यपूर्ण है।

> 'बाँझ का पूत, बाप बिन जाया, बिन पाउँ तरवर चढ़िया।
> अस बिन पाखर, गज बिन गुड़िया, बिन षंडै संग्राम लड़िया॥
> बीज बिन अंकुर, पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया।
> रूप बिन नारी, पुहुप बिन परिमल, बिन नीरै सर भरिया॥'

सभी संत कवियों के काव्य में थोड़ा बहुत रहस्यवाद मिलता है। पर उनका काव्य विशेषकर कबीर का ही ऋणी है। बंगाल के वर्तमान कवींद्र को भी कबीर का ऋण स्वीकार करना पड़ेगा। अपने रहस्यवाद का बीज उन्होंने कबीर ही में पाया। परंतु उनमें पाश्चात्य भड़कीली पालिश भी है। भारतीय रहस्यवाद को उन्होंने पाश्चात्य ढंग से सजाया है। इसी से यूरोप में उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई है। जब से उन्हें नोबेल प्राइज (पुरस्कार)

मिला तब से लोग उनकी गीतांजलि की बेतरह नकल करने पर तुले हुए हैं। हिंदी का वर्तमान रहस्यवाद अब तक नकल ही सा लगता है। सच्चे रहस्यवाद के आविर्भाव के लिये प्रतिभा की अपेक्षा होती है। कबीर इसी प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। पिंगल के नियमों को भंग करके खड़ा किया हुआ निरर्थक शब्दाडंर रहस्यवादी कविता का आसन नहीं प्राप्त कर सकता है।

काव्यत्व

कबीर के काव्य के विषय में बहुत कुछ बातें उनके रहस्यवाद के अंतर्गत आ चुकी हैं; यहाँ पर बहुत कम कहना शेष है। कविता के लिये उन्होंने कविता नहीं की है। उनकी विचारधारा सत्य की खोज में बही है, उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से भिन्न नहीं है। उसमें उनका हृदय घुला मिला है, उनकी प्रतिभा हृदयसमन्वित है। उनकी बातों में बल है जो दूसरे पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। अक्खड़ ढंग से कही होने पर भी उनकी बेलाग बातों में एक और ही मिठास है जो खरी खरी बातें कहनेवाले ही की बातों में मिल सकती है। उनकी सत्यभाषिता और प्रतिभा का ही फल है कि उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगों की जबान पर चढ़ कर कहावतों के रूप में चल पड़ी हैं। हार्दिक उमंग की लपेट में जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियों में आ गई है, वह अत्यंत भावापन्न है। उसी में उनकी प्रतिभा का चमत्कार है। शब्दों के जोड़ तोड़ में चमत्कार लाने के फेर में पड़ना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल था। दूर की सूझ जिस अर्थ में केशव, बिहारी आदि कवियों में मिलती है, उस अर्थ में उनमें पाना असंभव है। प्रयत्न उनकी कविता में कहीं नहीं दिखाई देता। अर्थ की जटिलता के लिये उनकी उलटवाँसियाँ केशव की शब्दमाया को मात करती हैं; परंतु उनमें भी प्रयत्न दृष्टिगत नहीं होता। रात दिन आँखों में आनेवाले प्रकृति के सामान्य व्यापारों के उलटे व्यवहार को ही उन्होंने सामने रखा है। सत्य के प्रकाश का साधन बनकर, जिसकी प्रगाढ़ अनुभूति उनको हुई थी, कविता स्वयमेव उनकी जिह्वा पर बैठी है। इसमें संदेह नहीं कि कबीर में ऐसी भी उक्तियाँ हैं जिनमें कविता के दर्शन नहीं होते—और ऐसे पद्य कम नहीं है—किंतु उनके कारण कबीर के वास्तविक काव्य का महत्व कम नहीं हो सकता, जो अत्यंत उच्चकोटि का है और जिसका बहुत कुछ माधुर्य रहस्यवाद के प्रकरण के अंतर्गत दिखाया जा चुका है।

जैसे कबीर का जीवन संसार से ऊपर उठा था, वैसे ही उनका काव्य भी साधारण कोटि से ऊँचा था। अतएव सीखकर प्राप्त की हुई रसिकता का काव्यानंद उनमें नहीं मिलता। परंपरा से बँधे हुए लोगों को काव्यजगत् में

भी इंद्रियलोलुपता का कीड़ा बनकर रहना भी भला लगता है। कबीर ऐसे लोगों की परितुष्टि की परवा कैसे कर सकते थे, जिनको निरपेक्षी के प्रति होनेवाला उनका प्रेम भी शुष्क लगता है। प्रेम की पराकाष्ठा आत्मसमर्पण का मानों काव्यजगत् में कोई मूल्य ही नहीं है।

कबीर ने अपनी उक्तियों पर बाहर से अलंकारों का मुलम्मा नहीं चढ़ाया है। जो अलंकार उनमें मिलते भी हैं वे उन्होंने खोज खोजकर नहीं बैठाए हैं। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी के अर्थ में कला का उनमें सर्वथा अभाव है। 'बेसिर पैर की बातें, 'वायवी अवस्तुओं' का स्थान और नामनिर्देश कर देने को कविकर्म कहकर शेक्सपियर ने कवियों को सन्निपात या पागलपन में बेसिर पैर की बातें बकनेवालों की श्रेणी में रख दिया है। जिन कवियों के संबंध में 'किं न जलपंति' कहा जा सकता है, उन्हीं का उल्लेख 'किं न खादंति' वाले वायसों के साथ हो सकता है। सच्ची कला के लिये तथ्य आवश्यक है। भावुकता के दृष्टिकोण से कला आडंबरों के बंधन से निर्मुक्त तथ्य है। एक विद्वान् कृत इस परिभाषा को यदि काव्यक्षेत्र में प्रयुक्त करें तो कम कवि सच्चे कलाकारों की कोटि में आ सकेंगे। परंतु कबीर का आसन उस ऊँचे स्थान पर अविचल दिखाई देता है। यदि सत्य के खोजी कबीर के काव्य में तथ्य की स्वतंत्रता नहीं मिलती तो और कहीं नहीं मिल सकती। कबीर के महत्व का अनुमान इसी से हो सकता है।

कबीर के काव्य में नीचे लिखी हुई खटकनेवाली बातें भी हैं, जिनकी ओर स्थान स्थान पर संकेत करते आए हैं—

(१) एक ही बात को उन्होंने कई बार दुहराया है, जिससे कहीं कहीं रोचकता जाती रहती है।

(२) उनके ज्ञानीपन की शुष्कता का प्रतिबिंब उनकी भाषा पर अक्खड़पन होकर पड़ा है।

(३) उनकी आधी से अधिक रचना दार्शनिक पद्यमात्र है, जिसको कविता नहीं कहना चाहिए।

(४) उनकी कविता में साहित्यिकता का सर्वथा अभाव है। थोड़ी सी साहित्यिकता आ जाने से परंपरानुबद्ध रसिकों के लिये उपालंभ का स्थान न रह जाता।

(५) न उनकी भाषा परिमार्जित है और न उनके ग्रंथ पिंगलशास्त्र के नियम के अनुकूल हैं।

कबीरदास छंदशास्त्र से अनभिज्ञ थे, यहाँ तक कि वे दोहों को पिंगल की खराद पर न चढ़ा सके। डफली बजाकर गाने में जो शब्द जिस रूप में निकल गया, वही ठीक था। मात्राओं के घट बढ़ जाने की चिंता करना

व्यर्थ था। पर साथ ही कबीर में प्रतिभा थी; मौलिकता थी, उन्हें कुछ संदेश देना था और उनके लिये शब्द की मात्रा गिनने की आवश्यकता न थी, उन्हें तो इस ढंग से अपनी बातें कहने की आवश्यकता थी, जो सुननेवालों के हृदय में पैठ जायँ और पैठकर जम जायँ। तिसपर वह हिंदी कविता के आरंभ के दिन थे। पर आजकल के रहस्यवादी काव्यों मे न प्रतिभा के दर्शन होते हैं और न मौलिकता का आभास मिलता है। केवल ऊटपटाँग कह देने और भाषा तथा पिंगल की उपेक्षा दिखाने ही में उन आवश्यक गुणों के अभावों की पूर्ति नहीं हो सकती।

भाषा

कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है क्योंकि वह खिचड़ी है। कबीर की रचना में कई भाषाओं के शब्द मिलते हैं परंतु भाषा का निर्णय अधिकतर शब्दों पर निर्भर नहीं है। भाषा के आधार क्रियापद, संयोजक शब्द तथा कारक चिह्न हैं जो वाक्यविन्यास की विशेषताओं के लिये उत्तरदायी होते हैं। कबीर में केवल शब्द ही नहीं क्रियापद, कारक चिह्नादि भी कई भाषाओं के मिलते हैं, क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी बोली के हैं। कारक चिह्नों में कै, सन, सा आदि अवधी के हैं, को ब्रज का है और थे राजस्थानी का। यद्यपि उन्होंने स्वयं कहा है--'मेरी बोली पूरबी', तथापि खड़ी ब्रज, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट भी उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है। पूरबी से उनका क्या तात्पर्य है; यह नहीं कह सकते। उनका बनारस निवास पूरबी से अवधी का अर्थ लेने के पक्ष में है; परंतु उनकी रचना में बिहारी का पर्याप्त मेल है; यहाँ तक कि मृत्यु के समय मगहर में उन्होंने जो पद कहा है उसमें मैथिली का भी कुछ संसर्ग दिखाई देता है। यदि 'बोली' का अर्थ मातृभाषा लें और 'पूरब' का बिहारी तो कबीर के जन्म के विषय पर एक नया ही प्रकाश पड़ जाता है। उनका अपना अर्थ जो कुछ हो, पर पाई जाती हैं उनमें अवधी और बिहारी, दोनों बोलियाँ।

इस पंचमेल खिचड़ी का कारण यह है कि उन्होंने दूर दूर के साधुसंतों का सत्संग किया था जिससे स्वाभाविक ही उन पर भिन्न भिन्न प्रांतों की बोलियों का प्रभाव पड़ा।

खड़ी बोली का पुट इस दोहे में देखिए--

'कबीर कहता जात हूँ सुणता है सब कोइ।
राम कहे भला होइगा, नहितर भला न होइ॥'
आऊँगा न जाऊँगा, मरूँगा जीऊँगा;
गुरु के सबद रमि रमि रहूँगा॥'

इसमें शुद्ध खड़ी बोली के दर्शन होते हैं ।

जब लगि धसै न आभ' में 'धसै' व्रजभाषा का है और 'आभ' फारसी के आब का बिगड़ा हुआ रूप है । आगे लिखे दोहे में अंखड़ियाँ, जीभड़ियाँ आदि रूप पंजाबी का और पड़या क्रिया राजस्थानी प्रभाव प्रकट करते हैं--

'अंपड़ियाँ झाँई पड़ी पंथ निहारि निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़या, राम पुकारि पुकारि ।।'

पंजाब के केवल बहुत से शब्द नहीं मुहावरे भी उनमें मिलते हैं । जैसे--

१--रलि गया आटे लूंण
२--लूण बिलग्गा पाणियाँ पाणी लूण विलग्ग

इनके उच्चारण पर भी पंजाबी का प्रभाव दृष्टिगत होता है । न को ण कहना पंजाबी की ही विशेषता है । पंजाबी विवेक का उच्चारण बवेक करते हैं । कबीर में भी वह शब्द इसी रूप में मिलता है । बँगला के भी इनमें कुछ प्रयोग मिलते हैं । आछिलो शब्द बँगला का छिलो है जो 'था' अर्थ में प्रयुक्त होता है--'कहु कबीर कुछ आछिलो जहिया ।' इसी प्रकार 'सकना' अर्थ में पारना क्रिया के रूप भी जो अब केवल बँगला में मिलते हैं, पर जिनका प्रयोग जायसी और तुलसी ने भी किया है; इनकी भाषा में पाए जाते हैं--

'गाँइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै ।

संस्कृत वर्ज्य से बिगड़कर बना हुआ एक 'बाज' शब्द तुलसी और जायसी दोनों में मिलता है । जायसी में यह बाझ रूप में मिलता है । पर आजकल इसका प्रयोग अधिकतर पंजाबी में ही होता है, जहाँ इसका रूप 'बाझो होता है ।

'भिस्त न मेरे चाहिए बाझ पियारे तुज्झ ।'

जेम, ससिहर, आदि शुद्ध अपभ्रंश के भी कई शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया हैं । 'जेम' शब्द संस्कृत 'यद्व' से निकला है और ससिहर संस्कृत शशधर से । अपभ्रंश में संस्कृत के क का ग हो जाता है जैसे प्रकट का प्रगट । कबीर ने मनमाने ढंग से भी ऐसे परिवर्तन किए हैं । उपकारी का उन्होंने उपगारी बनाया है । संस्कृत के महाप्राण अक्षर प्राकृत और अपभ्रंश में प्रायः ह रह जाते हैं जैसे शशधर से ससिहर । कबीर में इसका विपर्यय भी मिलता है । उन्होंने दहन को दाझन कहा है ।

फारसी के एक ही शब्द का हमने ऊपर उदाहरण दिया है । यत्र तत्र

फारसी अरबी के शब्द तो उनमें मिलते ही हैं, उनके कुछ पद ऐसे भी हैं जिनमें अरबी और फारसी शब्दों की ही भरमार है। उदाहरण के लिये उनकी पदावली का २५८ वाँ पद ले लीजिए, जिसकी दो पंक्तियाँ हम यहाँ उद्धृत करते हैं--

'हमरकत रहबरहुँ समाँ मैं खुर्दा सुभाँ विसियार।
हमजिमीं आसमाँन खलिक, गुंदा मुसकिल कार॥'

हम कह चुके हैं कि कबीर पढ़े लिखे नहीं थे, इसी से वे बाहरी प्रभावों के बहुत अधिक शिकार हुए। भाषा और व्याकरण की स्थिरता उनमें नहीं मिलती। या यह भी संभव है कि उन्होंने जान बूझकर अनेक प्रांतों के शब्दों का प्रयोग किया हो अथवा शब्दभांडार की कमी के कारण जब जिस भाषा का सुना सुनाया शब्द उनके सामने आ गया हो, उन्होंने अपनी कविता में रख दिया हो। शब्दों को उन्होंने तोड़ा मरोड़ा भी बहुत है। सन को सनि सनां सूँ—चाहे जिस रूप में तोड़ मरोड़कर उन्होंने आवश्यकतानुसार अपनी उक्तियों में ला बैठाया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में अक्खड़पन है और साहित्यिक कोमलता या प्रसाद का सर्वथा अभाव है। कहीं कहीं उनकी भाषा बिलकुल गँवारू लगती हैं, पर उनकी बातों में खरेपन की मिठास है, जो उन्हीं की विशेषता है और उसके सामने यह गँवारपन डूब जाता है।

हिंदी के काव्यसाहित्य में कबीर के स्थान का निर्णय करना कठिन है तुलना के लिये एक ही क्षेत्र के कवियों को लेना चाहिए। कबीर का काव्य मुक्तक क्षेत्र के अंतर्गत है। उसमें भी उन्होंने कुछ ज्ञान पर कहा है और कुछ नीति पर। नानक दादू, सुंदरदास आदि ज्ञानाश्रयी निर्गुण भक्त कवियों में वे सहज ही सबसे बढ़कर हैं। नानक, दादू आदि में कबीर की ही पुनरावृत्तियाँ हैं, परंतु उस शक्ति के साथ नहीं। सुंदरदास में साहित्यिकता कबीर से अधिक है, परंतु आँचल में अस्वाभाविकता भी वे खूब बाँध लाए हैं। नीतिकाव्य की सफलता की कसौटी उसकी सर्वप्रियता हैं। कबीर के नीतिकाव्य की सर्वप्रियता न वृंद को प्राप्त हुई और न रहीम को। रहीम में कबीर के भाव ज्यों के त्यों मिलते हैं। कहीं कहीं तो दोहे का दोहा रहीम ने अपना लिया है; यथा—

उपसंहार

'कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहि।
सीस उतारै हाथ करि सो पैसे घर माँहि॥

—कबीर।

'रहिमन घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुईं धरै सो जावै घर माँहि ॥'

—रहीम।

वृंद और कबीर की विदग्धता एक सी है। रहस्यवादी कवियों में भी कबीर का ही आसन सबसे ऊँचा है, शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्हीं का है। प्रेमाख्यानक कवियों का रहस्यवाद तो उनके प्रबंध के बीच बीच में बहुत जगह थिगली सा लगता है और प्रबंध से अलग उसका अभिप्राय ही नष्ट हो जाता है। अन्य क्षेत्रों के कवियों के साथ कबीर की तुलना की ही नहीं जा सकती। तुलसी और सूर कविता के साम्राज्य में सर्वसंमति से और सब कवियों की पहुंच के बाहर हैं। चंदकृत पृथ्वीराजरासो नामक जो प्रक्षिप्त महाकाव्य प्रसिद्ध है, उसी में उनके महत्व का कहुत कुछ दर्शन हो जाता है। अतएव जब तक उनकी रचना के विषय में कोई निश्चयात्मक निर्णय नहीं हो जाता, तब तक उनको किसी के साथ तुलना के लिये खड़ा करना उनपर अन्याय करना है। केशव को काव्यशास्त्र का आचार्य भले ही मान लें, पर उनको नैसर्गिक कवियों में गिनना कवित्व का तिरस्कार करना है। बिहारी की कोटि के कवियों की कविता को सच्ची स्वाभाविक कविता में गिनने में भी संकोच हो सकता है। मूंड़ मुँड़ाकर शृंगार के पीछे पड़नेवाले सब कवि इसी श्रेणी में हैं। पर भूषण, जायसी और कबीर में कौन बड़ा है, इसका निर्णय नहीं हो सकता। तीनों में सच्चे कवि की आकुलता विद्यमान है, और अपने क्षेत्र में तीनों की पूरी पहुँच है, तीनों एक श्रेणी के हैं, फिर भी यदि आध्यात्मिकता को भौतिकता से श्रेष्ठ ठहराकर कोई कबीर को श्रेष्ठ ठहरावे तो रुचिस्वातंत्र्य के कारण उसे यह अधिकार है। प्रभाव से यदि श्रेष्ठता मानें तो तुलसी के बाद कबीर का ही नाम आता है; क्योंकि तुलसी को छोड़कर हिंदीभाषी जनता पर कबीर के समान या उनसे अधिक प्रभाव किसी कवि का नहीं पड़ा।

कबीर ग्रंथावली

(१) साखी

(१) गुरुदेव कौ अंग

सतगुर सवाँन को सगा, सोधी सई न दाति।
हरिजी सवाँन को हितू, हरिजन सई न जाति ॥ १ ॥
बलिहारी गुर आपणैं द्यौं हाड़ी कै बार।
जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ॥ २ ॥
सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार ॥ ३ ॥
राम नाम कै पटतरे, देबे कौं कुछ नाँहि।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माँहि ॥ ४ ॥
सतगुर के सदकै करूँ, दिल अपणी का साछ।
कलियुग हम स्यूँ लड़ि पड़्या महकम मेरा बाछ ॥ ५ ॥
सतगुर लई कमाँण करि, बाँहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतरि रह्या सरीर ॥ ६ ॥
सतगुर साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पढ़्या कलेजै छेक ॥ ७ ॥
सतगुर मार्‍या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंगि उघाड़ै लागिया, गई दवा सूँ फूंटि ॥ ८ ॥
हँसै न बोलै उनमनी, चंचल मेल्ह्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियार ॥ ९ ॥

---

(२) क–ख––देवता के आगे 'क्या' पाठ है जो अनावश्यक है।
(५) ख–सदकै करौं। ख–साच। तुक मिलाने के लिये 'साछ' 'साक्ष' लिखा है।

गूँगा हूवा बावला, बहरा हुआ कान।
पाऊँ थैं पंगुल भया, सतगुर मारया बाण ॥ १० ॥
पीछैं लागा जाइ था, लोक वेद के साथि।
आगैं थैं सतगुर मिल्या, दीपक दीया हाथि ॥ ११ ॥
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहूणाँ, बहुरि न आँवौं हट्ट ॥ १२ ॥
ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोबिंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥ १३ ॥
कबीर गुर गरवा मिल्या, रलि गया आटैं लूँण।
जाति पाँति कुल सब मिटे, नाँव धरौगे कौंण ॥ १४ ॥
जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधा अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़ंत ॥ १५ ॥
नाँ गुर मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव।
दुन्यूँ बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १६ ॥
चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा माँहि।
तिहि घरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोबिंद नाँहि ॥ १७ ॥
निस अँधियारी कारणैं, चौरासी लख चंद।
अति आतुर ऊदै किया, तऊ दिष्टि नहिं मंद ॥ १८ ॥
भली भई जु गुर मिल्या, नहीं तर होती हाँणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जाँणि ॥ १९ ॥
माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत।
कहै कबीर गुर ग्यान थैं, एक आध उबरंत ॥ २० ॥
सतगुरु बपुरा क्या करै, जे सिषही माँहै चूक।
भावै त्यूँ प्रमोधि ले, ज्यूँ वंसि बजाई फूक ॥ २१ ॥
संसै खाया सकल जुग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जे बेधे गुर अष्षिरां, तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध ॥ २२ ॥
चेतनि चौकी बैसि करि, सतगुर दीन्हाँ धीर।
निरभै होइ निसंक भजि, केवल कहै कबीर ॥ २३ ॥

(१२) क—ख—अघट, हट।
(१३) क—गोब्यंद।
(१५) क—चेला हैजा चंद (? है गा अंध)।
(१७) ख—चौरिणौं। ख—तिहि . . . जिहिं।
(२१) ख—प्रमोधिए। जाँणे बास जनाई कूद।
(२२) ख—सैल जुग।

सतगुर मिल्या त का भया, जे मनि पाड़ी भोल ।
पासि बिनंठा कप्पड़ा, क्या करै बिचारी चोल ॥ २४ ॥
बूड़े थे परि ऊबरे, गुर की लहरि चमंकि ।
भेरा देख्या जरजरा, (तब) ऊतरि पड़े फरंकि ॥ २५ ॥
गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार ।
आपा मेट जीवत मरै, तो पावै करतार ॥ २६ ॥
कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीष ।
स्वाँग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगै भीष ॥ २७ ॥
सतगुर साँचा सूरिवाँ, तातै लोहि लुहार ।
कसणी दे कंचन किया, ताई लिया ततसार ॥ २८ ॥
थापणि पाई थिति भई, सतगुर दीन्हीं धीर ।
कबीर हीरा वणजिया, मानसरोवर तीर ॥ २९ ॥
निहचल निधि मिलाइ तत, सतगुर साहस धीर ।
निपजी मैं साझी घणाँ, बाँटै नहीं कबीर ॥ ३० ॥
चौपड़ि माँडी चौहटै, अरध उरध बाजार ।
कहै कबीरा राम जन, खेलौ संत विचार ॥ ३१ ॥
पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुर दावा बताइया, खेलै दास कबीर ॥ ३२ ॥
सतगुर हम सूँ रीझि करि; एक कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का भीजि गया सब अंग ॥ ३३ ॥
कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ ।
अंतरि भीगी आत्माँ हरी भई बनराइ ॥ ३४ ॥

(२५) ख—जाजरा ।
इस दोहे के आगे ख प्रति में यह दोहा है—
कबीर सब जग यों भ्रम्या फिरै ज्यूँ रामे का रोज ।
सतगुर थैं सोधी भई, तब पाया हरि का षोज ॥ २७ ॥

(२७) इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है—
कबीर सतगुर ना मिल्या, सुणी अधूरी सीष ।
मुँड मुंडावै मुकति कूँ, चालि न सकई वीष ॥ २९ ॥

(२८) ख—सतगुर मेरा सूरिवाँ ।
(२९) इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है—
कबीर हीरा बणजिया हिरदे उकठी खाणि ।
पारब्रह्म क्रिपा करी सतगुर भये सुजाँण ॥

पूरे सूँ परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि ।
निर्मल कीन्ही आतमाँ ताथैं सदा हजूरि ॥ ३५ ॥

(२) सुमिरण कौ अंग

कबीर कहता जात हूँ, सुणता है सब कोइ ।
राम कहें भला होइगा, नहिं तर भला न होइ ॥ १ ॥
कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस ।
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥ २ ॥
तत तिलक तिहूँ लोक मैं, राम नाँव निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया सोभा अधिक अपार ॥ ३ ॥
भगति भजन हरि नाँव है, दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा वाचा क्रमनाँ, कबीर सुमिरण सार ॥ ४ ॥
कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंति सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥ ५ ॥
च्यंता तौ हरि नाँव की, और न चिंता दास ।
जे कुछ चितवैं राम बिन, सोइ काल कौ पास ॥ ६ ॥
पंच सँगी पिव पिव करैं, छटा जु सुमिरे मंन ।
आई सूति कबीर की, पाया राम रतंन ॥ ७ ॥
मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहि आहि ।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥ ८ ॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ मैं रही न हूँ ।
वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तूँ ॥ ९ ॥
कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति ।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति ॥ १० ॥
कबीर सूता क्या करै, जागि न जपै मुरारि ।
एक दिनाँ भी सोवणाँ, लंबे पाँव पसारि ॥ ११ ॥
कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि ।
जाका सँग तैं बीछुड्या, ताही के सँग लागि ॥ १२ ॥
कबीर सूता क्या करै उठि न रोवै दुक्ख ।
जाका बासा गोर मैं, सो क्यूँ सोवै सुक्ख ॥ १३ ॥

(३४) ख––में नहीं है ।
(३) ख––में नहीं है ।

कबीर सूता क्या करै, गुण गोविंद के गाइ।
तेरे सिर परि जम खड़ा, खरच कदे का खाइ ॥ १४ ॥
कबीर सूता क्या करै, सूताँ होइ अकाज।
ब्रह्मा का आसण खिस्या, सुणत काल की गाज ॥ १५ ॥
केसौ कहि कहि कूकिये, नाँ सोइयै असरार।
राति दिवस कै कूकणौं, (मत) कबहूँ लगै पुकार ॥ १६ ॥
जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम ॥ १७ ॥
कबीर प्रेम न चाषिया, चषि न लीया साव।
सूने घर का पाहुणाँ, ज्यूं आया त्यूं जाव ॥ १८ ॥
पहली बुरा कमाइ करि, बाँधी विष की पोट।
कोटि करम फिल पलक मैं, (जब) आया हरि की वोट ॥ १९ ॥
कोटि क्रम पेलै पलक मैं, जे रंचक आवै नाउँ।
अनेक जुग जे पुन्नि करै, नहीं राम बिन ठाउँ ॥ २० ॥
जिहि हरि जैसा जाणियाँ, तिन कूँ तैसा लाभ।
ओसौं प्यास न भाजई, जब लग धसै न आभ ॥ २१ ॥
राम पियारा छाड़ि करि, करै आन का जाप।
बेस्वाँ केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूँ बाप ॥ २२ ॥
कबीर आपण राम कहि, औरां राम कहाइ।
जिहि मुखि राम न ऊचरै, तिहि मुख फेरि कहाइ ॥ २३ ॥
जैसी माया मन रमै, यूँ जे राम रमाइ।
(तौ) तारा मंडल छाड़ि करि, जहाँ के सो तहाँ जाइ ॥ २४ ॥
लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम है लूटि।
पीछैं ही पछिताहुगे, यहु तन जैहै छूटि ॥ २५ ॥
लूटि सकै तौ लूटियौ, राम नाम भंडार।
काल कंठ तैं गहैगा, रूंधै दसूं दुवार ॥ २६ ॥
लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहु मार।
कहौ संतौ क्यूं पाइये, दुर्लभ हरिदीदार ॥ २७ ॥
गुण गायें गुण ना कटै, रटै न राम बियोग।
अह निसि हरि ध्यावै नहीं, क्यूं पावै दुलभ जोग ॥ २८ ॥

(१६) ख—में नहीं है।
(१७) क—आइ संसार में।
(२३) ख—जा युष, ता युष ।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरतां हरि - नाम।
सूली ऊपरि नट विद्या, गिरूँ त नाहीं ठाम ॥ २९ ॥
कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत ॥ ३० ॥
कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥ ३१ ॥
कबीर चित्त चमंकिया, चहुँ दिस लागी लाइ।
हरि सुमिरण हाथूं घडा, बेगे लेहु बुझाइ ॥ ३२ ॥ ६७ ॥

---

(३) विरह कौ अंग

रात्यूँ रूंनी बिरहनीं, ज्यूँ बंचौ कूँ कुंज।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ॥ १ ॥
अंबर कुंजाँ कुरलियाँ, गरजि भरे सब ताल।
जिनि थैं गोविंद बीछुटे, तिनके कौण हवाल ॥ २ ॥
चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति ॥ ३ ॥
बासुरि सुख नाँ रैणि सुख, ना सुख सुपिनै माँहि।
कबीर बिछुट्या राम सूँ नाँ सुख धूप न छाँह ॥ ४ ॥
बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैंगे आइ ॥ ५ ॥
बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै तुझ मिलन कूँ मनि नाहीं विश्राम ॥ ६ ॥
बिरहिन ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम।
मूवाँ पीछैं देहुगे, सो दरसन किहि काम ॥ ७ ॥
मूवाँ पीछैं जिनि मिलै, कहै कबीरा राम।
पाथर घाटा लोह सब, (तब) पारस कौंणे काम ॥ ८ ॥
अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसो कहियाँ।
कै हरि आवाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ ॥ ९ ॥
आइ न सकौं तुझ पैं, सकूँ न तूझ बुझाइ।
जियरा यौंही लेहुगे, बिरह तपाइ तपाइ ॥ १० ॥
यहु तन जालौं मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि।
मति वै राम दया करैं, बरसि बुझावैं अग्गि ॥ ११ ॥
यहु तन जालौं मसि करौं, लिखौं राम का नाउँ।
लेखणिं करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाउँ ॥ १२ ॥

कबीर पीर पिरावनीं, पंजर पीड़ न जाइ।
एक ज पीड़ परीति की, रही कलेजा छाइ ॥ १३ ॥

चोट सताँणीं बिरह की, सब तन जरजर होइ।
मारणहारा जाँणिहै, कै जिहि लागी सोइ ॥ १४ ॥

कर कमाण सर साँधि करि, खैचि जु मारचा माँहि।
भीतरि भिद्या सुमार ह्वै, जीवै कि जीवै नाँहि ॥ १५ ॥

जबहूँ मारचा खैचि करि, तब मैं पाई जाँणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छाँणि ॥ १६ ॥

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सच पाऊँ नहीं ॥ १७ ॥

बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥ १८ ॥

बिरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव ॥ १९ ॥

सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुणि सकै, कै साईं कै चित्त ॥ २० ॥

बिरहा बुरहा जिनि कहौ, बिरहा है सुलितान।
जिह घटि बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ॥ २१ ॥

अंषड़ियाँ झाईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड़चा, राम पुकारि पुकारि ॥ २२ ॥

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूँ जीव।
लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव ॥ २३ ॥

नैंनाँ नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरु मिलहुगे राम ॥ २४ ॥

अंषड़ियाँ प्रेम कसाइयाँ, लोग जाँणै दुखड़ियाँ।
साँईं अपणैं कारणैं, रोइ रोइ रतड़ियाँ ॥ २५ ॥

सोई आँसू सजणाँ, सोई लोक बिड़ाँहि।
जे लोइण लोंहीं चुवै, तौ जाँणों हेत हियाँहि ॥ २६ ॥

कबीर हसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त।
बिन रोयाँ क्यूँ पाइये, प्रेम पियारा मित्त ॥ २७ ॥

जौ रोऊँ तो बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ।
मनही माँहि बिसूरणाँ, ज्यूँ घुंण काठहि खाइ ॥ २८ ॥

हँसि हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ।
जो हाँसेंही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागनि कोइ ॥ २९ ॥

हाँसी खेलौं हरि मिलै, तौ कौण सहै षरसान।
काम क्रोध त्रिष्णां तजै, ताहि मिलै भगवान ॥ ३० ॥
पूत पियारो पिता कौं, गौंहनि लागा धाइ।
लोभ मिठाई हाथि दे, आपण गया भुलाइ ॥ ३१ ॥
डारी खांड़ पटकि करि, अंतरि रोस उपाइ।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाइ ॥ ३२ ॥
नैनां अंतरि आचरूँ, निस दिन निरषौं तोहि।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥ ३३ ॥
कबीर देखत दिन गया, निस भी देखत जाइ।
बिरहणि पिव पावै नहीं, जियरा तलपै माइ ॥ ३४ ॥
कै बिरहनि कूँ मींच दे, कै आपा दिखलाइ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाई ॥ ३५ ॥
बिरहणि थी तौ क्यूँ रही, जली न पीव के नालि।
रहु रहु मुगध गहेलड़ी, प्रेम न लाजूँ मारि ॥ ३६ ॥
हौं बिरहा की लाकड़ी, समझि समझि धूँधाउँ।
छूटि पड़ौं यौं बिरह तैं, जे सारीही जलि जाउँ ॥ ३७ ॥
कबीर तन मन यौं जल्या, बिरह अगनि सूँ लागि।
मृतक पीड़ न जांणई, जांणैगी यहु आगि ॥ ३८ ॥
बिरह जलाई मैं जलौं, जलती जल हरि जाउँ।
मो देख्यां जल हरि जलै, संतौं कहां बुझाउँ ॥ ३९ ॥
परबति परबति मैं फिरया, नैंन गँवाये रोइ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जातैं जीवनि होइ ॥ ४० ॥
फाड़ि पुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराउँ।
जिहि जिहि भेषां हरि मिलैं; सोइ सोइ भेष कराउँ ॥ ४१ ॥
नैन हमारे जलि गये, छिन छिन लोड़ैं तुझ।
नां तूँ मिलै न मैं खुसी, ऐसी बेदन मुझ ॥ ४२ ॥
भेला पाया श्रम सौं, भौसागर के मांह।
जे छांड़ौं तौ डूबिहौं, गहौं त डसिये बांह ॥ ४३ ॥

(३२) ख—में इसके अनंतर यह दोहा है—

मो चित तिलां न बीसरौ, तुम्ह हरि दूरि थयाह।
इहि अंगि औलू भाइ जिसी, जदि तदि तुम्ह स्यलियांह ॥

(४३) ख—में इसके आगे यह दोहा है—

बिरह जलाई मैं जलौं, मो बिरहिन कै दूष।
छांह न बैसों डरपती, मति जलि ऊठै रूष ॥ ४६ ॥

रैंणा दूर बिछोहिया, रहु रे संषम झूरि ।
देवलि देवलि धाहड़ी, देसी ऊगे सूरि ॥ ४४ ॥
सुखिया सब संसार है, खायै अरू सोवै ।
दुखिया दास कबीर है; जागै अरू रोवै ॥ ४५ ॥ ११२ ॥

(४) ग्यान बिरह कौ अंग

दीपक पावक आंणिया, तेल भी आंण्या संग ।
तीन्यूं मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ैं पतंग ॥ १ ॥
मारया है जे मरैगा, बिन सर थोथी भालि ।
पड़या पुकारै ब्रिछ तरि, आजि मरै कै काल्हि ॥ २ ॥
हिरदा भीतरि दौं बलै, धूंवां प्रगट न होइ ।
जाकै लागी सो लखै, कै जिहि लाई सोइ ॥ ३ ॥
झल ऊठी झोली जली, खपरा फूटिम फूटि ।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूत ॥ ४ ॥
अगनि जू लागि नीर मैं, कंदू जलिया झारि ।
उतर दषिण के पंडिता, रहे बिचारि बिचारि ॥ ५ ॥
दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाइ ॥ ६ ॥
गुर दाधा चेला जल्या, बिरहा लागी आगि ।
तिणका बपुड़ा ऊबरया, गलि पूरे कै लागि ॥ ७ ॥
आहेड़ी दौं लाइया, मृग पुकारै रोइ ।
जा बन में क्रीला करी, दाझत है बन सोई ॥ ८ ॥
पाणी माँहै प्रजली, भई अप्रबल आगि ।
बहती सलिता रहि गई, मंछ रहे जल त्यागि ॥ ९ ॥
समंदर लागी आगि, नदियाँ जलि कोइला भई ।
देखि कबीरा जागि, मंछी रूषां चढ़ि गई ॥ १० ॥ १२२ ॥

(५) परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि ।
पति संगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥ १ ॥

(९) ख—कवल जो फूला फूल बिन
(१०) ख—में इसके आगे यह दोहा है—
बिरहा कहै कबीर कौं तू जनि छाड़ै मोहि ।
पारब्रह्म के तेज मैं, तहाँ ले राखौं तोहि ॥

कौतिग दीठा देह बिन, रबि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माँहि है, बेपरवाँही दास॥ २॥
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्याही परवान॥ ३॥
अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, 'तहाँ' पाप पुन्य नहीं छोति॥ ४॥
हदे छाड़ि बेहदि गया, हुवा निरंतर बास।
कवल ज फूल्या फूल बिन, को निरषै निज दास॥ ५॥
कबीर मन मधुकर भया, रह्या निरंतर बास।
कवल ज फूल्या जलह बिन, को देखै निज दास॥ ६॥
अंतर कवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहाँ होइ।
मन भवरा तहाँ लुबधिया, जाँणैगा जन कोइ॥ ७॥
सायर नाहीं सीप बिन, स्वांति बूंद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि सिषर गढ़ माँहिं॥ ८॥
घट माँहै औघट लह्या, औघट माहैं घाट।
कहि कबीर परचा भया, गुरू दिखाई बाट॥ ९॥
सूर समाँणाँ चंद में, दहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पूरबला लेख॥ १०॥
हद छाड़ि बेहद गया, किया सुन्नि असनान।
मुनि जन महल न पावई, तहाँ किया विश्राम॥ ११॥
देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख॥ १२॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनंत।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत॥ १३॥
प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास।
मुख कसतूरी महमहीं, बाँणीं फूटी बास॥ १४॥
मन लागा उन मन्न सौं, गगन पहुँचा जाइ।
देख्या चंदबिहूँणाँ, चाँदिणाँ, तहाँ अलख निरंजन राइ॥ १५॥
मन लागा उन मन सौं, उन मन मनहि बिलग।
लूंण बिलगा पाणियाँ, पाँणीं लूंणा बिलग॥ १६॥
पाँणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ॥ १७॥

---

(९) क—औघट पाइया।

भली भई जु भै पड्या, गई दशा सब भूलि।
पाला गलि पाँणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि ॥ १८ ॥
चौहटै च्यंतामंणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि।
मीराँ मुझसूँ मिहर करि, इब मिलौं न काहू साथि ॥ १९ ॥
पंषि उडाणीं गगन कूँ, प्यंड रह्या परदेस।
पाँणी पीया चंच बिन, भूलि गया यहु देस ॥ २० ॥
पंषि उडानीं गगन कूँ, उड़ी चढ़ी असमान।
जिहिं सर मंडल भेदिया, सो सर लागा कान ॥ २१ ॥
सुरति समाँणीं निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यंभ दुवार ॥ २२ ॥
सुरति समाँणी निरति मैं, अजपा माँहै जाप।
लेख समाँणाँ अलेख मैं, यूँ आपा माँहै आप ॥ २३ ॥
आया था संसार में, देषण कौं बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो, पड़ि गया नजरि अनूप ॥ २४ ॥
अंक भरे भरि भेटिया, मन मैं नाँहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूं मिलैं, जब लग दोइ सरीर ॥ २५ ॥
सचु पाया सुख ऊपनाँ, अरु दिल दरिया पूरि।
सकल पाप सहजैं गये, जब साँई मिल्या हजूरि ॥ २६ ॥
धरती गगन पवन नहीं होता, नहीं तोया, नहीं तारा।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा ॥ २७ ॥
जा दिन कृतमनां हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम जन, जिनि देखै औघट घट ॥ २८ ॥
थिति पाई मन थिर भया, सतगुर करी सहाइ।
अनिन कथा तनि आचरी, हिरदै त्रिभुवन राइ ॥ २९ ॥
हरि संगति सीतल भया, मिटा मोह की ताप।
निस बासुरि सुखनिध्य लह्या, जब अंतरि प्रकट्या आप ॥ ३० ॥
तन भीतरि मन मानियाँ, बाहरि कह्या न जाइ।
ज्वाला तै फिरि जल भया, बुझी बलंती लाइ ॥ ३१ ॥
तत पाया तन बीसरया, जब मनि धरिया ध्यान।
तपनि गई सीतल भया, जब सुनि किया असनान ॥ ३२ ॥

(२६) ख—सकल अघ।

जिनि पाया तिनि सू गह गह्या, रसनाँ लागी स्वादि।
रतन निराला पाईया, जगत ढंढोल्या बादि॥ ३३॥
कबीर दिल स्याबति भया, पाया फल संम्रथ।
सायर माँहि ढंढोलताँ, हीरैं पड़ि गया हथ्थ॥ ३४॥
जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि॥ ३५॥
जा कारणि मैं ढूंढ़ता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ॥ ३६॥
जा कारणि मैं जाइ था, सोई पाई ठौर।
सोई फिरि आपण भया, जासूं कहता और॥ ३७॥
कबीर देख्या एक अंग, महिमा कही न जाइ।
तेज पुंज पारस धणीं, नैनूं रहा समाइ॥ ३८॥
मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, अब उड़ि अनत न जाहिं॥ ३९॥
गगन गरजि अमृत चवै, कदली कवल प्रकास।
तहाँ कबीरा बंदिगी, कै कोई निज दास॥ ४०॥
नींव बिहूंणाँ देहुरा, देह बिहूंणाँ देव।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करे अलख की सेव॥ ४१॥
देवल माँहैं देहुरी, तिल जेहैं बिसतार।
माँहैं पाती माँहि जल, माँहैं पूजणहार॥ ४२॥
कबीर कवल प्रकासिया, ऊग्या निर्मल सूर।
निस अंधियारी मिटि गई, बाजे अनहद तूर॥ ४३॥
अनहद बाजै नीझर झरै, उपजै ब्रह्म गियान।
अविगति अंतरि प्रगटै, लागै प्रेम धियान॥ ४४॥
आकासे मुखि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पाँणीं को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥ ४५॥
सिव सकती दिसि कौंण जु जोवै, पछिम दिसा उठै धूरि।
जल मैं स्यंघ जु घर करै, मछली चढ़ै खजूरि॥ ४६॥
अमृत बरिसै हीरा निपजै, घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारषू, अगभै उतर्या पार॥ ४७॥
ममिता मेरा क्या करै, प्रेम उघाड़ीं पौलि।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सौड़ि॥ ४८॥ १७०॥

(६) रस कौ अंग

कबीर हरि रस यौं पिया बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़हि चाकि ॥ १ ॥
राम रसाइन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवण दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥ २ ॥
कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाइ ॥ ३ ॥
हरि रस पीया जाँणिये, जे कबहूँ न जाइ खुमार।
मैंमंता घूंमत रहै, नाँही तन की सार ॥ ४ ॥
मैंमंता तिण नां चरै, सालै चिता सनेह।
बारि जु बाँध्या प्रेम कै, डारि रह्या सिरि खेह ॥ ५ ॥
मैंमंता अविगत रता, अकलप आसा जीति।
राम अमलि माता रहै, जीवत मुकति अतीति ॥ ६ ॥
जिहि सर घड़ा न डूबता, अब मैं गल मलि न्हाइ।
देवल बूड़ा कलस सूं, पंषि तिसाई जाइ ॥ ७ ॥
सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥ ८ ॥ १६८ ॥

---:o:---

(७) लांबि कौ अंग

कया कमंडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
तन मन जोवन भरि पिया, प्यास न मिटी सरीर ॥ १ ॥
मन उलट्या दरिया मिल्या, लागा मलि न्हांन।
थाहत थाह न आवई, तूँ पूरा रहिमांन ॥ २ ॥
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समानी समंद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥ ३ ॥
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
समंद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्‌या जाइ ॥ ४ ॥ १७२ ॥

---:o:---

(८) जर्णां कौ अंग

भारी कहौं त बहु डरौं, हलका कहूँ तौ झूठ।
मैं का जाँणौं राम कूं, नैंनूं कबहुँ न दीठ ॥ १ ॥

(६.८) ख---रिचक घट मैं संचरे।
(८.१) क---हलवा कहूँ।

दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाइ।
हरि जैसा है तैसा रहौ, तूं हरिषि हरिषि गुण गाइ ॥ २ ॥
ऐसा अद्भूत जिनि कथै, अद्भुत राखि लुकाइ।
बेद कुरानौं गमि नहीं, कह्यां न को पतियाइ ॥ ३ ॥
करता की गति अगम है; तूं चलि अपणैं उनमान।
धीरैं धीरैं पाव दे, पहुँचैंगे परवान ॥ ४ ॥
पहुँचैंगे तब कहैंगे, अमड़ैंगे उस ठांइ।
अजहूँ बेरा समंद मै, बोलि बिगूचै कांइ ॥ ५ ॥ १७७ ॥

(९) हैरान कौ अंग

पंडित सेती कहि रहे, कह्या न मानै कोइ।
ओ अगाध एका कहैं, भारी अचिरज होइ ॥ १ ॥
बसे अपंडी पंड मैं, ता गति लषै न कोइ।
कहै कबीरा संत हौ, बड़ा अचंभा मोहि ॥ २ ॥१७९॥

---

(१०) लै कौ अंग

जिहि बन सीह न संचरै, पंषि उड़े नहिं जाइ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहां कबीर रह्या ल्यौ लाइ ॥ १ ॥
सुरति ढीकुली लै जल्यौ, मन नित ढोलन हार।
कँवल कुवां मैं प्रेम रस, पीवै बारंबार ॥ २ ॥
गंग जमुन उर अंतरै, सहज सुंनि ल्यौ घाट।
तहां कबीरै मठ रच्या, मुनि जन जोवैं बाट ॥ ३ ॥ १८२ ॥

---

(११) निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझ सौं, बहु गुणियाले कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं, तौ नील रँगाऊँ दंत ॥ १ ॥
नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झंपेउं।
नां हौं देखौं और कूं, नां तुझ देखन देउं ॥ २ ॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा।
तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै है मेरा ॥ ३ ॥
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥ ४ ॥

(१०--२) ख--खमन चित।

कबीर सीप समंद की, रटै पियास पियास।
समदहि तिणका बरि गिणै स्वाँति बूंद की आस ॥ ५ ॥

कबीर सुख कौं जाइ था, आगैं आया दुख।
जाहि सुख घरि आपणैं, हम जाणौं अरु दुख ॥ ६ ॥

दो जग तौ हम अंगिया, यहु डर नाहीं मुझ।
भिस्त न मेरे चाहिये, बाझ पियारे तुझ ॥ ७ ॥

जे वो एकै न जांणियां, तौ जांण्यां सब जांण।
जे वो एक न जाँणियाँ, तो सबहीं जाँण अजाँण ॥ ८ ॥

कबीर एक न जांणियां, तौ बहु जांण्यां क्या होइ।
एक तैं सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥ ९ ॥

जब लग भगति सकांमता, तब लग निर्फल सेव।
कहै कबीर वै क्यूं मिलैं, निहकामी निज देव ॥ १० ॥

आसा एक जु राम की, दूजी आज निरास।
पाँणी माँहैं घर करैं, ते भी मरैं पियास ॥ ११ ॥

जे मन लागै एक सूं, तौ निरबाल्या जाइ।
तूरा दुइ मुखि बाजणां, न्याइ तमाचे खाइ ॥ १२ ॥

कबीर कलिजुग आइ करि, कीये बहुतज मीत।
जिन दिल बंधी एक सूं, ते सुखु सोवै नचींत ॥ १३ ॥

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउं ॥ १४ ॥

तो तो करै त बाहुड़ों, दुरि दुरि करै तौ जाउं।
ज्यूं हरि राखैं त्यूं रहौं, जो देवै सो खाउं ॥ १५ ॥

मन प्रतीति न प्रेम रस, नां इस तन मैं ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसै रहसी रंग ॥ १६ ॥

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिब्रता नाँगी रहै, तौ उसही पुरिस कौं लाज ॥ १७ ॥

धरि परमेसुर पाँहुणां, सुणौं सनेही दास।
षट रस भोजन भगति करि, ज्यूं कदे न छाड़ै पास ॥१८॥२००॥

---

(७) ख—भिसति।

(११) इसके आगे ख में ये दोहे हैं—

आसा एक ज राम की दूजी आस निवारि।
आसा फिरि फिर मारसी, ज्यूं चौपड़ि का सारि ॥ ११ ॥
आसा एक ज राम की जुग जुग पुरवे आस।
जै पाडल क्यों रे करै, बसैंहि जु चंदन पास ॥ १२ ॥

(१२) चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पटन ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥ १ ॥
जिनकै नौबति बाजती, मैंगल बँधते बारि।
एकै हरि के नाँव बिन, गए जन्म सब हारि ॥ २ ॥
ढोल दमामा दुड़बड़ी, सहनाई संगि भेरि।
औसर चल्या बजाइ करि, है कोइ राखै फेरि ॥ ३ ॥
सातौं सबद जु बाजते, घरि घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥ ४ ॥
कबीर थोड़ा जीवणाँ, माड़े बहुत मँडाण।
सबहीं ऊभा मेल्हि गया, राव रंक सुलितान ॥ ५ ॥
इक दिन ऐसा होइगा, सब सूँ पड़ै बिछोह।
राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होई ॥ ६ ॥
कबीर पटल कारिवाँ, पंच चोर दस द्वार।
जम रांणौं गढ़ भेलिसी, सुमिरि लै करतार ॥ ७ ॥
कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
टेसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥ ८ ॥
कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग ॥ ९ ॥
कबीर कहा गरबियौ, ऊँचे देखि अवास।
काल्हि परयूँ भ्वैं लेटणाँ, ऊपरि जामैं घास ॥ १० ॥
कबीर कहा गरबियौ, चाँम लपेटे हड।
हैंवर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा खड ॥ ११ ॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नाँ जाणौं कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥ १२ ॥
यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के ब्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूल ॥ १३ ॥

(६) ख में इसके आगे यह दोहा है—

ऊजड़ खेड़े ठीकरी, घड़ि घड़ि गए कुँभार।
रावण सरिखे चलि गए, लंका के सिकदार ॥ ७ ॥

(७) ख—जम···भेलसी, बोल गले गोपाल।

(१२) ख—कत मारसी।

(१३) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—

मीति बिसारी बावरे, अचिरज कीया कौन।
तन माटी मैं मिलि गया, ज्यूँ आटे मैं लूण ॥ १५ ॥

जांमण मरण बिचारि करि, कूड़े कांम निवारि।
जिनि पंथूं तुझ चालणां, सोई पंथ संवारि ॥ १४ ॥
बिन रखवाले बाहिरा, चिड़ियें खाया खेत।
आधा प्रधा ऊबरै, चेति सकै तो चेति ॥ १५ ॥
हाड़ जलै ज्यूं लाकड़ी, केस जलैं ज्यूं घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥ १६ ॥
कबीर मंदिर ढहि पड़्या, सेंट भई सैवार।
कोई चेजारा चिणि गया, मिल्या न दूजी बार ॥ १७ ॥
कबीर देवल ढहि पड़्या, ईंट भई सैवार।
करि चेजारा सौं प्रीतिड़ी, ज्यौं ढहै न दूजी बार ॥ १८ ॥
कबीर मंदिर लाष का, जड़िया हीरैं लालि।
दिवस चारि का पेषणां, बिनस जाइगा कालि ॥ १९ ॥
कबीर धूलि सकेलि करि, पुड़ी ज बांधी एह।
दिवस चारि का पेषणां, अंति षेह का षेह ॥ २० ॥
कबीर जे धंधै तौ धूलि, बिन धंधे धूलैं नहीं।
ते नर बिनठे मूलि, जिनि धंधै मैं ध्याया नहीं ॥ २१ ॥
कबीर सुपनैं रैनि कै, ऊघड़ि आये नैंन।
जीव पड़्या बहु लूटि मैं, जागै तौ लैण न दैण ॥ २२ ॥

(१६, १७) नंबर के दोहे 'क' प्रति में २२, २३ नंबर पर हैं।
आजि कि काल्हि कि पचे दिन, जंगल होइगा बास।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥ १८ ॥
मरहिंगे मरि जांहिंगे, नांव न लेगा कोइ।
ऊजड़ जाइ बसाहिंगे, छाड़ि बसंती लोइ ॥ १९ ॥
कबीर खेति किसाण का, म्रिगौं खाया झाड़ि।
खेत बिचारा क्या करै जो खसम न करई बाड़ि ॥ २० ॥
(१६) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—
मडा जलै लकडी जलैं, जलै जलावणहार।
कौतिगहारे भी जलैं, कासनि करौं पुकार ॥ २३ ॥
कबीर देवल हाड का, मारी तणा बधांण।
खडहडता पाया नहीं, देवल का सहनांण ॥ २४ ॥
(१७) ख—देवल ढहि।
(२०) ख—धूलि समेटि।
(२२) ख—बहु भूलि मैं।

कबीर सुपनै रैनि कै पारस जीय मैं छेक।
जे सोऊँ तो दोइ जणाँ, जे जागूं तो एक ॥ २३ ॥
कबीर इस संसार में घणौं मनिष मतिहींण।
राम नाम जाँणौं नहीं, आये टापा दीन ॥ २४ ॥
कहा कियौ हम आइ करि, कहा करैंगे जाइ।
इत के भए न उत के, चाले मूल गँवाइ ॥ २५ ॥
आया अणआया भया, जे बहुरता संसार।
पड़या भुलाँवाँ गफिलाँ, गये कुबुधी हारि ॥ २६ ॥
कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिगि जीमण संसार।
धूँवाँ केरा धौलहर जात न लागै वार ॥ २७ ॥
जिहि हरि की चोरी करी, गये राम गुण भूलि।
ते बिधना बागुल रचे, रहे अरध मुखि झूलि ॥ २८ ॥
माटी मलणि कुँभार की, घड़ीं सहै सिरि लात।
इहि औसरि चेत्या नहीं, चूका अब की घात ॥ २९ ॥
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह।
राम नाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख षेह ॥ ३० ॥
राम नाम जाण्यो नहीं, लागी मोटी षोड़ि।
काया हाँडी काठ की, ना ऊ चढ़ै बहोड़ि ॥ ३१ ॥
राम नाम जाण्यां नहीं, बात बिनंठी मूलि।
हरत इहाँ ही हारिया, परति पड़ी मुख धूलि ॥ ३२ ॥

---

(२३) इसके आगे ख में यह दोहा है—
कबीर इहै चितावणीं, जिन संसारी जाइ।
जे पहिलीं सुख भोगिया, तिन का गुड़ ले खाइ ॥ ३० ॥

(२४) में इसके आगे यह दोहा है—
पीपल रूनौं फूल बिन, फल बिन रूनी गाइ।
एकाँ एकाँ माणसां, टापा दीन्हा आइ ॥ ३२ ॥

(३२) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—
राम नाम जाण्या नहीं, मेल्या मनहि बिसारि।
ते नर हाली बादरी, सदा परा पराए बारि ॥ ४२ ॥
राम नाम जाण्या नहीं, ता मुखि आनहि आन।
कै मूसा कै कातरा, खाता गया जनम ॥ ४३ ॥
राम नाम जाण्यौ नहीं हूवा बहुत अकाज।
बूड़ा लौरे बापुड़ा, बड़ा बूटा की लाज ॥ ४४ ॥

राम नाम जाण्यां नहीं, पल्यो कटक कुटुंब।
धंधा ही में मरि गया, बाहर हुई न बंब ॥ ३३ ॥
मनिषा जनम दुलंभ है, देह न बारंबार।
तरवर थैं फल झड़ि पड़्या, बहुरि न लागैं डार ॥ ३४ ॥
कबीर हरि की भगति करि, तजि विषिया रस चोज।
बार बार नहीं पाइए, मनिषा जन्म की मौज ॥ ३५ ॥
कबीर यहु तन जात है, सकै तो ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साध की, कै गुण गोबिंद के गाइ ॥ ३६ ॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो लेहु बहोड़ि।
नागे हाथूं ते गए, जिनके लाख करोड़ि ॥ ३७ ॥
यह तनु काचा कुंभ है, चोट चहूँ दिसि खाइ।
एक राम के नाँव बिन, जदि तदि प्रलै जाइ ॥ ३८ ॥
यह तन काचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि ॥ ३९ ॥
काँची कारी जिनि करै, दिन दिन बधै बियाधि।
राम कबीरै रुचि भई, याही ओषदि साधि ॥ ४० ॥
कबीर अपने जीवतैं, ए दोइ बातैं धोइ।
लोग बड़ाई कारणैं, अछना मूल न खोइ ॥ ४१ ॥
खंभा एक गइंद दोइ, क्यूं करि बंधिसि बारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥ ४२ ॥
दीन गँवाया दुनीं सौं, दुनी न चाली साथि।
पाइ कुहाड़ा मारिया, गाफिल अपणैं हाथि ॥ ४३ ॥
यह तन तौ सब बन भया, करम भए कुहाड़ि।
आप आप कूं काटिहैं, कहैं कबीर बिचारि ॥ ४४ ॥

(३५) ख में इसके आगे यह दोहा है—
पाणी ज्यौर तालाब का, दह दिसी गया बिलाइ।
यह सब यौंही जायगा, सकै तो ठाहर लाइ ॥४८॥

(३६) ख—के गोबिंद गुण गाइ।

(३७) ख—नागे पाऊं।

(३८) ख में इसके आगे यह दोहा है—
यह तन काचा कुंभ है, माँहि किया ढिग बास।
कबीर नैंण निहारियाँ, तौ नहीं जीवण की आस ॥५२॥

कुल खोयाँ कुल ऊबरै, कुल राख्याँ कुल जाइ ।
राम निकुल कुल भेंटि लै, सब कुल रह्या समाइ ॥ ४५ ॥

दुनियाँ के धोखै मुवा, चलै जु कुल की कांणि ।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धरचा मसाँणि ॥ ४६ ॥

दुनियाँ भाँडा दुख का, भरी मुहाँमुह भूष ।
अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूष ॥ ४७ ॥

जिहि जेवड़ी जग बंधिया, तूं जिनि बँधै कबीर ।
ह्वैसी आटा लूंण ज्यूँ, सोना सँवाँ शरीर ॥ ४८ ॥

कहत सुनत जग जात है, विषै न सूझै काल ।
कबीर प्यालै प्रेम कै, भरि भरि पिवै रसाल ॥ ४९ ॥

कबीर हद के जीव सूँ, हित करि मुखाँ न बोलि ।
जे लागे बेहद सूँ, तिन सूँ अंतर खोलि ॥ ५० ॥

कबीर केवल राम की, तूं जिनि छाड़ै ओट ।
घण अहरणि बिचि लोह ज्यूँ, घणी सहै सिर चोट ॥ ५१ ॥

कबीर केवल राम कहि, सुध गरीबी झालि ।
कूड़ बड़ाई बूड़सी, भारी पड़सी कालि ॥ ५२ ॥

काया मंजन क्या करै, कपड़ धोइम धोइ ।
उजल हूवा न छूटिए, सुख नींदड़ीं न सोइ ॥ ५३ ॥

उजल कपड़ा पहरि करि, पान सुपारी खाँहि ।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जाँहि ॥ ५४ ॥

तेरा संगी कोइ नहीं, सब स्वारथ बंधी लोइ ।
मनि परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ॥ ५५ ॥

(४६) ख---का को लाजसी ।

(४७) इसके आगे ख में यह दोहा है---

दुनियाँ कै मैं कुछ नहीं, मेरे दुनी अकथ ।
साहिब दरि देखौं खड़ा, सब दुनियाँ दोजग जंत ॥६१॥

(५०) इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है---

कबीर सापत की सभा, तू मत बैठे जाइ ।
एकै बाड़ै क्यू बड़ै, रोझ गदहड़ा गाइ ॥ ६५ ॥

(५४) इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है---

चली चरते म्रिध लै, बींध्या एकज सींग ।
हम तो पंथी पंथ गिरि, हरचा चरेगा कौण ॥ ७४ ॥

मांइ बिड़ांणों बाप बिड़, हम भी मंभि बिड़ांह ।
दरिया केरी नाव ज्यूँ, संजोगे मिलियांह ॥ ५६ ॥
इत प्रघर उत घर, बड़जण आए हाट ।
करम किराँणां बेचि करि, उठि ज लागे वाट ॥ ५७ ॥
नांन्हाँ कातौ चित दे, महँगे मोलि बिकाइ ।
गाहक राजा राम हैं, और न नेड़ा आइ ॥ ५८ ॥
डागल उपरि दौड़णां, सुख नींदड़ी न सोइ ।
पुनैं पाए द्यौंहड़े, ओछी ठौर न खोइ ॥ ५६ ॥
मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसी भाजि ।
कब लग राखौं हे सखी, रुई पलेटी आगि ॥ ६० ॥
मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास ।
मेरी पग का पैंषड़ा, मेरी गल की पास ॥ ६१ ॥
कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार ।
हलके हलके तिरि गए, बूड़े तिनि सिर भार ॥ ६२ ॥ २६२ ॥

(१३) मन को अंग

मन कै मते न चालिये, छाड़ि जीव की बाँणि ।
ताकू केरे सूत ज्यूँ, उलटि अपूठा आँणि ॥

(५७) ख--एथि परिघरि उथि घरि, जंवणा आग हाट ।
(५६) ख--पुन पाया देहड़ी, बोछो ठौर न खोइ ॥
(५६) ख में इसके आगे यह दोहा है--
ज्यूं कोली पेताँ बुणै, बुणतां आवै-बौड़ि ।
ऐसा लेखा मीच का, कछु दौड़ि सकै तौ दौड़ ॥ ७६ ॥
(६१) ख में इसके आगे ये दोहे हैं--
मेरे तेर की जिवड़ी बसि बंध्या संसार ।
कहाँ सुकुँणबा सुत कलित, दाझणि बारंबार ॥ ७६ ॥
मेरे तेर की रासड़ी, बलि बंध्या संसार ।
दास कबीरा किमि बँधै, जाकै राम अधार ॥ ८२ ॥
कबीर नाँव जरजरी, भरी बिराणैं भारि ।
खेवट सौं परचा नहीं, क्यों करि उतरैं पारि ॥ ८३ ॥
(६२) ख में इसके आगे यह दोहा है--
कबीर पगड़ा दूरि है, जिनकै बिचिहै राति ।
का जाणौं का होइगा, ऊगवै तैं परभाति ॥ ८४ ॥
(१) ख--तेरा तार ज्यूँ ।

चिंता चिंति निबारिए, फिर बूझिए न कोइ ।
इंद्री पसर मिटाइए, सहजि मिलैगा सोइ ॥ १ ॥
आसा का ईंधरण करूँ, मनसा करूं बिभूति ।
जोगी फेरी फिल करौं, यौं बिनवाँ वैं सूति ॥ ३ ॥
कबीर सेरी साँकड़ी, चंचल मनवाँ चोर ।
गुण गावै लैलीन होइ, कछू एक मन मैं और ॥ ४ ॥
कबीर मारूं मन कूँ, टूक टूक ह्वै जाइ ।
विष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥ ५ ॥
इस मन कौं बिसमल करौं दीठा करौं अदीठ ।
जे सिर राखौं आपणाँ, तौ पर सिरिज अंगीठ ॥ ६ ॥
मन जाँणैं सब बात, जाणत हीं औगुण करै ।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूं वैं पड़ै ॥ ७ ॥
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ॥ ८ ॥
मन दीयां मन पाइए, मन बिन मन नहीं होइ ।
मन उनमन उस अंड ज्यूं, अनल अकासां जोइ ॥ ९ ॥
मन गोरख मन गोबिंदौ, मन हीं औघड़ होइ ।
जे मन राखै जतन करि, तौ आपैं करता सोइ ॥ १० ॥
एक ज दोसत हम किया जिस गलि लाल कबाइ ।
सब जग धोबी धोइ मरै, तौ भी रंग न जाइ ॥ ११ ॥
पाँणी हीं तैं पातला, धूवाँ हीं तैं भींण ।
पवनाँ वेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥ १२ ॥
कबीर तुरी पलांड़ियाँ, चाबक लीया हाथि ।
दिवस थकां साँईं मिलौं पीछै पड़िहैं राति ॥ १३ ॥
मनवां तो अधर बस्या, बहुतक झींणां होइ ।
आलोकत सचु पाइया, कबहूँ न न्यारा सोइ ॥ १४ ॥
मन न मारया मन करि, सके न पंच प्रहारि ।
सीला साच सरधा नहीं, इंद्री अजहुँ उधारि ॥ १५ ॥

(२) ख—परस निबारिए ।
(८) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—
कबीर मन मृथा भया, खेत बिराना खाइ ।
सूलाँ करि करि से किसी, जब खसम पहूंचे आइ ॥ ९ ॥
मन को मन मिलता नहीं, तौ होता तन का भंग ।
अब ह्वै रहु काली कांवली, ज्यौं दूजा चढ़ै न रंग ॥ १० ॥

कबीर मन बिकरै पड़्या, गया स्वादि कै साथि।
गलका खाया बरजतां अब क्यूं आवै हाथि ॥ १६ ॥
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागै नाहिं।
घणीं सहैगा सासनां, जम की दरगह माहिं ॥ १७ ॥
कोटि कर्म पल मैं करै, यहु मन बिषिया स्वादि।
सतगुर सबद न मानई, जनम गँवाया बादि ॥ १८ ॥
मैंमंता मन मारि रे, घटहीं माँहैं घेरि।
जबहीं चालै पीठि दै, अंकुस दे दे फेरि ॥ १९ ॥
मैंमंता मन मारि रे, नाँन्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरी, ब्रह्म झलकै सीसि ॥ २० ॥
कागद केरी नाँव री, पाँणी केरी गंग।
कहैं कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ॥ २१ ॥
कबीर यह मन कत गया, जो मन होता काल्हि।
डूंगरि बूठा मेह ज्यूं, गया निवाँणाँ चालि ॥ २२ ॥
मृतक कूं धी जौं नहीं, मेरा मन बी है।
बाजै बाव बिकार की, भी मूवा जीवै ॥ २३ ॥
काटी कूटि मछली, छींकै धरी चहोड़ि।
कोइ एक अषिर मन बस्या, दह मैं पड़ी बहोड़ि ॥ २४ ॥
कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़्या अकास।
उहाँ हीं तैं गिरि पड़्या, मन माया के पास ॥ २५ ॥
भगति दुवारा सकड़ा, राई दसवैं भाइ।
मन तौ मैंगल ह्वै रह्यो, क्यूं करि सकै समाइ ॥ २६ ॥
करता था तौ क्यूं रह्या, अब करि क्यूं पछताइ।
बोवै पेड़ बँबूल का, अंब कहाँ तैं खाइ ॥ २७ ॥
काया देवल मन धजा, बिषै लहरि फरराइ।
मन चाल्याँ देवल चलै, ताका सर्बस जाइ ॥ २८ ॥

(१९) ख में इसके आगे यह दोहा है—
जौ तन काँहै मन धरै, मन धरि निर्मल होइ।
साहिब सौं सनमुख रहै, तौ फिरि बालक होइ ॥
(२४) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—
मूवा मन हम जीवत देख्या, जैसे मड़िहट भूत।
मूवाँ पीछे उठि उठि लागै, ऐसा मेरा पूत ॥४३॥
मूवै कौंधी गौं नहीं, मन का किया बिनास।
साधू तब लग डर करै, जब लग पंजर सास ॥२८॥

मनह मनोर्थ छाड़ि दे, तेरा किया न होइ।
पाँणीं मैं घीव गीकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ ॥ २९ ॥
काया कसूं कमांण ज्यूं, पंचतत्त करि बांण।
मारौं तौ मन मृग कौं, नहीं तौ मिथ्या जाँण ॥३०॥२९२॥

—:०:—

(१४) सूषिम मारग कौ अंग

कौंण देस कहाँ आइया, कहु क्यूं जांण्यां जाइ।
उहु मार्ग पावैं नहीं, भूलि पड़े इस मांहि ॥ १ ॥
उतीथैं कोइ न आवई, जाकूं बूझौं धाइ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ लदाइ ॥ २ ॥
सबकूं बूझत मैं फिरौं, रहण कहै नहीं कोइ।
प्रीति न जोड़ी राम सूं, रहण कहां थैं होइ ॥ ३ ॥
चलौ चलौं सबको कहै, मोहि अंदेसा और।
साहिब सूं पर्चा नहीं, ए जांहिगें किस ठौर ॥ ४ ॥
जाइबे कौं जागा नहीं, रहिबे कौं नहीं ठौर।
कहै कबीरा संत हौ, अबिगति की गति और ॥ ५ ॥
कबीर मारिग कठिन है, कोइ न सकई जाइ।
गए ते बहुड़े नहीं, कुसल कहै को आइ ॥ ६ ॥
जन कबीर का सिषर घर, बाट सलैली सैल।
पाव न टिकै पपीलका, लोगनि लादे बैल ॥ ७ ॥
जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राइ ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहूँचे जाइ ॥ ८ ॥
कबीर मारग अगम है, सब मुनिजन बैठे थाकि।
तहाँ कबीरा चलि गया, गहि सतगुर की साषि ॥ ९ ॥
सुर नर थाके मुनि जनां, जहां न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ ॥१०॥६०२॥

—:०:—

(३०) ख में इसके आगे यह दोहा है—
कबीर हरि दिवान कैं, क्यूंकर पावै दादि।
पहली बुरा कमाइ करि, पीछे करै फिलादि ॥ ३५ ॥

(२) ख में इसके आगे यह दोहा है—
कबीर संसा जीव मैं, कोइ न कहै समुझाइ।
नाँनाँ बांणी बोलता, सो कत गया बिलाइ ॥ ३ ॥

(१५) सूषिम जनम कौ अंग

कबीर सूषिम सुरति का, जीव न जांणैं जाल।
कहै कबीरा दूरि करि, आतम अदिष्टि काल ॥ १ ॥
प्राण पंड कौं तजि चलै, मूवा कहैं सब कोइ।
जीव छतां जांमैं मरै, सूषिम लखै न कोइ ॥ २ ॥३०४॥

------

(१६) माया कौ अंग

जग हटवाड़ा स्वाद ठग, माया बेसाँ लाइ।
रामचरन नीकाँ गही, जिनि जाइ जनम ठगाइ ॥ १ ॥
कबीर माया पापणीं, फंध ले बैठि हाटि।
सब जग तौ फंधै पड़्या, गया कबीरा काटि ॥ २ ॥
कबीर माया पापणीं, लालै लाया लोग।
पूरी किनहूँ न भोगई, इनका इहै बिजोग ॥ ३ ॥
कबीरा माया पापणीं, हरि सूं करे हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥ ४ ॥
जाणीं जे हरि कौं भजौं, मो मनि मोटी आस।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥ ५ ॥
कबीर माया मोहनी, मोहे जाँण सुजाँण।
भागाँ ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बाँण ॥ ६ ॥
कबीर माया मोहनी, जैसी मीठी खाँड़।
सतगुर की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड़ ॥ ७ ॥
कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाँणि।
कोइ एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काँणि ॥ ८ ॥

(१५-२) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—

कबीर अंतहकरन मन, करन मनोरथ माँहि।
उपजित उतपति जाँणिए, बिनसै जब बिसराँहि ॥ ३ ॥
कबीर संसा दूरि करि, जाँमण मरन भरम।
पंच तत्त तत्तहि मिलै, सुंनि समाना मन ॥ ४ ॥

(१६-१) ख में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर जिभ्या स्वाद तें, क्यूँ पल में ले काम।
अंगि अविद्या ऊपजै, जाइ हिरदा मैं राम ॥ २ ॥

(५) ख—हरि क्यौं मिलौं।

कबीर माया मोहनी, माँगी मिलै न हाथि।
मनह उतारी झूठ करि, तब लागी डोलै साथि ॥ ९ ॥
माया दासी संत कीं, ऊँभी देइ असीस।
बिलसी अरु लातौं छड़ी, सुमरि सुमरि जगदीस ॥ १० ॥
माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर।
आसा त्रिष्णाँ नाँ मुई, यौं कहि गया कबीर ॥ ११ ॥
आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।
सोइ मूवे धन संचते, सो उवरे जे खाइ ॥ १२ ॥
कबीर सो धन संचिए, जो आगैं कूँ होइ।
सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥ १३ ॥
त्रीया त्रिष्णाँ पापणी, तासूं प्रीति न जोड़ि।
पैंड़ी चढ़ि पाछाँ पड़ै, लागै मोटी खोड़ि ॥ १४ ॥
त्रिष्णाँ सींची नाँ बुझै, दिन दिन बढ़ती जाइ।
जवासा के रूष ज्यूं, घरण मेहाँ कुमिलाइ ॥ १५ ॥
कबीर जग की को कहै, भौ जलि बूड़ै दास।
पारब्रह्म पति छाड़ि करि, करैं मानि की आस ॥ १६ ॥
माया तजी तौ का भया, मानि तजी नहीं जाइ।
मानि बड़े मुनियर गिले, मानि सबनि कौं खाइ ॥ १७ ॥
राँमहि थोड़ा जाँणि करि, दुनियाँ आगैं दीन।
जीवाँ कौं राजा कहैं; माया के आधीन ॥ १८ ॥
रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप।
राँम नाँम बिन बूड़िहै, कनक काँमणी कूप ॥ १९ ॥
माया तरवर त्रिविध का, साखा दुख संताप।
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीको तनि ताप ॥ २० ॥
कबीर माया ढाकड़ीं, सब किसही कौं खाइ।
दाँत उपाणौं पापड़ीं, जे संतौं नेड़ी जाइ ॥ २१ ॥
नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि।
जलही माँहैं जलि मुई, पूरब जनम लिषेणि ॥ २२ ॥
कबीर गुण की बादली, ती तरवानीं छाँहि।
बाहरि रहे ते ऊबरे, भीगे मंदिर माँहि ॥ २३ ॥

(११) ख—यूँ कहै दास कबीर।
(१२) ख—सोई बूड़े जु धन संचते।

कबीर माया मोह की, भई अंधारी लोइ।
जे सूते ते मुसि लिये, रहे बसत कूँ रोइ ॥२४॥
संकल ही तैं सब लहै, माया इहि संसार।
ते क्यूँ छूटैं बापुड़े, बाँधे सिरजनहार ॥२५॥
बाड़ि चढंती बेलि ज्यूँ, उलझी, आसा फंध।
तूटै पणि छूटै नहीं, भई ज बाचा बंध ॥२६॥
सब आसण आसा तणाँ, निर्वर्तिकै को नाँहि।
निवरति कै निबहै नहीं, परिर्वति परपंच माँहि ॥२७॥
कबीर इस संसार का, झूठा माया मोह।
जिहिं घरि जिता बँधावणाँ, तिहिं घरि तिता अँदोह ॥२८॥
माया हमगौं यों कह्या, तू मति दे रे पूठि।
और हमारा हम बलू, गया कबीरा रूठि ॥२९॥
बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़या कलंक।
और पंखेरू पी गए, हंस न बोवै चंच ॥३०॥
कबीर माया जिनि मिलै, सौ बरियाँ दे बाँह।
नारद से मुनियर गिले, किसौ भरोसौ त्याँह ॥३१॥
माया की झल जग जल्या, कनक काँमणीं लागि।
कहुँ धौं किहि बिधि राखिये, रुई पलेटी आगि ॥३२॥३४६॥

(१७) चाँणक कौ अंग

जीव बिलंब्या जीव सौं, अलष न लखिया जाइ।
गोबिंद मिलै न झल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ ॥ १ ॥
इहीं उदर कै कारणै, जग जाँच्यौ निस जाम।
स्वामीं पणौ जु सिर चढयौ, सरया न एकौ काम ॥ २ ॥
स्वामीं हूँणाँ सोहरा, दोद्धा हूँणाँ दास।
गाडर आँणीं ऊन कूँ, बाँधी चरै कपास ॥ ३ ॥

(२४) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—
माया काल की खाँणि है, धरि त्रिगुणी बपरौति।
जहाँ जाइ तहाँ सुख नहीं, यहु माया की रीति ॥
माया मन की मोहनी, सुरनर रहे लुभाइ।
इहि माया जग खाइया, माया कौं कोई न खाइ ॥२६॥

(२९) ख—गया कबीरा छूटि।
ख—रूई लपेटी आगि।

स्वाँमीं हूवा सीतका, पैका कार पचास।
राम नाँम काँठै रह्या, करै सिषाँ की आस ॥ ४ ॥
कबीर तष्टा टोकणीं, लीए फिरै सुभाइ।
राम नाँम चीन्हैं नहीं, पीतलि ही कै चाइ ॥ ५ ॥
कलि का स्वाँमीं लोभिया, पीतलि धरी षटाइ।
राज दुवाराँ यौं फिरै, ज्यूँ हरिहाई गाइ ॥ ६ ॥
कलि का स्वामी लोभिया, मनसा धरी बधाइ।
दैंहि पईसा व्याज कौं, लेखाँ करताँ जाइ ॥ ७ ॥
कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ।
लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ ॥ ८ ॥
चारिउ बेद पढ़ाइ करि, हरि सूँ न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढ़ै खेत ॥ ९ ॥
बाँम्हण गूरू जगत का, साधू का गुरु नाहिं।
उरझि पुरझि करि मरि रह्या, चारिउँ बेदाँ माँहि ॥ १० ॥
साँषत सण का जेवड़ा, भींगाँ सूँ कठठाइ।
दोइ अषिर गुरु बाहिरा, बाँध्या जमपुरि जाइ ॥ ११ ॥
पाड़ोसी सू रूसणाँ, तिल तिल सुख की हाँणि।
पंडित भए सरावगी, पाँणी पीवैं छाँणि ॥ १२ ॥

(८) ख—कबीर कलिजुग आइया।

(९) ख—चारि बेद पंडित पढ़्या, हरि सों किया न हेत।

(१०) ख—बाँम्हण गुरु जगत का, भर्म कर्म का पाइ।
उलझि पुलझि करि मरि गया, चारचौं बेंदा माँहि॥
ख में इसके आगे ये दोहे हैं—
कलि का ब्राम्हण मसकरा, ताहि न दीजै दान।
स्यौं कुंटउ नरकहि चलै, साथ चलया जजमान ॥ ११ ॥
बाम्हण बूड़ा वापुड़ा, जेनेऊ कैं जोरि।
लख चौरासी मिंमाँ गेलई, पारब्रह्म सों तोड़ि ॥ १२ ॥

(११) ख में इसके आगे ये दोहे हैं—
कबीर साषत की सभा, तूँ जिनि बैसे जाइ।
एक दिवाड़ै क्यूं बड़ै, रीभ्र गदेहड़ा गाइ ॥ १४ ॥
साषत ते सूकर भला, सूचा राखे गाँव।
बूड़ा साषत बापुड़ा, बैसि समरणी नाँव ॥ १५ ॥
साषत बाम्हण जिनि मिलै, बैसनौ मिलौ चंडाल।
अंक माल दै भेंटिए, मानूँ मिले गोपाल ॥ १६ ॥

पंडित सेती कहि रह्या, भीतरि भेद्या नांहि।
औरूँ कौं परमोधतां, गया मुहरकां मांहि ॥ १३ ॥
चतुराई सूवै पढ़ी, सोई पंजर मांहि।
फिरि प्रमोधै आन कौं, आपण समझै नांहि ॥ १४ ॥
रासि पराई राषतां, खाया घर का खेत।
औरों कौं प्रमोधतां, मुख मैं पड़िया रेत ॥ १५ ॥
तारा मंडल बैसि करि, चंद बड़ाई खाइ।
उदै भया जब सूर का, स्यूँ तारां छिपि जाइ ॥ १६ ॥
देषण के सबको भले, जिसे सीत के कोट।
रवि कै उदै न दीसहीं, बंधै न जल की पोट ॥ १७ ॥
तीरथ करि करि जग मुवा, डूंघै पांणी न्हाइ।
रांमहि राम जपंतडां, काल घसीटयां जाइ ॥ १८ ॥
कासी कांठैं घर करैं, पीवैं निर्मल नीर।
मुकति नहीं हरि नांव बिन, यौं कहै दास कबीर ॥ १९ ॥
कबीर इस संसार कौं, समझाऊं कै बार।
पूंछ जु पकड़ै भेड़ की, उतरचा चाहै पार ॥ २० ॥
कबीर मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं ध्रंम।
कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रंम ॥ २१ ॥
मोर तोर की जेवड़ी, बलि बंध्या संसार।
कां सिकडूं बासुत कलित, दाझड़ बारंबार ॥ १२२ ॥ ६८ ॥

---

(१८) करणीं बिना कथणीं कौ अंग

कथणीं कथी तौ क्या भया, जे करणीं नां ठहराइ।
कालबूत के कोट ज्यूँ, देषतहीं ढहि जाइ ॥ १ ॥

(१३) ख—कबीर व्यास कहै, भीतरि भेदै नांहि।
(१५) ख में इसके आगे यह दोहा है—
कबीर कहै पोर कुँ, तूँ समझावै सब कोइ।
संसा पड़गा आपको, तौ और कहै का होइ ॥ २१ ॥
(१७) ख में इसके आगे यह दोहा है—
सुणत सुणावत दिन गए, उलझि न सुलझ्या मान।
कहै कबीर चेत्यौ नहीं, अजहुँ पहलौ दिन ॥ २४ ॥
(२०) ख में इसके आगे यह दोहा है—
पद गायां मन हरषियां, साषी कह्यां आनंद।
सो तत नांव न जाणियां, गल मैं पड़ि गया फंद ॥

जैसी मुख तैं नीकसें, तैसी चालै चाल।
पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल मैं करै निहाल॥ २॥
जैसी मुष तैं नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मानिष नहीं ते स्वान गति, बाँध्या जमपुर जाँहिं॥ ३॥
पद गोएँ मन हरषियाँ, साषी कह्याँ अनंद।
सो तन नाँव न जाँणियाँ, गल मैं पड़िया फंध॥ ४॥
करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तूंड।
जांणैं बूझै कुछ नहीं, यौं ही आंधां रूंड॥ ५॥३७३॥

---

(१६) कथणी बिना करणी कौ अंग

मैं जान्यूँ पढ़िबौ भलौ, पढ़िवा थैं भलौ जोग।
राँम नाँम सूँ प्रीति करि, भल भल नींदौ लोग॥ १॥
कबिरा पढ़िबा दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ।
बांवन आषिर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ॥ २॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ़्या संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूं करि करै पुकार॥ ३॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै अषिर पीव का, पढ़ै सु पंडित होइ॥ ४॥३३७॥

---

(२०) कामी नर कौ अंग

कांमणि काली नागणीं, तीन्यूं लोक मँझारि।
राम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि॥ १॥
काँमणि मीनीं षाँणि की, जे छेड़ौं तौ खाइ।
जे हरि चरणाँ राचियां, तिनके निकटि न जाइ॥ २॥
परनारी राता फिरै, चोरी बिढ़ता खांहिं।
दिवस चारि सरसा रहै; अंति समूला जांहि॥ ३॥
पर नारी पर सुंदरी, बिरला बंचै कोइ।
खाताँ मीठी खाँड सी, अंति कालि विष होइ॥ ४॥

(२०-४) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं--

जहाँ जलाई सुंदरी, तहाँ तूं जिनि जाइ कबीर।
भसमी ह्वै करि जासिसी, सो मैं सवाँ सरीर॥ ५॥
नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट।
कोई एक हरिजन ऊबरै, पारब्रह्म की ओट॥ ६॥

पर - नारी कै राचणैं, औगुण है गुण नाँहि ।
षार समंद मै मंझला, केता बहि बहि जाँहि ॥ ५ ॥
पर नारी कौ राचणौं, जिसी ल्हसण की षाँनि ।
पूणैं बैंसि रषाइए, परगट होइ दिवानि ॥ ६ ॥
नर नारी सब नरक हैं, जब लग देह सकाम ।
कहै कबीर ते राँम के, जे सुमिरैं निहकाम ॥ ७ ॥
नारी सेती नेह, बुधि बबेक सबही हरै ।
काँइ गमावै देह, कारिज कोई नाँ सरैं ॥ ८ ॥
नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग ।
बेगि छाँड़ि पछताइगा, ह्वै है मूरति भंग ॥ ९ ॥
नारि नसावैं तीनि सुख, जा नर पासैं होइ ।
भगति मुकति निज ग्यान मैं, पैंसि न सकई कोइ ॥ १० ॥
एक कनक अरु काँमनी, बिष फल कीएउ पाइ ।
देखै हीं थै बिष चढ़ै, खाँयै सूँ मरि जाइ ॥ ११ ॥
एक कनक अरु काँमनी, दोऊ अगनि की झाल ।
देखें ही तन प्रजलै, परस्याँ ह्वै पैमाल ॥ १२ ॥
कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत ।
केते अजहूँ जायसी, नरकि हसंत हसंत ॥ १३ ॥
जोरू जूठणि जगत जगत की, भले बुरे का बीच ।
उत्यम ते अलगे रहैं, निकटि रहैं तें नीच ॥ १४ ॥
नारी कुंड नरक का, बिरला थंभै बाग ।
कोई साधू जन ऊबरै, सब जग मूँवा लाग ॥ १५ ॥
सुंदरि थैं सूली भली, बिरला बचै कोय ।
लोह निहाला अगनि मैं, जलि बलि कोइला होय ॥ १६ ॥
अंधा नर चेतै नहीं, कटैं न संसै सूल ।
औंर गुनह हरि बकससी, काँमी डाल न मूल ॥ १७ ॥
भगति बिगाड़ी काँमियाँ, इंद्री केरै स्वादि ।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ॥ १८ ॥
कामीं अमीं न भावई, विषई कौं ले सोधि ।
कुबधि न जाई जीव की, भावै स्यंभ रहो प्रमोधि ॥ १९ ॥

(६) क—प्रगट होइ निदानि ।
(१३) ख—गरकि हसंत हसंत ।

विषै विलंबी आत्माँ, ताका मजकण खाया सोधि ।
ग्याँन अंकूर न ऊगई, भावै निज प्रमोध ॥ २० ॥
विषै कर्म की कंचुली, पहरि हुआ नर नाग ।
सिर फोड़ै सूझै नहीं, को आगिला अभाग ॥ २१ ॥
कामीं कदे न हरि भजै, जपै न कैसो जाप ।
राँम कह्याँ थैं जलि मरै, को पूरिबला पाप ॥ २२ ॥
काँमी लज्या ना करैं, मन माँहैं अहिलाद ।
नींद न माँगैं साँथरा, भूष न माँगैं स्वाद ॥ २३ ॥
नारि पराई आपणीं, भुगत्या नरकहि जाइ ।
आगि आगि सबरो कहै, तामैं हाथ न बाहि ॥ २४ ॥
कबीर कहता जात हौं, चेतै नहीं गँवार ।
बैरागी गिरही कहा, काँमी वार न पार ॥ २५ ॥
ग्याँनी तो नींडर भया, माँने नाँहीं संक ।
इंद्री केरे बसि पड़्या, भूंचैं बिषै निसंक ॥ २६ ॥
ग्याँनी मूल गंवाइया, आपण भये करता ।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता ॥ २७ ॥ ४०४ ॥

---

(२१) सहज कौ अंग

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ ।
जिन्ह सहजैं विषिया तजीं, सहज कहीजै सोई ॥ १ ॥
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हे कोइ ।
पांचू राखै परसती, सहज कहीजै सोइ ॥ २ ॥

(२२) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
राम कहंता जे खिजैं, कोढ़ी ह्वै गलि जांहि ।
सूकर होइ करि औतरैं, नाक बूड़ंते खाँहि ॥ २५ ॥
(२३) ख में इसके आगे यह दोहा है—
कामी थैं कुतो भलो, खोलें एक जू काछ ।
राम नाम जाणै नहीं, बांबी जेही बाच ॥ २७ ॥
(२७) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
काँम काँम सबको कहैं, काँम न चीन्है कोइ ।
जेती मन में कामना, काम कहीजै सोइ ॥ ३२ ॥

सहजै सहजै सब गए, सुत बित कांमणि कांम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्या, दास, कबीरा रांम ॥ ३ ॥
सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्हैं कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कहीजै सोइ ॥४॥४०८॥

(२२) साँच कौ अंग

कबीर पूंजी साह की, तूँ जिनि खोवै ष्वार।
खरी बिगूचनि होइगी, लेखा देती बार ॥ १ ॥
लेखा देणाँ सोहरा, जे दिल साँचा होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥ २ ॥
कबीर चित्त चमंकिया, किया पयाना दूरि।
काइथि कागद काढ़िया, तब दरिगह लेखा पूरि ॥ ३ ॥
काइथि कागद काढ़ियां, तब लेखैं वार न पार।
जब लग साँस सरीर मैं, तब लग राम संभार ॥ ४ ॥
यहु सब झूठी बंदिगी, बरियाँ पंच निवाज।
साचै मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥ ५ ॥
कबीर काजी स्वादि बसि, ब्रह्म हतै तब दोइ।
चढ़ि मसीति एकै कहै, दरि क्यूँ साचा होइ ॥ ६ ॥
काजी मुलाँ भ्रमियाँ, चल्या दुनीं कै साथि।
दिल थैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥ ७ ॥
जोरी करिर जिहै करै, कहते हैं ज हलाल।
जब दफतर देखंगा दई, तब ह्वैगा कौंण हवाल ॥ ८ ॥
जोरी कीयाँ जुलम है, माँगे न्याव खुदाइ।
खालिक दरि खूनीं खडा, मार मुहे मुहि खाइ ॥ ९ ॥
साँई सेती चोरियाँ, चोराँ सेती गुझ।
जाँणैगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥ १० ॥
सेष सबूरी बाहिरा, क्या हज काबै जाइ।
जिनकी दिल स्याबति नहीं, तिनकौं कहाँ खुदाइ ॥ ११ ॥
खूब खाँड है खीचड़ी, माँहि पड़ै टुक लूंण।
पेड़ा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण ॥ १२ ॥
पापी पूजा बैसि करि, भषै माँस मद दोइ।
तिनकी दष्या मुकति नहीं, कोटि नरक फल होइ ॥ १३ ॥

सकल बरण इकत्र ह्वै, सकति पूजि मिलि खाँहिं।
हरि दासनि की भ्रांति करि, केवल जमपुरि जाँहि॥ १४॥
कबीर लज्या लोक की, सुमिरै नाँही साच।
जानि बूझि कंचन तजै, काठा पकड़े काच॥ १५॥
कबीर जिनि जिनि जाँणियाँ, करत केवल सार।
सो प्राणी काहै चलै, झूठे जग की लार॥ १६॥
झूठे कौं झूठा मिलै, दूणाँ बधै सनेह।
झूठे कूँ साचा मिलै, तब ही तूटै नेह॥ १७॥ ४२५।

----

(२३) भ्रम विधौंसण कौ अंग

पांहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूड़े काली धार॥ १॥
काजल केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट।
पांहनि बोई पृथमी, पंडित पाड़ी बाट॥ २॥
पाँहिन फूँका पूजिए, जे जनम न देई जाब।
आँधा नर आसामुषी, यौंही खोवै आव॥ ३॥
हम भी पाँहन पूजते, होते रन के रोझ।
सतगुर की कृपा भई, डारया सिर थैं बोझ॥ ४॥
जेतो देषौं आतमा, तेता सालिगराँम।
साधू प्रतषि देव हैं, नहीं पाथर सू काँम॥ ५॥
सेवैं सालिगराँम कूँ, मन की भ्रांति न जाइ।
सीतलता सुपिनैं नहीं, दिन दिन अधकी लाइ॥ ६॥
सेवैं सालिगराँम कूँ, माया सेती हेत।
बोढ़ैं काला कापड़ा, नाँव धरावैं सेत॥ ७॥

(३) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—
पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव।
पूजणहारा अंधला, लागा खोटी सेव॥ ८॥
कबीर गूड की गमि नहीं, पाँषण दिया बनाइ।
सिष सोधी बिन सेविया, पारि न पहुँच्या जाइ॥ ५॥
(४) ख—होते जंगल के रोझ।

जप तप दीसैं थोथरा, तीरथ ब्रत बेसास।
सूवैं सैंबल सेविया, यौं जग चल्या निरास।
तीरथ त सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाइ।
कबीर मूल निकंदिया, कोण हलाहल खाइ ॥ ९ ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाँणि।
दसवाँ द्वारा देहुरा, तामैं जोति पिछाँणि ॥१०॥
कबीर दुनियाँ देहुरैं, सोस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसैं, तूं ताही सौं ल्यौ लाइ ॥११॥४३६॥

(२४) भेष कौ अंग

कर सेती माला जपै, हिरदै बहै डंडूल।
पग तौ पाला मैं गिल्या, भाजण लागी सूल ॥ १ ॥
कर पकरैं अँगुरी गिनैं, मन धावै चहुँ वोर।
जाहि फिराँयाँ हरि मिलैं, सो भया काठ की ठौर ॥ २ ॥
माला पहरैं मनमुषी, तार्थैं कछू न होइ।
मन माला कौं फेरताँ, जुग उजियारा सोइ ॥ ३ ॥
माला पहरे मनमुषी, बहुतैं फिरैं अचेत।
गाँगी रोले बहि गया, हरि सूं नाँहीं हेत ॥ ४ ॥
कबीर माला काठ की, कहि समझावै तोहि।
मन न फिरावै आपणों, कहा फिरावै मोहि ॥ ५ ॥
कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहर्यां हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ॥ ६ ॥
माला पहर्याँ कुछ नहीं, रुल्य मूवा इहि भारि।
बाहरि ढोल्या हींगलू भीतरि भरी भँगारि ॥ ७ ॥
माला पहर्याँ कुछ नहीं, काती मन कै साथि।
जब लग हरि प्रगटै नहीं, तब लग पड़ता हाथि ॥ ८ ॥

(५) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है--
कबीर माला काठ की, मेल्ही मुगधि भुलाइ।
सुमिरण की सोधी नहीं, जाँणै डीगरि घाली जाइ ॥६॥
(६) ख में इसके आगे यह दोहा है--
माला फेरत जुग भया, पाय न मन का फेर।
कर का मन का छाँड़ि दे, मन का मन का फेर ॥ ८ ॥

माला पहरयाँ कुछ नहीं, गाँठि हिरदा की खोइ।
हरि चरनूं चित्त राखिये, तौ अमरापुर होइ ॥ ६ ॥
माला पहरया कुछ नहीं, भगति न आई हाथि।
माथौ मुंछ मुंडाइ करि, चल्या जगत कै साथि ॥१०॥
साँइं सेती साँच चलि, औरां सूं सुध भाइ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ ॥११॥
केसौं कहा बिगाड़िया, जे मूंड़े सौ बार।
मन कौं न काहे मूँडिए, जामै बिषै बिकार ॥१२॥
मन मेवासी मूँड़ि ले, केसौं मूंड़े काँइ।
जे कुछ किया सु मन किया, केसौं कीया नाँहि ॥१३॥
मूंड़ मुंड़ावत दिन गए, अजहूं न मिलिया राम।
राँम नाम कहु क्या करैं, जे मन के औरे काँम ॥१४॥
स्वाँग पहरि सोरहा भया, खाया पीया खूँदि।
जिहि सेरी साधू नीकले, सो तौ मेल्ही मूँदि ॥१५॥
बेसनों भया तौ का भया, बूझा नहीं बबेक।
छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥१६॥
तन कौं जोगी सब करैं, मन कौं बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ ॥१७॥
कबीर यहु तो एक है, पड़दा दीया भेष।
भरम करम सब दूरि करि, सबहीं माँहि अलेष ॥१८॥
भरम न भागा जीव का, अनंतहि धरिया भेष।
सतगुर परचे बाहिरा, अंतरि रह्या अलेष ॥१९॥
जगत जहंदम राचिया, झूठे कुल की लाज।
तन बिनसे कुल बिनसि है, गह्या न राँम जिहाज ॥२०॥
पष ले बूडी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसारयौ भेष मैं, बूड़े काली धार ॥२१॥
चतुराई हरि नाँ मिले, ए बाताँ की बात।
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ॥२२॥

(९) ख में इसके आगे यह दोहा है--
माला पहरयाँ कुछ नहीं बाम्हण भगत न जाण।
ब्याँह सराँधाँ कारटाँ उंभू बैसे ताणि ॥१२॥
(११) ख--साधौं सौं सुध भाइ।
(१५) ख--जिहि सेरी साधू नीसरै, सो सेरी मेल्ही मूँदि ॥

नवसत साजे काँमनीं, तन मन रही सँजोइ ।
पीव कै मन भावे नहीं, पटम कीयें क्या होइ ॥ २३ ॥
जब लग पीव परचा नहीं, कन्याँ कँवारी जाँणि ।
हथलेवा होसै लिया, मुसकल पड़ी पिछाँणि ॥ २४ ॥
कबीर हरि की भगति का, मन मैं परा उलहास ।
मैं वासा भाजै नहीं, हूँण मतै निज दास ॥ २५ ॥
मैंवासा मोई किया, दुरिजन काढे दूरि ।
राज पियारे राँम का, नगर बस्या भरिपूरि ॥ २६ ॥४६२॥

---

(२५) कुसंगति कौ अंग

निरमल बूँद अकास की, पड़ि गई भोमि बिकार ।
मूल बिनंठा माँनवी, बिन संगति भठछार ॥ १ ॥
मूरिष संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूँद तिहुँ भाइ ॥ २ ॥
हरिजन सेती रूसणाँ, संसारी सूँ हेत ।
ते नर कदे न नीपजैं, ज्यूँ कालर का खेत ॥ ३ ॥
मारी मरूँ कुसंग की, केला काँठै बेरि ।
वो हालै वो चीरिये, साषित संग न बेरि ॥ ४ ॥
मेर नीसाँणी मीच की कुसंगति ही काल ।
कबीर कहै रे प्राँणिया, बाँणी ब्रह्म सँभाल ॥ ५ ॥
माषी गुड़ मैं गड़ि रही, पंष रही लपटाइ ।
ताली पीटै सिरि धुनै, मीठे बोई माइ ॥ ६ ॥
ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जे करणीं ऊँच न होइ ।
सोवन कलस सुरे भर्‌या, साधूँ निंद्या सोइ ॥ ७ ॥ २६९ ॥

---

(२६) संगति कौ अंग

देखा देखी पाकड़े, जाइ अपरचे छूटि ।
बिरला कोई ठाहरे, सतगुर साँमी मूठि ॥ १ ॥
देखा देखी भगति है, कदे न चढ़ई रंग ।
बिपति पढ़्या यूँ छाड़सी, ज्यूं कंचुली भवंग ॥ २ ॥

(२५-५) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
कबीर केहनें क्या बणैं, अणमिलना सौ संग ।
दीपक कै भावै नहीं, जलि जलि परैं पतंग ॥ ६ ॥

करिए तौ करि जाँणिये, सारीषा सूं संग ।
लीर लीर लोई थई, तऊ न छाडै रंग ॥ ३ ॥
यहु मन दीजे तास कौं, सुठि सेवग भल सोइ ।
सिर ऊपरि आरास है, तऊ न दूजा होइ ॥ ४ ॥
पाँहण टाँकि न तोलिए, हाडि न कीजै वेह ।
माया राता मानवी, तिन सूँ किसा सनेह ॥ ५ ॥
कबीर तासूँ प्रीति करि, जो निरबाहै ओड़ि ।
बनिता बिबिध न राचिये, दोषत लागे षोड़ि ॥ ६ ॥
कबीर तन पंषी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ ।
जो जैसी संगति करे, सो तैसे फल खाइ ॥ ७ ॥
काजल केरी कोठढ़ी, तैसा यहु संसार ।
बलिहारी ता दास की, पैसि रे निकसणहार ॥ ८ ॥ ४७७ ॥

---

(२७) असाध कौ अंग

कबीर भेष अतीत का, करतूति करै अपराध ।
बाहरि दीसै साध गति, माँहैं महा असाध ॥ १ ॥
उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यूँ माँडै ध्यान ।
धोरे बैठि चपेटसी, यूँ ले बूड़ैं ग्यान ॥ २ ॥
जेता मीठा बोलणाँ, तेता साध न जाँणि ।
पहली थाह दिखाई करि, ऊँडै देसी आँणि ॥ ४८० ॥

---

(२८) साध कौ अंग

कबीर संगति साध की, कदे न निरफल होइ ।
चंदन होसी बाँवना, नींब न कहसी कोइ ॥ १ ॥
कबीर संगति साध की, बेगि करीजै जाइ ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥ २ ॥
मथुरा जावै द्वारिका, भावैं जावैं जगनाथ ।
साध संगति हरि भगति बिन, कछु न आवै हाथ ॥ ३ ॥

(२६-४) ख—तऊ न न्यारा होई ।
(२७-३) ख—तेता भगति न जाँणि ।

मेरे संगी दोइ जणाँ एक वैष्णों एक राँम।
वो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नाँम ॥ ४ ॥

कबीरा बन बन में फिरा, कारणि अपणें राँय।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काँम ॥ ५ ॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौ जाँहिं ॥ ६ ॥

कबीर चंदन का बिड़ा, बैठ्या आक पलास।
आप सरीखे करि लिए, जे होते उन पास ॥ ७ ॥

कबीर खाईं कोट की, पांणी पीवे न कोइ।
आइ मिलै जब गंग मैं, तब सब गंगोदिक होइ ॥ ८ ॥

जाँनि बूझि साचहि तजै, करै झूठ सूँ नेह।
ताकी संगति राम जी, सुपिनै हो जिनि देहु ॥ ९ ॥

कबीर तास मिलाइ, जास हियाली तूँ बसै।
वहि तर वेगि उठाइ, नित को गंजन को सहै ॥ १० ॥

केती लहरि समंद की, कत उपजै कत जाइ।
बलिहारी ता दास की, उलटी माँहि समाइ ॥ ११ ॥

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै राँम की ओट ॥ १२ ॥

भगति हजारी कपड़ा, तामें मल न समाइ।
साषित काली काँवली, भावै तहाँ बिछाइ ॥ १३ ॥ ४९३ ॥

----:o:----

(२९) साध साषीभूत कौ अंग

निरबैरी निहकाँमता, साँई सेती नेह।
बिषिया सूँ न्यारा रहै, संतहि का अंग एह ॥ १ ॥

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलै असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥ २ ॥

कबीर हरि का भाँवता, दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणा मन उनमनाँ, जग रूठड़ा फिरंत ॥ ३ ॥

(२८-४) ख--सुमिरावै राम।
(११) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं--

पंच बल धिया फिरि कड़ी, ऊभड़ ऊजड़ि जाइ।
बलिहारी ता दास की, बवकि अणाँवै ठाइ ॥ १२ ॥

काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार।
बलिहारी ता दास की, पैसि जु निकसण हार ॥ १३ ॥

कबीर हरि का भावता, झीणाँ पंजर तास।
रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मास ॥ ४ ॥
अणरता सुख सोवणाँ, रातै नींद न आइ।
ज्यूँ जल टूटै मंछली यूँ बेलंत बिहाइ ॥ ५ ॥
जिन्य कुछ जाँण्या नहीं तिन्ह, सुख नींदड़ी बिहाइ।
मैंर अबूझी बूझिया, पूरी पड़ी बलाइ ॥ ६ ॥
जाँण भगत का नित मरण अणजाँणे का राज।
सर अपसर समझै नहीं, पेट भरण सूँ काज ॥ ७ ॥
जिहि घटिजाँण बिनाँण है, तिहि घटि आवटणाँ घणाँ।
बिन षंडै संग्राम है नित उठि मन सौं झूमणाँ ॥ ८ ॥
राम बियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्है कोइ।
तंबोली के पान ज्यूँ, दिन दिन पीला होइ ॥ ९ ॥
पीलक दौड़ी साँइयाँ, लोग कहै पिंड रोग।
छाँनै लंघण नित करै, राँम पियारे जोग ॥ १० ॥
काम मिलावे राम कूँ, जे कोई जाँणै राषि।
कबीर बिचारा क्या करे, जाकी सुखदेव बोले साषि ॥ ११ ॥
काँमणि अंग बिरकत भया, रत भया हरि नाँहि।
साषी गोरखनाथ ज्यूँ, अमर भए कलि माँहि ॥ १२ ॥
जदि विषै पियारी प्रीति सूँ, तब अंतर हरि नाँहि।
जब अंतर हरि जी बसै, तब विषिया सूँ चित नाँहि ॥ १३ ॥
जिहि घट मैं संसौ बसै, तिहिं घटि राम न जोइ।
राम सनेही दास विचि, तिणाँ न संचर होइ ॥ १४ ॥
स्वारथ को सबको सगा, सब सगलाही जाँणि।
बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति पिछाँणि ॥ १५ ॥
जिहिं हिरदै हरि आइया, सो क्यूँ छाँनाँ होइ।
जतन जतन करि दाबिए, तऊ उजाजा सोइ ॥ १६ ॥
फाटै दीदे मैं फिरौं, नजरि न आवै कोइ।
जिहि घटि मेरा साँइयाँ, सो क्यूँ छाना होइ ॥ १७ ॥
सब घटि मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हौं का हे सखी, जिहि घटि परगड होइ ॥ १८ ॥

(२९–४) ख––अंगनि बाढ़ै घास।
(५) ख––तलफत रैण बिहाइ।
(१२) ख––सिध भए कलि माँहि।

पावक रूपी राँम है, घटि घटि रह्या समाइ ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथै धुँवाँ ह्वै ह्वै जाइ ॥ १९ ॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोइ ।
कै जागै बिसई विष भरया, कै दास बंदगी होइ ॥ २० ॥

कबीर चाल्या जाइ था, आगैं मिल्या खुदाइ ।
मीराँ मुझ सौं यौं कह्या, किनि फुरमाई गाइ ॥२१॥५१४॥

------

(३०) साध महिमाँ कौ अंग

चंदन की कुटकी भली, नाँ बँबूर की अबराँउँ ।
वैश्नौं की छपरी भली, नाँ साषत का बड गाउँ ॥ १ ॥
पुरपाटण सूबस बसै, आनँद ठाँये ठाँइ ।
राँम सनेही बाहिरा, ऊँजड़ मेरे भाँइ ॥ २ ॥
जिहिं घरि साध न पूजिये, हरि की सेवा नाँहि ।
ते घर मड़हट सारषे, भूत बसै तिन माँहि ॥ ३ ॥
है गै गैंवर सघन घन, छत्र धजा फहराइ ।
ता सुख थैं भिष्या भली, हरि सुमिरत दिन जाइ ॥ ४ ॥
हैं गै गैंवर सघन घन, छत्रपती की नारि ।
तास पटंतर नाँ तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥ ५ ॥
क्यूँ नृप नारी नींदयें, क्यूँ पनिहारी कौं माँन ।
वामाँग सँवारै पीव कौं, वा नित उठि सुमिरै राँम ॥ ६ ॥
कबीर धनि ते सुंदरी, जिनि जाया बैसनौं पूत ।
राँम सुमरि निरभैं हुवा, सब जग गया अऊत ॥ ७ ॥
कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास ।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥ ८ ॥
साषत बाँभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चंडाल ।
अंक माल दे भेटिये, माँनों मिले गोपाल ॥ ९ ॥
राँम जपत दालिद भला, टूटी घर की छाँनि ।
ऊँचे मंदिर जालि दे, जहाँ भगति न सारँगपाँनि ॥१०॥
कबीर भया है केतकी, भवर भये सब दास ।
जहाँ जहाँ भगति कबीर की, तहाँ तहाँ राँम निवास ॥११॥५२५॥

(३०-१) ख—चंदन की चूरी भली ।

(६) 'वा मांग' या 'वामांग' दोनों पाठ हो सकता है ।

(३५) मधि कौ अंग

कबीर मधि अंग जेको रहै, तौ तिरत न लागै वार।
दुइ दुइ अंग सूँ लाग करि, डूबत है संसार॥ १॥

कबीर दुबिधा दूरि करि, एक अंग ह्वै लागि।
यहु सीतल वहु तपति है, दोऊ कहिये आगि॥ २॥

अनल अकाँसाँ घर किया, मधि निरंतर वास।
वसुधा व्योम बिरकत रहै, बिनठा हर बिसवास॥ ३॥

वासुरि गमि न रैंणि गमि, नाँ सुपनैं तरगंम।
कबीर तहाँ बिलंबिया, जहाँ छाहड़ी न घंम॥ ४॥

जिहि पैंडै पंडित गए, दुनिया परी बहीर।
औघट घाटी गुर कही, तिहिं चढ़ि रह्या कबीर॥ ५॥

श्रग नृक्थैं हूँ रह्या, सतगुर के प्रसादि।
चरन कवँल की मौज मैं, रहिस्यूँ अंतिरु आदि॥ ६॥

हिंदू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुइ मैं कदे न जाइ॥ ७॥

दुखिया मूवा दुख कौं, सुखिया सुख कौं भूरि।
सदा आनंदी राम के, जिनि सुख दुख मेल्हे दूरि॥ ८॥

कबीर हरदी पीयरी, चूना ऊजल भाइ।
राम सनेही यूँ मिले, दुन्यूँ बरन गँवाइ॥ ९॥

काबा फिर कासी भया, राँम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, वैठि कबीरा जीम॥१०॥

धरती अरु असमान बिचि, दोइ तूंबड़ा अबध।
षट दरसन संसे पड़्या, अरू चौरासी सिध॥ ११॥५२६॥

(३२) सारग्राही कौ अंग

षीर रूप हरि नाँव है नीर आन व्यौहार॥।
हंस रूप कोइ साध है, तत का जांनणहार॥ १॥

(३१-५) ख--दुनियाँ गई बहीर। औघट घाटी नियरा।
(३२) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है--

सार संग्रह सूप ज्यूँ, त्यागै फटकि असार।
कबीर हरि हरि नाँव ले, पसरै नहीं बिकार॥ २॥

कबीर साषत को नहीं, सबै बैशनों जाँणि।
जा मुखि राम न ऊचरै, ताही तन की हाँणि ॥ २ ॥
कबीर औंगुंण ना गहैं गुँण ही कौं ले बीनि।
घट घट महु के मधुप ज्यूँ, पर आतम ले चीन्हि ॥ ३ ॥
बसुधा बन बहु भाँति है, फूल्यौ फल्यौ अगाध।
मिष्ट सुबास कबीर गहि, बिषम कहै किहि साध ॥४॥५४०॥

------

(३३) बिचार कौ अंग

राम नाम सब को कहै, कहिबे बहुत बिचार।
सोई राम सती कहै, सोई कौतिग हार ॥ १ ॥
आगि कह्याँ दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पाइ।
जब लग लग भेद न जाँणिये, राम कह्या तौ काइ ॥ २ ॥
कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नाँहि।
आपा पर जब चीन्हिया, तब उलटि समाना माँहि ॥ ३ ॥
कबीर पाणी केरा पूतला, राख्या पवन सँवारि।
नाँनाँ बाँणी बोलिया, जोति धरी करतारि ॥ ४ ॥
नौ मण सूत अलूझिया, कबीर घर घर बारि।
तिनि सुलझाया बापुड़े, जिनि जाणीं भगति मुरारि ॥ ५ ॥
आधी साषी सिरि कटैं, जोर बिचारी जाइ।
मनि परतीति न ऊपजे, तौ राति दिवस मिलि गाइ ॥ ६ ॥
सोई अषिर सोई बैयन, जन जू जू बाचवंत।
कोई एक मेलै लवणि अमीं रसाइण हुँत ॥ ७ ॥
हरि मोत्याँ की माल है, पोई काचै तागि।
जतन करि झंटा घँणा, टूटेगी कहूँ लागि ॥ ८ ॥

(३२–४) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

कबीर सब घटि आतमा, सिरजी सिरजनहार।
राम कहै सो राम में, रमिता ब्रह्म बिचारि ॥ ५ ॥
तत तिलक तिहु लोक में, राम नाम निजि सार।
जन कबीर मसतिकि देया, सोभा अधिक अपार ॥ ६ ॥

(३३–६)–ख–भरि गाइ।

(७) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर भूल दंग में लोग कहैं यह भूल।
कै रमइयौं बाट बताइसी, कै भूलत भूलैं भूल ॥ ८ ॥

मन नहीं छाड़ैं बिषै, बिषै न छाड़ै मन कौं।
इनकौं इहै सुभाव, पूरि लागी जुग जन कौं॥
खंडित मूल बिनास कहौ किम बिगतह कीजै।
ज्यूँ जल में प्रतिब्यंब, त्यूँ सकल रामहिं जांणीजैं॥
सो मन सो तन सो बिषै, सो त्रिभवन पति कहूँ कस।
कहै कबीर व्यंदहु नरा, ज्यूं जल पूरया सकल रस॥६॥५४६॥

(३४) उपदेश कौ अंग

हरि जी यहै बिचारिया, साषी कहौ कबीर।
भौसागर मैं जीव है, जे कोइ पकड़ैं तीर॥ १॥
कली काल ततकाल हैं, बुरा करौ जिनि कोइ।
अनबावैं लोहा दाहिणैं बोबै सु लुणता होइ॥ २॥
कबीर संसा जीव मैं, कोई न कहै समझाइ।
बिधि बिधि बाणीं बोलता सो कत गया बिलाइ॥ ३॥
कबीर संसा दूरि करि जाँमण मरण भरंम।
पंचतत तत्तहि मिले सुरति समाना मंन॥ ४॥
ग्रिही तौ च्यंता घणीं, बैरागी तौ भीष।
दुहुँ कात्यौं बिचि जीव है, दौ हमैं संतौं सीष॥ ५॥
बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार।
दुहैं चूकाँ रीता पड़ै, ताकूँ वार न पार॥ ६॥
जैसी उपजै पेड़ मूँ, तैसी निबहै ओरि।
पैका पैका जोड़ताँ, जुड़िसा लाष करोड़ि॥ ७॥
कबीर हरि के नाँव सूँ, प्रीति रहै इकतार।
तौ मुख तैं मोती झड़ै, हीरे अंत न पार॥ ८॥
ऐसी बाँणीं बोलिये, मन का आपा खोइ।
अपना तन सीतल करै, औरन कौं सुख होइ॥ ९॥

(३४-२) ख-बुरा न करियो कोइ।

ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

जीवन को समझै नहीं, मुवा न कहै संदेस।
जाको तन मन सौं परचा नहीं, ताकौ कौंण धरम उपदेस॥ ३॥

(३) ख-नाना बाँणी बोलता।

(८) ख-सुरति रहै इकतार। हीरा अनँत अपार।

कोइ एक राखै सावधान, चेतनि पहरै जागि।
बस्तन बासन सूँ खिसै, चोर न सकई लागि ॥१०॥५५९॥

(३५) बेसास कौ अंग

जिनि नर हरि जठरांह, उदिकै थैं षंड प्रगट कियौ।
सिरजे श्रवण कर चरन, जीव जीभ मुख तास दीयौ॥
उरध पाव अरध सीस, बीस पषां इम रषियौ।
अंन पान जहां जरै, तहां तैं अनल न चषियौ॥
इहि भाँति भयानक उद्र में, न कबहू छंछरै।
कृसन कृपाल कबीर कहि, इम प्रतिपालन क्यों करै॥ १ ॥

भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग॥ २ ॥

रचनहार कूँ चीन्हि लै, खैवे कूँ कहा रोइ।
दिल मंदिर मैं पैसि करि, तांणि पछेवड़ा सोइ॥ ३ ॥

रांम नांम करि बोहड़ा, बांही बीज अघाइ।
अंति कालि सूका पड़ै, तौ निरफल कदे न जाइ॥ ४ ॥

च्यंतामणि मन में बसै, सोई चित मैं आंणि।
बिन च्यंता च्यंता करै, इहै प्रभू की बांणि॥ ५ ॥

कबीर का तूँ चितवै, का तेरा च्यंत्या होइ।
अणच्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ॥ ६ ॥

करम करीमां लिखि रह्या, अब कछू लिख्या न जाइ।
मासा घट न तिल बधै, जौ कोटिक करै उपाइ॥ ७ ॥

जाकौ चेता निरमया, ताकौं तेता होइ।
रती घटै न तिल बधै, जौ सिर कूटै कोइ॥ ८ ॥

च्यंता न करि अच्यंत रहु, सांई है संम्रथ।
पसु पंषरू जीव जंत, तिनको गांडि किसा ग्रंथ॥ ९ ॥

संत न बांधै गांठड़ी, पेट समाता लेइ।
सांई सूँ सनमुख रहै, जहाँ मांगै तहाँ देइ॥१०॥

(३५–८) इसके आगे ख प्रति में यह दोहा है—

करीम कबीर जु विह लिख्या, नरसिर भाग अभाग।
जेहूँ च्यंता चितवैं, तऊ स आगै आग॥१०॥

राँम राँम सूँ दिल मिली, जन हम पड़ी बिराइ।
मोहि भरोसा इष्ट का, बदा नरकि न जाइ॥ ११॥
कबीर तूँ काहे डरै, सिर परि हरि का हाथ।
हस्ती चढ़ि नहीं डोलिये, कूकर भुसैं जु लाष॥ १२॥
मीठा खाँण मधूकरी, भाँति भाँति कौ नाज।
दावा किसही का नहीं, बिन बिलाइति बड़ राज॥ १३॥
माँनि महातम प्रेम रस, गरवा तण गुण नेह।
ए सबहीं अह लागया, जबहीं कह्या कुछ देह॥ १४॥
माँगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ।
कहै कबीर रघुनाथ सूँ, मतिर मँगावै मोहि॥ १५॥
पांडल पंजर मन भवर, अरथ अनूपम बास।
राँम नाँम सींच्या अँमी, फल लागा वेसास॥ १६॥
मेर मिटी मुकता भया, पाया ब्रह्म बिसास।
अब मेरे दूजा को नहीं, एक तुम्हारी आस॥ १७॥
जाकी दिल में हरि बसै, सो नर कलपै काँइ।
एक लहरि समंद की, दुख दलिद्र सब जाँइ॥ १८॥
पद गांये लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास।
सबै पिछीड़े थोथरे, एक बिनाँ बेसास॥ १९॥
गावण हीं मैं रोज है, रोवण हीं में राग।
इक वैरागी ग्रिह मैं, इक गृही मैं वैराग॥ २०॥
गाया तिनि पाया नहीं, अणगाँयाँ थैं दूरि।
जिनि गाया बिसवास सूँ, तिन राम रह्या भरिपूरि॥२१॥५८०॥

---

(१२) ख––शिर परि सिरजणहार।
हस्ती चढ़ि क्या डोलिए। भुसैं हजार।
ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है––
हसती चढ़िया ज्ञान कै, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, पड़्या भुसौ झषि माँरि।।१५।।

(१५) ख––जगनाथ सौं।

(१६) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं––
कबीर मरौं पै मांगौं नहीं, अपणें तन कै काज।
परमारथ कै कारणै, मोहि माँगत न आवै लाज॥ २०॥
भगत भरोसै एक कै, निधरक नीची दीठि।
तिनकूं करम न लागसी, राम ठकोरी पीठि॥ २१॥

(३६) पीव पिछाँणन कौ अंग

संपटि माँहि समाइया, सो साहिब नहीं होई ।
सफल मांड मैं रमि रह्या, साहिब कहिए सोइ ॥ १ ॥
रहै निराला माँड थै, सकल माँड ता माँहि ।
कबीर सेवै तास कूँ, दूजा कोई नाँहि ॥ २ ॥
भोलै भूली खसम कै, बहुत किया बिभचार ।
सतगुर गुरू बताइया, पूरिबला भरतार ॥ ३ ॥
जाकै मह माथा नहीं, नहीं रूपक रूप ।
पुहुप बास थैं पतला ऐसा तत अनूप ॥ ४ ॥५८४॥

---

(३७) बिर्कताई कौ अंग

मेरे मन मैं पड़ि गई, ऐसी एक दरार ।
फटा फटक पषाँण ज्यूँ, मिल्या न दूजी बार ॥ १ ॥
मन फाटा बाइक बुरै, मिटी सगाई साक ।
जो परि दूध तिवास का, ऊकटि हूवा आक ॥ २ ॥
चंदन भाफों गुण करै, जैसे चोली पंन ।
दोइ जनां भागां न मिलै, मुकताहल अरु मंन ॥ ३ ॥
पासि बिनंठा कपड़ा, कदे सुरांग न होइ ।
कबीर त्याग्या ग्यान करि, कनक कामनी दोइ ॥ ४ ॥
चित चेतनि मैं गरक ह्वै, चेत्य न देखैं मंत ।
कत कत की सालि पाड़िये, गल बल सहर अनंत ॥ ५ ॥

(३६–४) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

चत्र भुजा कै ध्यान मैं, ब्रिजबासी सब संत ।
कबीर मगन ता रूप मैं, जाकै भुजा अनंत ॥ ५ ॥

(३७–३) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

मोती भागाँ बींधताँ, मन मैं बस्या कबोल ।
बहुत सयानाँ पचि गया, पड़ि गइ गाठि गढोल ॥ ४ ॥
मोती पीवत बीगस्या, सानौं पाथर आइ राइ ।
साजन मेरी नीकल्या, जाँमि बटाऊँ जाइ ॥ ५ ॥

(५) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

बाजण देह बजंतणी, कुल जंतड़ी न बेड़ि ।
तुझै पराई क्या पड़ी, तूं आपनी निबेड़ ॥ ८ ॥

जाता है सो जाँण दे, तेरी दसा न जाइ ।
खेवटिया की नाव ज्यूँ, घणों मिलैंगे आइ ॥ ६ ॥
नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर घर बारि
जो त्रिषावंत होइगा, तो पीवेगा झष मारि ॥ ७ ॥
सत गंठी कोपीन है, साध न मानै संक ।
रांम अमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौ रंक ॥ ८ ॥
दावै दाझण होत है, निरदावै निरसंक ।
जे नर निरदावै रहैं, ते गणै इंद्र कौ रंक ॥ ९ ॥
कबीर सब जग हंडिया, मंदिल कंधि चढ़ाइ ।
हरि बिन अपनाँ को नही, देखे ठोकि बजाइ ॥१०॥५१४॥

(३८) सम्रथाई कौ अंग

नाँ कुछ किया न करि सक्या, नाँ करणे जोग सरीर ।
जे कछु किया सु हरि किया, ताथैं भया कबीर कबीर ॥ १ ॥
कबीर किया कछू न होत है, अनकीया सब होइ ।
जे किया कछु होत है, तो करता औरे कोइ ॥ २ ॥
जिसहि न कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब कोइ ।
दरिगह तेरी साँईयाँ, नाँव हरू मन होइ ॥ ३ ॥
एक खड़े ही लहैं, और खड़ा बिललाइ ।
साई मेरा सुलषना, सूता देइ जगाइ ॥ ४ ॥
सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरि गुण लिख्या न जाइ ॥ ५ ॥
अबरन कौं का बरनिये, मोपै लख्या न जाइ ।
अपना बाना बाहिया, कहि कहि थाके माइ ॥ ६ ॥
झल बाँवै झल दाँहिनैं, झलहि माँहि ब्यौहार ।
आगैं पीछै झलमई, राखै सिरजनहार ॥ ७ ॥
साँई मेरा बाँणियाँ, सहजि करै व्योपार ।
बिन डाँडी बिन पालड़ै, तोलै सब संसार ॥ ८ ॥

(३८-१) ख प्रति में इस अंग का पहला दोहा यह है—
साई सौं सब होइगा, बंदे थैं कुछ नाहिं ।
राई थैं परबत करे, परबत राई माँहि ॥ १ ॥

(८) ख—ब्यौहार ।

कबीर वारचा नांव परि, कीया राई लूंण।
जिसहि चलावै पंथ तूं, तिसहि भुलावै कौंण॥ ९ ॥
कबीर करणी क्या करै, जे रांम न कर सहाइ।
जिहिं जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि नवि जाइ॥१०॥
जदि का माइ जनमियां, कहूं न पाया सुख।
डाली डाली मैं फिरौं, पातौं पातौं दुख॥ ११ ॥
सांई सूं सब होत हैं, बंदे थैं कछु नांहि।
राई थैं परबत करै, परबत राई मांहि॥१२॥६०६॥

—:o:—

(३९) कुसबद कौ अंग

अणी सुहेली सेल की, पड़तां लेइ उसास।
चोट सहारै सबद की, तास गुरू मैं दास॥ १ ॥
खूंदन तौ धरती सहै, बाढ सहै बनराइ।
कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ॥ २ ॥
सीतलता तब जांणिए, 'समिता रहै समाइ।
पष छाडै निरपष रहै, सबद न दूष्या जाइ॥ ३ ॥
कबीर सीतलता भई, पाया ब्रह्म गियान।
जिहि बैसंदर जग जल्या, सो मेरे उदिक समान॥४॥६१०॥

(४०) सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, तार्थै छूटि भरंति॥ १ ॥
सती संतोषी सावधान, सबद भेद सुबिचार।
सतगुर के प्रसाद थैं, सहज सील मत सार॥ २ ॥
सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरि करि, देह द्रपन करै सोइ॥ ३ ॥

(१२) ख प्रति में बारहवें दोहे के स्थान पर यह दोहा है—

रैणां दूरां बिछोहियां, रहु रे संषम झूरि।
देवल देवलि धाहिणी, देसी अंगे सूर॥ १३ ॥

(३९-३) ख—काट सहैं। साधू सहै।

(४) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

सहज तराजू आंणि करि, सब रस देख्या तोलि।
सब रस मांहैं जीभ रस, जे कोइ जांणै बोलि॥ ५ ॥

सतगुर साचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही में मिलि गया, पड़्या कलेजे छेक ॥ ४ ॥
हरि रस जे जन बेधिया, सतगुण सी गणि नाहि।
लागी चोट सरीर में, करक कलेजे माँहि ॥ ५ ॥
ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साभलूँ, त्यूँ त्यूँ लागै तीर।
साँठी साँठी भड़ि पड़ी, भलका रह्या सरीर ॥ ६ ॥
ज्यूँ ज्यूँ हरिगुण साँभलौं, त्यूँ त्यूँ लागै तीर।
लागैं थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥ ७ ॥
सारा बहुत पुकारिया, पीड़ पुकारै और।
लागी चोट सबद की, रह्या कबीरा ठौर ॥८॥६१८॥

—.—

(४१) जीवन मृतक कौ अंग

जीवन मृतक ह्वै रहै, तजै जगत की आस।
तब हरि सेवा आपण करै, मति दुख पावै दास ॥ १ ॥
कबीर मन मृतक भया, दुरबल भया सरीर।
तब पैंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥ २ ॥
कबीर मरि मड़हट रह्या, तब कोई न बूझै सार।
हरि आदर आगैं लिया, ज्यूँ गउ बछ की लार ॥ ३ ॥
घर जालौं घर उबरे, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥ ४ ॥
मरताँ मरताँ जग मुवा, औसर मुवा न कोइ।
कबीर ऐसैं मरि मुवा, ज्यूँ बहुरि न मरना होइ ॥ ५ ॥
बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा, जिनि के राम अधार ॥ ६ ॥
मन मार्‌या ममिता मुई, अहं गई सब छूटि।
जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥ ७ ॥
जीवन थैं मरिबो भलौ, जौ मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहली जे मरैं, तौ कलि अजरावर होइ ॥ ८ ॥

(४०-४) ख प्रति में यह दोहा नहीं है।
(४१-१) ख प्रति में इस अंग में पहला दोहा यह है—
जिन पांऊँ सैं कतरी हांठत देत बदेस।
तिन पांऊँ तिथि पाकड़ी, आगण भया बदेस ॥ १ ॥

खरी कसौटी राँम की, खोटा टिकै न कोइ।
राम कसौटी सो टिकै, जौ जीवत मृतक होइ ॥ ९ ॥
आपा मेट्या हरि मिलै, हरि मेट्या सब जाइ।
अकथ कहाणी प्रेम की, कह्या न को पत्याइ ॥ १० ॥
निगु साँवाँ बहि जायगा, जाकै थाघी नहीं कोइ।
दीन गरीबी बंदिगी, करता होइ सु होइ ॥ ११ ॥
दीन गरीबी दीन कौं, दूँदर कौं अभिमान।
दुंदुर दिल विष सूँ भरी, दीन गरीबी राम ॥ १२ ॥
कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास।
कबीर ऐसे ह्वै रह्या, ज्यूँ पाऊँ तलि घास ॥ १३ ॥
रोड़ा ह्वै रहौ बाट का, तजि पाखंड अभिमान।
ऐसा जे जन ह्वै रहै, ताहि मिलै भगवान ॥१४॥६३२ ॥

---

(४२) चित कपटी कौ अंग

कबीर तहाँ न जाइए, जहाँ कपट का हेत।
जालूँ कली कनीर की, तन रातौ मन सेत ॥ १ ॥

(१२) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं--

कबीर नवे स आपको, पर कौं नवे न कोइ।
घालि तराजू तोलिये, नवे स भारी होइ ॥१४॥
बुरा बुरा सब को कहै, बुरा न दीसै कोइ।
जे दिल खोजौ आपणो, मुझसा बुरा न कोइ ॥१५॥

(४) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं--

रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देइ।
हरिजन ऐसा चाहिए, जिसी जिमीं की खेह ॥ १८ ॥
खेह भई तौ क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग।
हरिजन ऐसा चाहिए, पाँणीं जैसा रंग ॥ १९ ॥
पाणीं भया तो क्या भया, ताता सीता होइ।
हरिजन ऐसा चाहिए, जैसा हरि ही होइ ॥ २० ॥
हरि भया, तो क्या भया, जासौं सब कुछ होइ।
हरिजन ऐसा चाहिए, हरि भजि निरमल होइ ॥ २१ ॥

(४२-१) ख प्रति में इस अंग का पहला दोहा यह है--

नवणि नयौ तौ का भयौ, चित्त न सूधौं ज्योंह।
पारधिया दूणा नवै, मिघ्राटक ताह ॥ १ ॥

संसारी साषत भला, कंवारी कै भाइ।
दुराचारी वेश्नों बुरा, हरिजन तहां न जाइ ॥ २ ॥
निरमल हरि का नाव सों के निरमल सुध भाइ।
के ले दूणी कालिमा, भावे सों मण साबण लाइ ॥३॥६३५॥

---

(४३) गुरुसिष हेरा कौ अंग

ऐसा कोई ना मिले, हम कौं दे उपदेस।
भौसागर मैं डूबता, कर गहि काढ़े केस ॥ १ ॥
ऐसा कोई ना मिले, हम कौं लेइ पिछानि।
अपना करि किरपा करे, ले उतारै मैदानि ॥ २ ॥
ऐसा कोई ना मिले, राम भगति का गीत।
तन मन सौंपे मृग ज्यूं, सुने बधिक का गीत ॥ ३ ॥
ऐसा कोई ना मिले, अपना घर देइ जराइ।
पंचूं लरिका पटिक करि, रहै राम ल्यौ लाइ ॥ ४ ॥
ऐसा कोई ना मिले, जासौं रहिये लागि।
सब जग जलता देखिये, अपणीं अपणीं आगि ॥ ५ ॥
ऐसा कोई ना मिले, जासूं कहूं निसंक।
जासूं हिरदे की कहूं, सो फिरि माडै कंक ॥ ६ ॥
ऐसा कोई ना मिले, सब बिधि देइ बताइ।
सुंनि मंडल मैं पुरिष एक, ताहि रहै ल्यौ लाइ ॥ ७ ॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांह।
ऐसा कोई ना मिले, पकड़ि छुड़ावे बांह ॥ ८ ॥
तींनि सनेही बहु मिले, चौथे मिले न कोइ।
सबे पियारे राम के, बैठे परबसि होइ ॥ ९ ॥
माया मिले महोबंती, कूड़े आखै बेउ।
कोई घाइल बेध्या ना मिलै, साईं हंदा सैण ॥ १० ॥
सारा सूरा बहु मिलैं, घाइला मिले न कोइ।
घाइल हीं घाइल मिले, तब राम भगति दिढ़ होइ ॥ ११ ॥

(४२-५) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
ऐसा कोई ना मिले, बूझै सैन सुजान।
ढोल बजंता ना सुणौं, सुरति बिहूणा कान ॥ ६ ॥
(११) ख—जब घाइल हीं घाइल मिलै।

प्रेमी ढूँढन मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोइ ।
प्रेमी कौं प्रेमी मिलै, तब सब विष अमृत होइ ॥ १२ ॥
हम घर जाल्या आपणाँ, लिया मुराड़ा हाथि ।
अब घर जालौं तास का, जे चलै हमारे साथि ॥१३॥३४८॥

---

(४८) हेत प्रीति सनेह कौ अंग

कमोदनी जलहरि बसै, चंदा बसै अकासि ।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास ॥ १ ॥
कबीर गुर बसै बनारसी, सिष समंदाँ तीर ।
बिसारचा नहीं बीसरै जे गंग होइ सरीर ॥ २ ॥
जो है जाका भावता, जदि तदि मिलसी आइ ।
जाकौं तन मन सौंपिया, सो कबहूँ छाँड़ि न जाइ ॥ ३ ॥
स्वामी सेवक एक मन, मन ही मैं मिलि जाइ ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ ॥ ४ ॥३५२॥

---

(४५) सूरा तन कौ अंग

काइर हुवाँ न छूटिये, कछू सूरा तन साहि ।
भरम भलका दूरि करि, सुमिरण सेल सँबाहि ॥ १ ॥
षूँड़ै पड़चा न छूटियो, सुणि रे जीव अबूझ ।
कबीर मरि मैदान मैं, करि इंद्रयाँ सूँ झूझ ॥ २ ॥
कबीर साईं सूरिवाँ, मन सूँ माँडै झूझ ।
पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज ॥ ३ ॥
सूरा झूझै गिरदा सूँ, इक दिसि सूर न होइ ।
कबीर यौं बिन सूरिवाँ, भला न कहिसी कोइ ॥ ४ ॥

(१२) ख—जब प्रेमी हीं प्रेमी मिलें ।
(१६) ख प्रति में इसके आगे ये दोह हैं—

जाणौं ईछूँ क्या नहीं, बूझि न कीया गौन ।
भूलौ भूल्या मिल्या, पंथ बतावै कौन ॥ १५ ॥
कबीर जानींदा बूझिया, मारग दिया बताइ ।
चलता चलता तहाँ गया, जहाँ निरंजन राइ ॥ १६ ॥

(५४-१) ख—जो जाहीं कै मन बसै ।
(३) ख—पंच पयादा पकड़ि ले ;

कबीर आरणि पैसि करि, पीछैं रहै सु सूर।
साँई सूँ साचा भया, रहसी सदा हजूर॥ ५॥
गगन दमाँयाँ बाजिया, पड्या निसानैं घाव।
खेत बुहारया सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव॥ ६॥
कबीर मेरै संसा को नहीं, हरि सूँ लागा हेत।
काँम क्रोध सूँ झूझणाँ, चौड़े माँड्या खेत॥ ७॥
सूरैं सार सँबाहिया, पहरया सहज संजोग।
अब कै ग्याँन गयंद चढ़ि, खेत पड़न का जोग॥ ८॥
सूरा तबहीं परषिये, लड़ै धणीं कै हेत।
पुरिजा पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत॥ ९॥
खेत न छाड़ै सूरिवाँ झूझै द्वै दल माँहि।
आसा जीवन मरण की, मन मैं आँणैं नांहि॥१०॥
अब तौ झूझ्याँ हीं बणौं, मुढ़ि चाल्या घर दूरि।
सिर साहिब कौं सौंपता, सोच न कीजै सूरि॥११॥
अब तो ऐसी ह्वै पड़ी, मनकारु चित कीन्ह।
मरनैं कहा डराइये, हाथि स्यँधौंरा लींन्ह॥१२॥
जिस मरनै थैं जग डरै, सो मेरे आनंद।
कब मारिहूँ कब देखिहूँ, पूरन परमांनंद॥१३॥
कायर बहुत पमांवहीं, बहकि न बोलै सूर।
काँम पड्याँ हीं जाँणिहै, किसके मुख परि नूर॥१४॥
जाइ पूछौ उस घाइलै, दिवस पीड निस जाग।
बाँहणहारा जाणिहै, कै जाँणैं जिस लाग॥१५॥
घाइल घूँमै गहि भरया, राख्या रहै न ओट।
जतन कियाँ जावै नहीं, बणीं मरम की चोट॥१६॥
ऊँचा विरष अकासि फल, पंषी मूए झूरि।
बहुत सयाँने पचि रहे, फल निरमल परि दूरि॥१७॥
दूरि भया तौ का भया, सिर दे नेड़ा होइ।
जब लग सिर सौंपै नहीं, कारिज सिधि न होइ॥१८॥
कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसे घर माँहि॥१९॥
कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद॥२०॥

(४) ख--जाके मुख षटि नूर।
(१७) ख--पंषी मूए झूरि।

प्रेम न खेतौं नींपजे प्रेम न हाटि बिकाइ ॥
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥ २१ ॥
सीस काटि पासंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह ।
जाहि भावे सो आइ ल्यौ, प्रेम आट हँम कीन्ह ॥ २२ ॥
सूरै सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस ।
आगैं थैं हरि मुल किया, आवत देख्या दास ॥ २३ ॥
भगति दुहेली राँम की, नहि कायर का काम ।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नाम ॥ २४ ॥
भगति दुहेली राँम की, नहिं जैसि खाड़े की धार ।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नहीं तौ उतरै पार ॥ २५ ॥
भगति दुहेली राँम की, जैसी अगनि की झाल ।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥ २६ ॥
कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढ़ि असवार ।
ग्याँन षड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ॥ २७ ॥
कबीर हीरा वणजिया, महँगे मोल अपार ।
हाड़ गला माटी गली, सिर साटै ब्योहार ॥ २८ ॥
जेंते तारे रैणि के, तेते बैरी मुझ ॥
धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुझ ॥ २९ ॥
जें हार्‌या तौं हरि सवां, जे जीत्या तो डाव ।
पारब्रह्म कूं सेवता, जे सिर जाइ त जाव ॥ ३० ॥
सिर साटै हरि सेविए छाड़ि जीव की बाँणि ।
जे सिर दीया हरि मिलै, तब लगि हाँणि न जाणि ॥ ३१ ॥
टूटी बरत अकास थै, कोई न सकै झड़ झेल ।
साध सती अरु सूर का, अंणी ऊपिला खेल ॥ ३२ ॥
सती पुकारै सलि चढ़ी, सुनी रे मीत मसाँन ।
लोग बटाऊ चलि गए, हंम तुझ रहे निदाँन ॥ ३३ ॥
सती बिचारी सत किया, काठौं सेज बिछाइ ।
ले सूती पिव आपणा, चहुँ दिसि अगनि लगाइ ॥ ३४ ॥
सती सूरा तन साहि करि, तन मन कीया घाँण ।
दिया महोला पीव कूँ, तब मड़हट करै बषाँण ॥ ३५ ॥

(३१) ख—सिर साटै हरि पाइए ।
(३२) ख—प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
ढोल दमामा बाजिया, सबद सुणइ सब कोई ।
जैसल देखि सती भजे, तौ दुहु कुल हासी होइ ॥ ३२ ॥

मनी जलन कूँ नीकली, पीव का गुमरि सनेह ।
सबद सुनत जीव निकल्या, भूलि गई सब देह ॥ ३६ ॥
सती जलन कूं नीकली, चित धरि एकबमेख ।
तन मन सौंप्या पीव कूँ, तब अंतर रही न रेख ॥ ३७ ॥
हा नाहि पूछों हे सखी, जीवन क्यूँ न मराइ ।
मूंवा पीछें सत करै, जीवत क्यूँ न कराइ ॥ ३८ ॥
कबीर प्रगट राम कहि, छाँनै रांम न गाइ ।
फूस क जौंड़ा दूरि करि, ज्यूं बहुरि लागै लाइ ॥ ३९ ॥
कबीर हरि सबकूँ भजै, हरि कूं भजै न कोइ ॥
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होइ ॥ ४० ॥
आप सवारथ मेदनी, भगत सवारथ दास ।
कबीरा रांम सवारथी, जिनि छाड़ी तन की आस ॥४१॥६९६॥

---

(४६) काल कौ अंग

झूठे सुख कौं सुख कहैं, मानत है मन मोद ।
खलक चबीणाँ काल का, कुछ मुख मैं कुछ गोद ॥ १ ॥
आजक काल्हिक निस हमैं, मारगि माल्हंता ।
काल सिचांणाँ नर चिड़ा, औझड़ औच्यंतां ॥ २ ॥
काल सिहाँणै यौं खड़ा, जागि पियारो म्यंत ।
राम सनेही बाहिरा, तूँ क्यूँ सोवै नच्यंत ॥ ३ ॥
सब जग सूता नींद भरि, संत न आवै नींद ।
काल खड़ा सिर उपरैं, ज्यूं तोरणि आया बींद ॥ ४ ॥
आज कहै हरि काल्हि भजौंगा, काल्हि कहै फिरि काल्हि ।
आज ही काल्हि करंतड़ाँ, औसर जासी चालि ॥ ५ ॥
कबीर पल की सुधि नहीं, करै काल्हि का साज ।
काल अच्यंता भड़पसी, ज्यूं तीतर कों बाज ॥ ६ ॥
कबीर टग टग चोघताँ, पल पल गई बिहाइ ।
जीव जँजाल न छाड़ई, जम दिया दमामा आइ ॥ ७ ॥

(३७) ख--जलन को नीसरी ।
(४६-८) ख--निसह भरि ।
(७) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है--

जूरा कूती, जीवन ससा, काल अहेडी बार ।
पलक बिना मैं पाकड़ै, गरब्यो कहा गँवार ॥ ८ ॥

मैं अकेला ए दोइ जरणाँ, छेती नाँहीं काँइ।
जे जम आगैं ऊबरौं, तो जुरा पहूँती आइ॥ ८॥
वारी वारी आपरणीं, चले पियारे म्यंत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै नित॥ ९॥
दौं की दाधी लाकड़ी ठाढ़ी करे पुकार।
मति बसि पड़ौं लुहार कै, जालै दूजी बार॥ १०॥
जो ऊग्या सो आँथवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिरिणयाँ सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ॥ ११॥
जो पहरया सो फाटिसी, नाँव धरया सो जाइ।
कबीर सोइ तत्त गहि, जौ गुरि दिया बताइ॥ १२॥
निधड़क बैठा राम बिन, चेतनि करैं पुकार।
यहु तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार॥ १३॥
पाँरणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनाँ छिप जाँहिगे, तारे ज्यूँ परभाति॥ १४॥
कबीर यहु जग कुछ नही, षिन षारा षिन मीठ।
काल्हि जु बैठा माड़ियां, आज मसाँरणाँ दीठ॥ १५॥

---

(९) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

मालन आवत देखि करि, कलियाँ करी पुकार।
फुले फूले चुरिण लिए, काल्हि हमारी बार॥ ११॥
बाढ़ी आवत देखि करि तरवर डोलन लाग।
हम कटे की कुछ नहीं, पंखेरू घर भाग॥ १२॥
फाँगुरण आवत देखि करि, बन रूना मन माँहि।
ऊँची डाली पात हैं, दिन दिन पीले थाँहि॥ १३॥
पात पडंता यौं कहै, सुनि तरवर बगराइ।
अब के बिछुड़े ना मिलैं कहिं दूर पड़ैंगे जाइ॥ १४॥

(१०) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

मेरा बीर लुहारिया, तू जिनि जालै मोहि।
इक दिन ऐसा होइगा, हूँ जालौंगी तोहि॥ १५॥

(१४) ख—एक दिनाँ नटि जाँहिगे, ज्यूँ तारा परभाति।

ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर पंच पखेरुवा, राखे पोष लगाइ।
एक जु आया पारधी ले गया सबै उड़ाइ॥ २१॥

(१५) ख—काल्हि जु बैठा मैंड़िया।

कबीर मंदिर आपणै, नित उठि करती आलि।
मड़हट देष्याँ डरपती, चौड़े दीन्हीं जालि॥ १६ ॥
मंदिर माँहि झबूकती; दीवा कैसी जोति।
हंस बटाऊ चलि गया, काढ़ी घर की छोति॥ १७ ॥
ऊँचा मंदर धौलहर, माटी चित्री पौलि।
एक रांम के नाँव बिन, जंम पाड़ैगा रौलि॥ १८ ॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहे कर केस।
नाँ जाँणौ कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस॥ १९ ॥
कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गए सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चले बजावणहार॥ २० ॥

(१६) ख—बैठो करतौं आलि।

(१८) ख प्रति में इसके आग ये दोहे हैं—

काएँ चिणावै मालिया, चुनै माटी लाइ।
मींच सुणैगी पापणी, उधोरा लैली आइ॥ २६ ॥
[illegible] मालिया, लाँबी भींति उसारि।
काए चि[illegible] [illegible]थ, घणौ तौ पौंणा चारि॥ २७ ॥
घर तौ साढ़ी तीनि [illegible] [illegible] कलसु चढ़ाइ।
ऊँचा महल चिणाइयाँ [illegible] मसाणौ जाइ॥ २८ ॥
ते मंदर खाली पड्या, र[illegible]

(१९) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

इहर अभागी माँछली, छापरि माँणी आलि।
डाबरड़ा छूटै नहीं, सकै त समंद सभालि॥ ३० ॥
मँछी हुआ न छूटिए, झींवर मेरा काल।
जिंहि जिंहि डाबर हूँ फिरौं, तिंहि तिंहि माँड़े जाल॥ ३१ ॥
पाँणी माँहि ला माँछली, सक तौ पाकड़ि तीरि।
कड़ीं कदू की काल की आइ पहुँता कीर॥ ३२ ॥
मंछ बिकंता देखिया झींबर के करवारि।
ऊंखड़िया रत बालियाँ तुम क्यूं बँधे जालि॥ ३२ ॥
पाँणीं माँहै घर किया चेजा किया पतालि।
पासा पड़्या करम का यूँ हम बींधे जालि॥ ३४ ॥
सूकण लगा केवड़ा तूटीं अरहर माल।
पाँणीं की कल जाणतां गया ज सींचणहार॥ ३५ ॥

(२०) ख—कबीर जंत्र न बाजई।

धवणि धवंती रहि गई, बुझि गए अंगार।
अहरणि रह्या ठमूकड़ा, जब उठि चले लुहार ॥ २१ ॥
पंथी ऊभा पंथ सिरि, बुगचा बाँध्या पूठि।
मरणाँ मुह आगैं खड़ा, जीवण का सब झूठ ॥ २२ ॥
यहु जिव आया दूर थैं, अजौं भी जासी दूरि।
बिच कै बासै रमि रह्या, काल रह्या सर पूरि ॥ २३ ॥
राँम कह्या तिनि कहि लिया जुरा पहूँती आइ।
मंदिर लागैं द्वार यैं, तब कुछ काढणां न जाइ ॥ २४ ॥
वरियाँ बीती बल गया, बरन पलटचा और।
बिगड़ी बात न बाहुड़ै, कर छिटक्याँ कत ठौर ॥ २५ ॥
वरिया बीती बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥ २६ ॥
कबीर हरि सूँ हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव।
बाँध्या बार षटीक कै, तापसु किती एक आव ॥ २७ ॥
विष के बन मैं घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथैं जियरै डरै गह्या, जागत रैंणि बिहाइ ॥ २८ ॥
कबीर सब सुख राम है, और दुखाँ की रासि।
सुर नर मुनियर असुर सब, पड़े काल की पासि ॥ २९ ॥

(२१) ख——ठमेकड़ा। उठि गए।

ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है——

कबीर हरणी दूबली, इस हरियालै तालि।
लख अहेड़ी एक जीव, कित एक टालौं भालि ॥ ३८ ॥

(२२) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है——

जिसहि न रहणा इत जागि, सी क्यूँ लौड़ै मीत।
जैसे पर घर पाहुणां, रहैं उठाए चीत ॥ ४० ॥

(२५) ख——कर छूटाँ कत ठौर।

(२३) ख प्रति में इसके आग ये दोहे हैं——

कबीर गाफिल क्या फिरै, सोवै कहा न चींत।
एवड़ माहि तैं ले चल्या, भज्या पकड़ि षरीस ॥ ४५ ॥
साँई सू मिसि मछीला, के जा सुमिरै लाहूत।
कबही उभकै कटिसी, हुँण ज्यौं बगमंकाहु ॥ ४६ ॥

(२७) ख——कड़वे तन लाव।

काची काया मन अथिर, थिर थिर काँम करंत ।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधड़क फिरैं, त्यूँ त्यूँ काल हसंत ॥ ३० ॥
रोवणहारे भीं मुए, मुए जलाँवणहार ।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥ ३१ ॥
जिनि हम जाए ते मुए; हम भी चालणहार ।
जे हमको आगैं मिले, तिन भी बंध्या मार ॥३२॥७२५॥

—:०:—

(४८) सजीवनी कौ अंग

जहाँ जुरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ ।
चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहाँ बैद विधाता होइ ॥ १ ॥
कबीर जोगी बनि बस्या, षणि खाये कँद मूल ।
नाँ जाणौं किस जड़ी थैं, अमर भए असथूल ॥ २ ॥
कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थै टूटि ।
गगन मँडल आसण किया, काल गया सिर कूटि ॥ ३ ॥
यहु मन पटकि पछाड़ि लै, सब आपा मिटि जाइ ।
पंगलु ह्वै पिव पिव करै, पीछैं काल न खाइ ॥ ४ ॥
कबीर मन तीषा किया, बिरह लाइ षरसाँड़ ।
चित चणूँ मैं चुभि रह्या, तहाँ नहीं काल का पाण ॥ ५ ॥
तरवर तास बिलंबिए, बारह मास फलंत ।
सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत ॥ ६ ॥
दाता तरवर दया फल, उपगारी जीवंत ।
पंषी चले दिसावराँ, बिरषा सुफल फलंत ॥ ७ ॥७३२॥

—:०:—

(३०) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
बेटा जाया तौ का भया, कहा बजावै थाल ।
आवण जाणा ह्वै रहा, ज्यौं कीड़ी का थाल ॥ ५१ ॥
(४७–१) ख—जुरा मीच ।
(५) ख—मन तीषा भया ।

(४८) अपारिष को अंग

पाइ पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि ।
जोड़ी बिछुटी हंस की, पड़्या बगां के साथि ॥ १ ॥
एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाइ ।
परिषणहारे बाहिरा, कोड़ी बदले जाइ ॥ २ ॥
कबीर गुदड़ी बीषरी, सौदा गया बिकाइ ॥
खोटा बांध्यां गांठड़ी, इब कुछ लिया न जाइ ॥ ३ ॥
पैंड़ै मोती बिखर्‍या अंधा निकस्या आइ ।
जोति बिनां जगदीश की, जगत उलंघ्या जाइ ॥ ४ ॥
कबीर यहु जग अंधला, जैसी अंधी गाइ ।
बछा था सो मरि गया, ऊभी चांम चटाइ ॥ ५ ॥७३०॥

—: ० :—

(४९) पारिष कौ अंग

जब गुण कूं गाहक मिलैं, तब गुण लाख बिकाइ ।
जब गुण कौं गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाइ ॥ १ ॥
कबीर लहरि समंद की, मोती बिखरे आइ ।
बगुला मंझ न जांणई, हंस चुणे चुणि खाइ ॥ २ ॥

(४८–१) ख प्रति में इसके पहिले ये दोहे हैं—
चंदन रूख बदस गयौ, जण जण कहै पलास ।
ज्यौं ज्यौं चूल्हैं लोंकिए, त्यूं त्यूं अधिकी बास ॥ १ ॥
हँसडो तौ महाराण कौ, उड़ि पड्यौ थलियांह ।
बगुलौं करि करि मारियो, सभ न जांणैं त्यांह ॥ २ ॥
हंस बगां के पाहुंणा, कहीं दसा कै केरि ।
बगुला कांई गरबियां, बैठा पांख पषेरि ॥ ३ ॥
बगुला हंस मनाइ लै, नेड़ों थकां बहोड़ि ।
त्यांह बैठा तूं उजला, त्यौं हंस्यौं प्रीति न तोड़ि ॥ ४ ॥
ख—चल्यां बगां के साथि ।
(४९–१) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
कबीर मनमाना तौलिए, सबदां मोल न तोल ।
गौहर परषण जांणहीं, आपा खोवै बोल ॥ ७ ॥

हरि हीराजन जौहरी, ले ले माँडिय हाटि।
जबर मिलैंगा पारिषु, तब हीराँ की साटि ॥ ३ ॥८४०॥

(५०) उपजणि कौ अंग

नाव न जाँणौं गाँव का, मारगि लागा जाँउँ।
काल्हि जु काटा भाजिसी, पहिली क्यों न खड़ाउँ ॥ १ ॥
सीष भई संसार थैं, चले जु साँई पास।
अविनासी मोहिं ले चल्या, पुरई मेरी आस ॥ २ ॥
इंद्रलोक अचरिज भया, ब्रह्मा पड्या बिचार।
कबीर चाल्या राँम पैं, कौतिगहार अपार ॥ ३ ॥
ऊँचा चढ़ि असमान कू, मेरु ऊलंघे ऊड़ि।
पसू पंषेरू जीव जंत, सब रहें मेर में बूड़ि ॥ ४ ॥
सद पाँणी पाताल का, काढ़ि कबीरा पीव।
बासी पावस पड़ि मुए, बिषै बिलंबे जीव ॥ ५ ॥
कबीर सुपिनैं हरि मिल्या, सूताँ लिया जगाइ।
आषि न मींचौं डरपता, मति सुपिनाँ ह्वै जाइ ॥ ६ ॥
गोब्यंद कै गुंण बहुत है, लिखे जु हिरदै माँहि।
डरता पाँणी ना पिऊँ, मति वै धोये जाँहि ॥ ७ ॥
कबीर अब तौ ऐसा भया, निरमोलिक निज नाउँ।
पहली काच कथीर था, फिरता ठाँवैं ठाउँ ॥ ८ ॥
भौ समंद बिष जल भर्‌या, मन नहीं बाँधै धीर।
सबल सनेही हरि मिले, तब उतरे पारि कबीर ॥ ९ ॥

(४९–३) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

कबीर सपनहीं साजन मिले, नइ नइ करै जुहार।
बोल्याँ पीछे जांणिए, जो जाकी ब्योहार ॥ ४ ॥
मेरी बोली पूरबी, ताइ न चीन्है कोइ।
मेरी बोली सो लखै, जो पूरब का होइ ॥ ५ ॥

(५०–३) ख–ब्रह्मा भया विचार।

(४) ख—ऊँचा चाल।

(५) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर हरि का डपंता, ऊन्हाँ धाँन न खाँउँ।
हिरदय भीतर हरि बसै, ताथै खरा डराउँ ॥ ७ ॥

भला सहेला ऊतरया, पूरा मेरा भाग।
राँम नाँव नौका गह्या, तब पाँणीं पंक न लाग ॥ १० ॥
कबीर केसौ की दया, संसा घाल्या खोइ।
जे दिन गए भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि ॥ ११ ॥
कबीर जाचरण जाइया, आगै मिल्या अंच।
ले चाल्या घर आपणैं, भारी खाया संच ॥ १२ ॥७५२॥

---

(५१) दया निरबैरता कौ अंग

कबीर दरिया प्रजल्या, दाझै जल थल झोल।
बस नाँहीं गोपाल सौ, बिनसै रतन अमोल ॥ १ ॥
ऊँनमि बिआई बादली; बर्सण लगे अँगार।
उठि कबीरा धाह थे, दाझत है संसार ॥ २ ॥
दाध बली ता सब दुखी, सुखी न देखौं कोइ।
जहाँ कबीरा पग धरै, तहाँ टुक धीरज होइ ॥ ३ ॥७५५॥

---

(५२) सुंदरि कौ अंग

कबीर सुंदरि यों कहै, सुणि हो कंत सुजाँण।
वेगि मिलौ तुम आइ करि, नहीं तर तजौं पराँण ॥ १ ॥
कबीर जको सुंदरी, जाँणि करै विभचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, प्रेम पुरिष भरतार ॥ २ ॥
जे सुंदरि साँई भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूँ परहरै, पलक न छाडै पास ॥ ३ ॥

(११) ख—संता मेल्हा।
(५२-२) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

दाध बली ता सब दुखी, सुखी न दीसै कोइ।
को पुत्रा को बंधवाँ, को धणहीना होइ ॥ ३ ॥

(३) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

हूँ रोऊँ संसार कौ, मुझै न रोवै कोइ।
मुझको सोंई रोइसी, जे राम सनेहीं होइ ॥ ५ ॥
मूरो कौ का रोइए, जो अपणैं घर जाइ।
रोइए बंदीवान को, जो हाटै हाट बिकाइ ॥ ६ ॥
बाग बिछिटे मिग्र लौ, ति हि जि मारै कोइ।
आपै हौ मरि जाइसी, डावाँ डोला होइ ॥ ७ ॥

इस मन कौं मैदा करौं, नान्हाँ करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुंदरि, ब्रह्म झलकै सीस ॥ ४ ॥
हरिया पारि हिंडोलना, मेल्या कंत मचाइ।
सोइ नारि सुलषणीं, नित प्रति झूलण जाइ ॥ ५ ॥७६०॥

---

(५३) कस्तूरियाँ मृग कौ अंग

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूंढै बन माँहि।
ऐसैं घटि घटि रांम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि ॥ १ ॥
कोइ एक देखै संत जन, जाँकै पाँचूं हाथि।
जाके पाँचूं बस नहीं, ता हरि संग न साथि ॥ २ ॥
सो साँई तन मैं बसै, भ्रम्यों न जाणैं तास।
कस्तूरी के मृग ज्यूं, फिरि फिरि सूंघै घास ॥ ३ ॥
कबीर खोजी राम का, गया जु सिंघल दीप।
राम तौ घट भीतर रमि रह्या, जौ आवै परतीत ॥ ४ ॥
घटि बधि कहीं न देखिए, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिनि जान्या तिनि निकटि है, दूरि कहैं थे दूरि ॥ ५ ॥
मैं जांण्यां हरि दूरि है, हरि रह्या सकल भरपूरि।
आप पिछाँणैं बाहिरा, नेड़ा ही थैं दूरि ॥ ७ ॥
तिणकै ओल्है राम है, परबत मेहैं भाइ।
सतगुर मिलि परचा भया, तब हरि पाया घट माँहि ॥ ७ ॥
रांम नाँम तिहूँ लोक मैं, सकलहु रह्या भरपूरि।
यह चतुराई जाहु जलि, खोजत डोलैं दूरि ॥ ८ ॥
ज्यूं नैंनूं मैं पूतली, त्यूं खालिक घट माँहि।
मूरखि लोग न जाँणहीं बाहरि ढूंढण जाँहि ॥ ९॥७६९॥

(५२-६) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

कबीर बहुत दिवस भटकत रह्या, मन में विषै विसाम।
ढूंढत ढूंढत जग फिरया, तिणकै ओल्है रांम ॥ ७ ॥

(८) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

हरि दरियाँ सूभर भरिया, दरिया वार न पार।
खालिक बिन खाली नहीं, जेंवा सूई संचार ॥१०॥

(५४) निंद्या कौ अंग

लोग बिचारा नींदई, जिन्ह न पाया ग्याँन।
राँम नाँव राता रहै, तिनहुँ न भावै आँन ॥ १ ॥
दोख पराये देखि करि, चल्या हसंत हसंत।
अपनें च्यँति न आवई, जिनकी आदि न अंत ॥ २ ॥
निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ।
बिन साबण पाँणीं बिना, निरमल करै सुभाइ ॥ ३ ॥
न्यंदक दूरि न कीजिये, दीजे आदर माँन।
निरमल तन मन सब करै, बकि बकि आँनहि आँन ॥ ४ ॥
जे को नीदे साध कूँ, संकटि आवै सोइ।
नरक माँहि जाँमैं मरैं, मुकति न कवहूँ न होइ ॥ ५ ॥
कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होइ।
उड़ि पड़ै जब आँखि में, खरा दुहेली होइ ॥ ६ ॥
आपन यौं न सराहिए, और न कहिये रंक।
नाँ जाँणौं किस ब्रिष तलि, कूड़ा होइ करंक ॥ ७ ॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्याँ सुख ऊपजै, और ठग्याँ दुख होइ ॥ ८ ॥
अब कै जे साँई मिलैं, तौ सब दुख आपौं रोइ।
चरनूं ऊपर सीस धरि, कहूँ ज कहणाँ होइ ॥९॥७७८॥

(५५) निगुणाँ कौ अंग

हरिया जाँणै रूँषड़ा, उस पाँणीं का नेह।
सूका काठ न जाणई, कबहू बूठा मेह ॥ १ ॥
झिरिमिरि झिरिमिरि बर्षिया, पाँहण ऊपरि मेह।
माटी गलि सैंजल भई, पाँहण वोही तेह ॥ २ ॥

(५४–१) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—

निंदक तौ नाँकी, बिना, सोहै नकट्याँ माँहि।
साधू सिरजनहार के, तिनमैं सोहै नाँहि ॥ २ ॥

(६) ख—दूसरी पंक्ति।

नरक माँहि जामैं मरैं, मुकति न कबहूँ होइ।

(७) आपण यौ न सराहिये, पर निंदिए न कोइ।
अजहूँ लांबा ग्योहड़ा, ना जाणौं क्या होइ ॥ ८ ॥

(९) ख प्रति में यह दोहा नहीं है।

पार ब्रह्म बूठा मोतियाँ, बाँधी सिषराँह।
सगुराँ सगुराँ चुणि लिया, चूक पड़ी निगुराँह ॥ ३ ॥
कबीर हरि रस बरषिया, गिर डूंगर सिषराँह।
नीर मिवाणाँ ठाहरै, नाऊँ छा परड़ाँह ॥ ४ ॥
कबीर मूंडठ करमिया, नष सिष पाषर ज्याँह।
वाँहणहारा क्या करै, बाँण न लागै त्याँह ॥ ५ ॥
कहत सुनत सब दिन गए, उरझि न सुरझ्या मन।
कहि कबीर चेत्या नहीं, अजहूँ सुपहला दिन ॥ ६ ॥
कहै कबीर कठोर कै, सबद न लागै सार।
सुधबुध कै हिरदै भिदै, उपजि विवेक विचार ॥ ७ ॥
मा सीतलता के कारणैं, माग बिलंबे आइ।
रोम रोम विष भरि रह्या, अमृत कहा समाइ ॥ ८ ॥
सरपहि दूध पिलाइये, दूधैं विष ह्वै जाइ।
ऐसा कोई नाँ मिले, स्यूँ सरपैं विष खाइ ॥ ९ ॥
जालौं इहै बड़पणौं, सरलै पेड़ि खजूरि।
पंखी छाँह न बीसवैं, फल लागे ते दूरि ॥ १० ॥
ऊँचा कुल के कारणैं, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥ ११ ॥
कबीर चंदन कै निड़ैं, नींव भि चंदन होइ।
बूड़ा बंस बड़ाइताँ, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥१२॥७९०॥

---

(५६) बीनती कौ अंग

कबीर साँई तौ मिलहगे, पूछिहिगे कुसलात।
आदि अंति की कहूंगा, उर अंतर की बात ॥ १ ॥
कबीर भूलि बिगाड़िया, तूं नाँ करि मैला चित।
साहिब गरवा लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित ॥ २ ॥

(५५–६) ख प्रति में यह दोहा नहीं है।
(७) ख प्रति में इसके आगे ये दोहे हैं—

बेकाँमी को सर जिनि बाहै, साठी खोवै मूल गँवावै।
दास कबीर ताहि को बाहैं, गलि सनाह सनमुख सरसाहै ॥८॥
पसुवा सौं पानौ पड़ो, रहि रहि याम खीजि।
ऊसर बाह्यौ न ऊगसी, भावै दूणौं बीज ॥ ९ ॥
(५६–१) ख प्रति में यह दोहा नहीं है।

करता करै बहुत गुंण, औगुंण कोई नाँहि।
जे दिल खोजौं आपणीं, तौ सब औंगुण मुझ माँहि ॥ ३ ॥
औसर बीता अलपतन, पीव रह्या परदेस।
कलंक उतारौ केसवाँ, भाँनौ भरम अँदेस ॥ ४ ॥
कबीर करत है बीनती, भौसागर के नाँई।
बंदे ऊपरि जोर होत है, जँम कूं बरिज गुसाँई ॥ ५ ॥
हज काबै ह्वै ह्वै गया, केती बार कबीर।
मीराँ मुझ मैं क्या खता, मुखाँ न बोलै पीर ॥ ६ ॥
ज्यूं मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥ ७ ॥७९९॥

---

(५७) साषीभूत कौ अंग

कबीर पूछै राँम कूं, सकल भवनपति राइ।
सबही करि अलगा रहौ, सो बिधि हमहिं बताइ ॥ १ ॥
जिहि बरियाँ साँई मिलै, तास न जाँणै और।
सब कूं सुख दे सबद करि, अपणीं अपणीं ठौर ॥ २ ॥
कबीर मन का बाहुला, ऊँडा बहै असोस।
देखत हीं दह मैं पड़े, दई किसा कौं दोस ॥ ३ ॥८००॥

---

(५८) बेलि कौ अंग

अब तौ ऐसी ह्वै पड़ी, नाँ तूं बड़ी न बेलि।
जालण आँणीं लाकड़ी, ऊठी कूंपल मेल्हि ॥ १ ॥
आगैं आगैं दौं जलैं, पीछै हरिया होइ।
बलिहारी ता बिरष की, जड़ काट्याँ फल होइ ॥ २ ॥
जे काटौं तौ डहडही, सींचौं तौ कुमिलाइ।
इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुंण कह्याँ न जाइ ॥ ३ ॥

(५६-३) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
बरियाँ बीती बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिनि छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥ ३ ॥
(५) ख—कबीरा बिचारा करै बिनती।
(५८-२) ख—दौं बलै।

आँगणि बेलि अकासि फल, अण ब्यावर का दूध।
ससा सींग की धूनहड़ी, रमै बाँझ का पूत ॥ ४ ॥
कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा हीं फल होइ।
सांध नाँव तब पाइए, जे बेलि बिछोहा होइ ॥ ५ ॥
सींध भइ तब का भया, चहूँ दिसि फूटी बास।
अजहूँ बीज अंकूर है, भीऊगण की आस ॥ ६ ॥८०६॥

---

(५६) अबिहड़ कौ अंग

कबीर साथी सो किया, जाके सुख दुख नहीं कोइ।
हिलि मिलि ह्वै करि खेलिस्यूँ कदे बिछोह न होइ ॥ १ ॥
कबीर सिरजनहार बिन, मेरा हितू न कोइ।
गुण औगुण बिहड़ै नहीं, स्वारथ बंधी लोइ ॥ २ ॥
आदि मधि अरु अंत लौं, अबिहड़ सदा अभंग।
कबीर उस करता की, सेवग तजै न संग ॥ ३ ॥८०६॥

---

(६) ख प्रति में इसके आगे यह दोहा है—
सिंधि जु सहजैं फूकि गई, आगि लगी बन माँहि।
बीज बास दून्यूं जले, ऊगण कौ कुछ नाँहि ॥ ७ ॥

(२) पद

(राग गौड़ी)

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा रांम भरतार ॥ टेक ॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती ।
रांमदेव मोरैं पाँहुनैं आये मैं जोबन मैं माती ॥
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार ।
रांमदेव सँगि भाँवरी लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमार ॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी ।
कहै कबीर हँम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥ १ ॥

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घरि बैठें आये ॥ टेक ॥
मंगलचार माँहि मन राखौं, राम रसाँइण रसना चापौं ।
मंदिर माँहि भयो उजियारा, ले सूतो अपनाँ पीव पियारा ॥
मैं रनि राती जे निधि पाई. हमहिं कहाँ यह तुमहि बड़ाई ।
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हा सखी सुहाग राँम मोहि दीन्हा ॥ २ ॥

अब तोहि जाँन न देहूँ राम पियारे,
ज्यूं भावै त्यूं होह हमारे ॥ टेक ॥
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये ॥
चरननि लागि करौं बरियायी, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई ।
इत मन मंदिर रहौ नित चोषैं, कहै कबीर परहु मति धोषैं ॥ ३ ॥

मन के मोहन बीठुला, यह मन लागौ तोहि रे ।
चरन कँवल मन माँनियाँ, और न भावै मोहि रे ॥ टेक ॥
षट दल कँवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे ।
दहुँ के बीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासैं आइ रे ॥
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे ।
सतगुर मिलै तौ पाइये, नहिं तौं जन्म अक्यारथ जाइ रे ॥
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का बीच रे ।
तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे ॥
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे ।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे ॥

त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जौ हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहैं साथि रे॥
गगन गरजि मघ जोइये, तहाँ दीसैं तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन बरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब संत रे॥
षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे।
जुरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे॥
गुर गमि तैं पाइए झंषि मरे जिनि कोइ रे।
तहीं कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे॥ ४॥

गोकल नाइक बीठुला, मेरौं मन लागौ तोहि रे।
बहुतक दिन बिछुरैं भये, तेरी औसेरि आवैं मोहि रे॥ टेक॥
करम कोटि कौ ग्रेह रच्यौ रे, नेह कये की आस रे।
आपहि आप बँधाइया, द्वै लोचन मरहिं पियास रे॥
आपा पर संमि चीन्हिये, दीसैं सरब सँमान।
इहि पद नरहरि भेटिये, तूं छाड़ि कपट अभिमाँन रे॥
नाँ कलहूँ चलि जाइये नाँ सिर लीजैं भार।
रसनाँ रसहि बिचारिये, सारंग श्रीरंग धार रे॥
साधैं सिधि ऐसी पाइये, किंबा होइ महोइ।
जे दिठ ग्याँन न ऊपजैं, तौ अहुटि रहै जिनि कोइ रे॥
एक जुगति एकैं मिलैं किंबा जोग कि भोग।
इन दून्यूं फल पाइये, राँम नाम सिधि जोग रे॥
प्रेम भगति ऐसी कीजिये, मुखि अंमृत बरिषैं चंद रे।
आपही आप बिचारिये, तब केता होइ अनंद रे॥
तुम्ह जिनि जानौं गीत है, यहु निज ब्रह्म बिचार।
केवल कहि समझाइया, आतम साधन सार रे॥
चरन कँवल चित लाइये, राँम नाँम गुन गाइ।
कहै कबीर संसा नहीं, भगति मुकति गति पाइ रे॥ ५॥

(४) ख—जन्म अमोलिक।
(५) ख प्रति में इसके आगे यह पद है—

अब मैं राम सकल सिधि पाई
आन कहूँ तौ राम दुहाई॥ टेक॥
इह बिधि बसि सबैं रस दीठा, राम नाँम सा और न मीठा।
और रस ह्वै कफगाता, हरिरस अधिक अधिक सुखराता॥
दूजाँ बणज नहीं कछु बाषर, राँम नाँम दोऊ तत आषर।
कहैं कबीर हरिरस भोगी, ताकौं मिल्या निरंजन जोगी॥ ६॥

अब मैं पाइबौ रे पाइबो ब्रह्म गियान,
सहज समाधें सुख में रहिबौ, कोटि कलप विश्राम ॥ टेक ॥
गुर कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हिरदै कँवल बिगासा।
भागा भ्रम दसौं दिस सूझ्या, परम जोति प्रकासा॥
मृतक उठ्या धनक कर लीयैं, काल अहेड़ी भाषा।
उदय सूर निस किया पयाँनाँ, सोवत थैं जब जागा॥
अविगत अकल अनूपम देख्या, कहतां कह्या न जाई।
सैन करै मन ही मन रहसै, गूंगै जाँनि मिठाई॥
पहुप बिनां एक तरवर फलिया, बिन कर तूर बजाया।
नारी बिना नीर घट भरिया, सहज रूप सो पाया।
देखत काँच भया तन कंचन, बिना बानी मन माँनाँ।
उड़या बिहंगम खोज न पाया, ज्यूँ जल जलहि समाँनाँ॥
पूज्या देव बहुरि नहीं पूजौं, न्हाये उदिक न नाँउँ।
भागा भ्रम ये कही कहतां, आये बहुरि न आँउँ॥
आपै मैं तब आया निरष्या, अपन पैं आपा सूझ्या।
आपै कहत सुनत पुनि अपनाँ, अपन पैं आपा बूझ्या॥
अपनैं परचे लागी तारी, अपन पै आप समाँनाँ।
कहै कबीर जे आप बिचारै, मिटि गया आवन जाँनाँ॥ ६॥

नरहरि सहजैं हीं जिनि जाँना।
गत फल फूल तत तर पलव, अंकूर बीज नसाँनाँ॥ टेक॥
प्रकट प्रकास ग्याँन गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि प्रजारी।
ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जोग जुग तारी।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सरपूरा॥
गगन गरजि मन सुंनि समाँनाँ, बाजे अनहद तूरा।
सुमति सरीर कबीर बिचारी, त्रिकुटी संगम स्वामी॥
पद आनंद काल थैं छूटै, सुख मैं सुरति समाँनी॥ ७॥

मन रे मन ही उलटि समाँना।
गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं नहीं तर था बेगाँनाँ॥ टेक॥
नेड़ै थैं दूरि दूर थैं नियरा, जिनि जैसा करि जाना।
औ लौ ठीका चढ़या बलीडैं, जिनि पीया तिनि माना॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुंनि सुरति लै लागी।
अमर न मरै मरै नहीं जीवे, ताहि खोजि बैरागी॥
अनभै कथा कवन सो कहिये, है कोई चतुर बिबेकी।
कहै कबीर गुर दिया पलीता, सौ झल बिरलै देखी॥ ८॥

इहि तत राम जपहु रे प्राँनी, बुझौ अकथ कहाँणी।
हरि का भाव होइ जा ऊपरि जाग्रत रैंनि बिहानी ॥ टेक ॥
डाँइन डारै, सुनहाँ डोरै, स्यंघ रहैं बन घेरै।
पंच कुटंब मिलि झुझन लागे, बाजत सबद संघेरै ॥
रोहै मृग ससा बन घेरे, पारधी बाँण न मेलै।
सायर जलै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेलै ॥
सोई पंडित सो तत ज्ञाता, जो इहि पदहि बिचारै।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहि तारै ॥ ९ ॥

अवधू ग्यान लहरि धुनि माँडी रे।
सबद अतीत अनाहद राता, इहि बिधि त्रिष्णाँ षाँडी ॥ टेक ॥
बन कै ससै समंद पर कीया मंछा बसै पहाड़ी।
सुई पीवै बाँम्हण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी।
षाड बुणैं कोली मैं बैठी, मैं खूंटा मैं गाढ़ी।
ताँणे वाणें पड़ी अनँवासी, सूत कहै बुणि गाढ़ी ॥
कहैं कबीर सुनहु रे संतौ, अगम ग्याँन पद माँही।
गुरु प्रसाद सुई कै नाँकै, हस्ती आवै जाँही ॥ १० ॥

एक अचंभा देखा रे भाई,
ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई ॥ टेक ॥
पहलैं पूत पीछे भई माँई, चेला कै गुरु लागै पाई।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई ॥
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई ॥
तलिकरि साषा ऊपरिकरि मूल बहुतभाँति जड़ लागे फूल।
कहै कबीर या पद को बूझै, ताँकू तीन्यूं त्रिभुवन सूझै ॥११॥

हरि के षारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिनि पाये।
ग्याँन अचेत फिरैं नर लोई, ता जनमि जनमि डहकाए ॥टेक॥
ढोल मंदलिया बैल रबाबी, कऊवा ताल बजावै।
पहरि चोलना गादह नाचै, भैसाँ निरति कहावै ॥
स्यंघ बैठा पान कतरै, घूंस गिलौरा लावै।
उंदरी बपुरी मंगल गावै, कछू एक आनंद सुनावै ॥
कहै कबीर सुनहुँ रे संतौ, गडरी पर्वत खावा।
चकवा बैसि अँगारे निगले, समंद आकासा धावा ॥१२॥

चरखा जिनि जरे।
कतौंगी हजरी का सूत, नणद के भइया की सौं ॥ टेक ॥
जलि जाई थलि ऊपजी, आई नगर मैं आप।
एक अचंभा देखिया, बिटिया जायौ बाप ॥

बाबल मेरा ब्याह करि, बर उत्यम ले चाहि ।
जब लगि बर पावै नहीं, तब लग तूँ हीं ब्याहि ॥
सुबधी कै घरि लुबधी आयौ, आन बहू कै भाइ ।
चूल्हे अगनि बताइकरि, फल सौ दीयौ ठठाइ ॥
सब जगही मर जाइयौ, एक बड़इया जिनि मरै ।
सब रांडनि कौ साथ चरषा को धरै ॥
कहै कबीर सो पंडित ग्याता जो या पदही बिचारै ।
पहलै परच गुर मिलै तौ पीछैं सतगुर तारे ॥१३॥

अब मोहि ले चलि नणद के बीर, अपनैं देसा ।
इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बदेसा ॥टेक॥
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानाँ ।
सातौं बिरही मेरे नीपजै, पंचूँ मोर किसानाँ ॥
कहै कबीर यह अकथ कथा है कहताँ कही न जाई ।
सहज भाइ जिहिं ऊपजै, ते रमि रहे समाई ॥५४॥

अब हम सकल कुसल करि माँनाँ,
स्वाँति भई तब गोब्यंद जाँनाँ ॥टेक॥
तन मैं होती कोटि उपाधि, भई सुख सहज समाधि ॥
जम थैं उलटि भये है राँम, दुख सुख किया विश्राँम ॥
बैरी उलटि भये हैं मीता साषत उलटि सजन भये चीता ॥
आपा जानि उलटि ले आप, तौ नहीं ब्यापै तीन्यूँ ताप ॥
अब मन उलटि सनातन हूवा, तब हम जाँनाँ जीवत मूवा ॥
कहै कबीर सुख सहज समाऊँ, आप न डरौं न और डराऊँ ॥१५॥

संतौ भाई आई ग्याँन की आँधी रे ।
भ्रम की टाटी सबै उडाँणीं; माया रहै न बाँधी ॥टेक॥
हिति चित की द्वै थूँनीं गिराँनीं, मोह बलिंडा तूटा ।
त्रिस्नाँ छाँनि परि घर ऊपरि, कुबधि का भाँडाँ फूटा ॥
जोग जुगति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाँणीं ।
कूड़कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी ।
आँधी पीछैं जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनाँ ।
कहै कबीर भाँन के प्रगटे उदित भया तम षींनाँ ॥१६॥

अब घटि प्रगट भये राँम राई, साधि सरीर कनक की नाँई ॥टेक॥
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा; सोधि सरीर भयो तन सारा ॥
उपजत उपजत बहुत उपाई, मन थिर भयो तबै तिथि पाई ॥

बाहरि षोजत जनम गँवाया, उनमनीं ध्यान घट भीतरि पाया।
बिन परचै तन काँच कबीरा, परचैं कंचन भया कबीरा ॥१७॥

हिंडोलनाँ तहाँ झूलैं आतम राँम ।
प्रेम भगति हिंडोलनाँ, सब संतनि कौ विश्राम ॥टेक॥
चंद सूर दोइ खंभवा, बंक नालि की डोरि।
झूलें पंच पियारियाँ; तहाँ झूलै जीय मोर ॥
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौं ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हँम दास ॥
सहज सुंनि कौ नेहरौ गगन मंडल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरी, जो हम झूलैं हिंडोल ॥
अरध उरध की गंगा जमुना, मूल कवल कौ घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणीं संगम बाट ॥
नाद व्यंद की नावरी, राँम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुँण गाइ ले, गुर गँमि उतरौ पार ॥१८॥

को बीनैं प्रेम लागो री, माई को बीन।
राँम रसाँइण मातेरी, माई को बीनैं ॥टेक॥
पाई पाई तूँ पुतिहाई, पाई की तुरियाँ बेचि खाई री, माई को बीनैं ॥
ऐसैं पाई पर बिथुराई, त्यूँ रस आँनि बनायौ री, माई को बीनैं।
नाचैं ताँनाँ नाचैं बाँनाँ, नाचैं कूँच पुराना री, माई को बीनैं ॥१९॥

मैं बुनि करि सिराँनाँ हो राम,
नालि करम नहीं, ऊबरे ॥टेक॥
दखिन कूट जब सुनहाँ झूका, तब हम सुगन बिचारा।
लरके परके सब जागत हैं हम घरि चोर पसारा हो राँम ॥
ताँनाँ लीन्हाँ बाँनाँ लीन्हाँ, लीन्हे गोड के पऊवा।
इत उत चितवत कठवन लीन्हाँ, माँस चलवना डऊवा हो राम।
एक पग दोई पग त्रेपग, सँध सधि मिलाई।
करि परपंच मोट बँधि आये, किलिकिलि सबै मिटाई हो राँम ॥
ताँनाँ तनि करि बाँनाँ बुनि करि, छाक परी मोहि ध्याँन।
कहै कबीर मैं बुनि सिराँना जानत है भगवाँनाँ हो राम ॥

तननाँ बुनना तज्या कबीर,
राँम नाँम लिखि लिया शरीर ॥टेक॥
जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै राँम सनेह ॥

ठाढ़ी रोवै कबीर की माइ, ए लरिका क्यूं जीवैं खुदाइ।
कहैं कबीर सुनहु री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राई ॥ २१ ॥

जुगिया न्याइ मरै मरि जाइ।
घर जाजरौ बलीडौ टेढ़ौ, औलोती डर राइ ॥ टेक ॥
मगरी तजौ प्रीति पाषें सूँ डाँडी देहु लगाइ।
छींको छोडि उपरहि डौ बाँधा, ज्यूँ जुगि जुगि रहौ समाइ।
बैसि परहडी द्वार मुँदावौं, ल्यावौं पूत घर घेरो।
जेठी धीय सासरे पठवौ ज्यूँ बहुरि न आवैं फेरी ॥
लहुरी धीइ सबै कुश धोयौ, तब ढिग बैठन पाई।
कहैं कबीर भाग बपरी कौ, किलिकिलि सबै चुकाई ॥ २२ ॥

मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ बसत मति खोवैं, चोर मुसै घर जाई ॥टेक॥
षट चक्र की कनक कोठड़ी बस्त भाव है सोई।
ताला कूँचो कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई ॥
पच पहरवा सोइ गये हैं, बसतैं जागण लागी।
करत बिचार मनहीं मन उपजी नाँ कहीं गया न आया ॥
कहै कबीर संसा सब छूटा राँम रतन धन पाया ॥ २३ ॥

चलन चलन सब को कहत है
नाँ जाँनौं बैकुंठ कहाँ है ॥ टेक ॥
जोजन एक प्रमिति नहिं जानैं, बातन ही बैकुंठ बषानैं।
जब लग हैं बैकुंठ की आसा, तब लग नहीं हरि चरन निवासा ॥
कहें सुनें कैसें पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहिं जइये।
कहै कबीर बहु कहिये काहि, साध संगति बैकुंठहि आहि ॥ २४ ॥

अपने बिचारि असवारी कीजै,
सहज कै पाइड़े पाव जब दीजे ॥ टेक ॥
दे मुहरा लगाँम पहिराँऊँ, सिकली जीन गगन दौराऊँ।
चलि बैकुंठ तोहि लै तारौं, थकहि त प्रेम ताजनैं मारूँ ॥
जन कबीर ऐसा असवारा, बेद कतेब दहूँ थैं न्यारा ॥ २५ ॥

अपनैं मैं रंगि आपनपो जानूँ,
जिहि रंगि जाँनि ताही कूँ माँनूँ ॥ टेक ॥
अभि अंतरि मन रंग समानां, लोग कहैं कबीर बौरानां।
रंग न चीन्है मूरखि लोई, जिह रँगि रंग रह्या सब कोई ॥
जे रँग कबहुँ न आवै न जाई, कहै कबीर तिहि रह्या समाई ॥ २६ ॥

झगरा एक नवेरो राँम
जे तुम्ह अपने जन सूँ काँम ।। टेक ।।

ब्रह्म बड़ा कि जिनि रू उपाया, बेद बड़ा कि जहाँ थैं आया ।।
यह मन बड़ा कि जहाँ मन मानैं, राम बड़ा कि राँमहि जानै।
कहै कबीर हूँ खरा उदास, तीरथ बड़े कि हरि के दास ।। २७ ।।

दास राँमहि जानि है रे
और न जानैं कोइ ।। टेक ।।

काजल देइ सबै कोई, चषि चाहन माँहि बिनांन ।
जिन लोइनि मन मोहिया, ते लोइन परबाँन ।।
बहुत भगति भौसागरा नानाँ विधि नाँनाँ भाव ।
जिहि हिरदै श्रीहरि भेटिया, सो भेद कहूँ कहूँ ठाउँ ।।
तरसन सँमि का कीजिये, जौ गुन हि होत समाँन ।
सींधव नीर कबीर मिल्यौ है, फटक न मिल पखाँन ।। २८ ।।

कैसे होइगा मिलावा हरि सनाँ,
रे तू विषै बिकार न तजि मनाँ ।। टेक ।।

रे तैं जोग जुगति जान्याँ नहीं, तैं गुर का सबद मान्याँ नहीं ।।
गंदी देही देखि न फूलिये, संसार देखि न भूलिये ।।
कहै कबीर मम बहु गुंनि, हरि भगति बिनाँ दुख फुनफुनी ।। २९ ।।

कासूँ कहिये सुनि रामाँ, तेरा मरम न जानैं कोई जी ।
दास बबेकी सब भले, परि भेद न छानाँ होई जी ।। टेक ।।

ए सकल ब्रह्मंड तैं पूरिया, अरु दूजा महि थाँन जी ।
मैं सब घटि अंतरि पेषिया, जब देख्या नैंन समाँन जी ।।
राँम रसाइन रसिक है, अद्भुत गति विस्तार जी ।
भ्रम निसा जो गत करे, ताहि सूझै संसार जी ।।
सिव सनकादिक नारदा, ब्रह्म लिया निज बास जी ।
कहै कबीर पद पंकयजा, अष नेड़ा चरण निवास जी ।। ३० ।।

मैं डोरै डोरे जाँऊँगा
तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊँगा ।। टेक ।।

सूत बहुत कुछ थोरा, ताथैं लाइ ले कंथा डोरा ।
कंथा डोरा लागा, तथ जूरा मरण भौ भागा ।।
जहाँ सूत कपास न पूनी, तहाँ बसै इक मूनी ।
उस मूनीं सूँ चित लाऊँगा, तो मैं बहुरि न भौजलि आऊँगा ।।
मेरे डँड इक छाजा, तहाँ बसै इक राजा ।
तिस राजा सूँ चित लाँऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊँगा ।।

जहाँ बहु हीरा धन मोती, तहाँ तत लाइ लै जोती।
तिस जोतिहिं जोति मिलाँऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊँगा ॥
जहाँ ऊगै सूर न चंदा, तहाँ देख्या एक अनंदा।
उस आनँद सूँ लौ लाँऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊँगा ॥
मूल बंध इक पावा, तहाँ सिध गणेश्वर रावाँ।
तिस मूलहिं मूल मिलाँऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊँगा ॥
कबीरा तालिब तेरा, तहाँ गोपत हरी गुर मोरा।
तहाँ हेत हरि चित लाऊँगा, तौ मैं बहुरि न भौजलि आँऊँगा ॥३१॥

संतौ धागा टूटा गगन बिनसि गया, सबद जु कहाँ समाई।
ए संसा मोहि निस दिन व्यापै, कोइ न कहै समझाई ॥टेक॥
नहीं ब्रह्मंड प्यंड पुंनि नाँही, पंचतत भी नाहीं।
इला प्यंगुला सुखमन नाँही, ए गुंण कहाँ समाँहीं ॥
नहीं ग्रिह द्वार कछू नहीं, तहियाँ, रचन हार पुनि नाँहीं।
जोवनहार अतीत सदा संगि, ये गुंण तहाँ समाँहीं ॥
तूटै बंधै बँधै पुनि तूटै, तब तब होइ बिनासा।
तब को ठाकुर अब को सेवग, को काकै बिसवासा ॥
कहै कबीर यहु गगन न बिनसै, जौ धागा उनमाँनाँ।
सीखें सुने पढ़ें का होई, जौ नहीं पदहि समाँना ॥३२॥

ता मन कौं खोजहु रे भाई,
तन छूटे मन कहाँ समाई ॥ टेक ॥
सनक सनंदन जै देवनाँमी भगति करी मन उनहुँ न जानीं।
सिव विरंचि नारद मुनि ग्यानीं, मन की गति उनहूँ नहीं जानीं ॥
ध्रू प्रहिलाद बभीषन सेषा, तन भीतर मन उनहुँ न देषा।
ता मन का कोइ जानै भेव, रंचक लीन भया सुषदेव ॥
गोरष भरथरी गोपीचंदा, ता मन सौं मिलि करै अनंदा।
अकल निरंजन सकल सरीरा, ता मन सौं मिलि रहा कबीरा ॥३३॥

भाई रे बिरले दोसत कबीरा के, यहु तत बार बार कासों कहिए।
भानण घड़ण सँवारण संवारण संम्रथ, ज्यूँ राषै त्यूँ रहिए ॥टेक॥
आलम दुनों सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानाँ।
छह दरसन छयानबै पाषंड, आकुल किनहुँ न जानाँ ॥
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानाँ।
कागद लिखि लिखि जगत भुलानाँ, मनहीं मन न समानाँ ॥

कहै कबीर जोगी अरु जंगम, ए सब झूठी आसा।
गुर प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूँ, निहचैं भगति निवासा ॥३४॥

कितेक सिव संकर गए ऊठि,
राँम सँमाधि अजहूँ नहिं छूटि॥ टेक॥

प्रलै काल कहुँ कितेक भाष, गये इद्र से अगणित लाष।
ब्रह्मा खोजि परचो गहि नाल, कहै कबीर वै राँम निराल॥ ३५ ॥

अच्यंत च्यंत ए माधौ, सो सब माँहि समाँनाँ।
ताहि छाड़ि जे आँन भजत हैं, ते सब भ्रंमि भुलाँनाँ॥ टेक॥
ईस कहै मैं ध्यान न जानूँ, दुरलभ निज पद मोहीं।
रंचक करुणाँ कारणि केसो, नाम धरण कौं तोहीं॥
कहौ धौं सबद कहाँ थैं आवै, अरु फिर कहाँ समाई।
सबद अतीत का मरम न जानैं, भ्रंमि भूली दुनियाई॥
प्यंड मुकति कहाँ ले कीजै जौ पद मुकति न होई।
प्यंडै मुकति कहत हैं मुनि जन, सबद अतीत था सोई॥
प्रगट गुपत गुपत पुनि प्रगट, सो कत रहै लुकाई।
कबीर परमानंद मनाये, अकथ कथ्यौ नहीं जाई॥ ३६ ॥

सो कछू विचारहु पंडित लोई,
जाकै रूप न रेष बरण नहीं कोई॥ टेक॥

उपजै प्यंड प्रान कहाँ थैं आवै, मूवा जीव जाइ कहाँ समावै।
इंद्री कहाँ करिहि विश्रामा, सो कत गया जो कहता रामाँ॥
पंचतत तहाँ सबद न स्वादं, अलख निरंजन विद्या न बादं।
कहै कबीर मन मनहि समानाँ, तब आगम निगम झूठ करि जानाँ॥३७॥

जौं पैं बीज रूप भगवाना,
तौ पंडित का कथिसि गियाना॥ टेक॥

नहीं तन नहीं मन नहीं अहंकारा, नहीं सत रज तम तीनि प्रकारा॥
विष अमृत फल फले अनेक, बेद रु बोधक हैं तरु एक॥
कहै कबीर इहै मन माना, कहिधूं छूट कवन उरझाना॥ ३८ ॥

पांडें कौन कुमति तोहि लागी,
तूँ राम न जपहि अभागी॥ टेक॥

बेद पुरान पढ़त अस पाँडे, खर चंदन जैसैं भारा।
राँम नाँम तत समझत नाँही, अंति पड़ै मुखि छारा॥
बेद पढ्याँ का यहु फल पांडे, सब घटि देखैं राँमाँ।
जन्म मरन थैं तौ तूँ छूटै, सुफल हूँहि सब काँमाँ॥

जीव बधत अरु धरम कहत हौ, अधरम कहाँ है भाई।
आपन तौ मुनिजन ह्वै बैठे, का सनि कहौं कसाई॥
नारद कहै व्यास यौं भाषैं, सुखदेव पूछौ जाई।
कहै कवीर कुमति तब छूटै, जे रहौं राँम ल्यौ लाई॥३९॥

पंडित बाद बदंते झूठा।
राँम कह्याँ दुनियाँ गति पावे, षाँड कह्याँ मुख मीठा॥ टेक॥
पावक कह्याँ पाव जे दाझैं, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्याँ भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई॥
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जँगल में, बहुरि न सुरतैं आनै॥
साची प्रीति त्रिषै माया सूँ, हरि भगतनि सूँ हासी।
कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बाँध्यौ जमपुरि जासी॥४०॥

जौ पैं करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तीनि डाँड़ि किन सारै॥ टेक॥
उतपति ब्यंद कहाँ थैं आया, जो धरी अरु लागी माया।
नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड ताही का सींचा॥
जे तूँ बाँभन बभनी जाया, तो आँन बाँट ह्वै काहे न आया।
जै तूँ तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनाँ क्यूँ न कराया॥
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि राम न होई॥ ३॥

कथता बकता सुरता सोई,
आप बिचारै सो ग्यानी होई॥ टेक॥
जैसे अगिन पवन का मेला, चंचल बुधि का खेला।
नव दरवाजे दसूँ दुवार, बूझि रे ग्यानी ग्याँन बिचार॥

(४०) ख प्रति में इसके आगे यह पद है—
काहे कों कीजै पाँडे छोति बिचारा।
छोतिहीं तैं उपना सब संसारा॥ टेक॥
हमारे कैसे लोहू तुम्हारैं कैसे दूध।
तुम्ह कैसे बाँम्हण पाँडे हम कैसे सूद॥
छोति छाति करता तुम्हहीं जाए।
तौ ग्रभवास काहें कौं आए॥
जनमत छोत मरत ही छोति।
कहै कबीर हरि की बिमल जोति॥४२॥

देही माटी बोलै पवनाँ, बूझि रे ग्यानी मूवा स कौनाँ ।
मुई सुरति बाद अहंकार, वह न मुवा जो बोलणहार ।
जिस कारनि तटि तीरथि जाँही, रतन पदारथ घटहीं माहीं ।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बषाँणै, भीतरि हूती बसत न जाँणै ।।
हूँ न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जो रह्या समाइ ।
कहैं कबीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया ।।४२।।

हम न मरैं मरिहैं संसारा,
हँम कूँ मिल्या जियावनहारा ।। टेक ।।
अब न मरौं मरनैं मन माँना, ते मूए जिनि राँम न जाँना ।
साकत मरै संत जन जीवैं, भरि भरि राम रसाँइन पीवैं ।।
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरैं हँम काहे कूँ मरिहैं ।
कहैं कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ।। ४३ ।।

कौंन मरै कौन जनमै आई,
सरग नरक कौने गति पाई ।। टेक ।।
पंचतत अविगत थैं उतपनाँ, एकै किया निवासा ।
बिछुरे तत फिरि सहजि समाँनाँ, रेख रही नहीं आसा ।।
जल मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, बाहरि भीतरि पानी ।
फूटा कुंभ जल जलहि समानाँ, यह तत कथौ गियानी ।।
आदैं गगनाँ अंतैं गगनाँ मधे गगनाँ माई ।
कहै कबीर करम किस लागैं, झूठी संक उपाई ।। ४४ ।।

कौंन मरै कहु पंडित जनाँ,
सो समझाइ कहौ हम सनाँ ।।टेक।।
माटी माटी रही समाइ, पवनैं पवन लिया संग लाइ ।
कहै कबीर सुंनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनीं ।।४५।।

जे को मरै मरन है मीठा,
गुरु प्रसादि जिनहीं मरि दीठा ।। टेक ।।
मुवा करता मुई ज करनी, मुई नारि सुरति बहु धरनी ।
मूवा आपा मूवा माँन, परपंच लेइ मूवा अभिमाँन ।।
राँम रमें रमि जे जन मूवा, कहै कबीर अविनासी हूआ ।।४६।।

जस तूं तस तोहि कोई न जान,
लोग कहैं सब आनहि आँन ।। टेक ।।
चारि बेद चहूँ मत का बिचार, इहि भ्रँमि भूलि पर्‌यौ संसार ।
सुरित सुमृति दोइ कौ बिसवास, बाझि पर्‌यौ सब आसा पास ।।

ब्रह्मादिक सनकादिक सुर नर, मैं बपुरी धूंका मैं का कर।
जिहि तुम्ह तारौ सोई पै तिरई, कहै कबीर नांतर बांध्यौ मरई ॥४७॥

लोका तुम्ह ज कहत हौ नंद को नंदन नंद कहौ धुं काकौ रे।
धरनि अकास दोऊ नहीं होते, तब यहु नंद कहाँ थौ रे ॥टेक॥
जाँमैं मरै न संकुटि आवै, नाँव निरंजन जाकौ रे।
अबिनासी उपजै नहिं बिनसैं; संत सुजस कहैं ताकौ रे ॥
लष चौरासी जीव जंत मैं भ्रमत नंद थाकौ रे।
दास कबीर कौ ठाकुर ऐसो, भगति करै हरि ताकौ रे ॥४८॥

निरगुण राँम निरगुण राँम जपहु रे भाई,
अबिगति की गति लखी न जाई ॥ टेक ॥
चारि बेद जाकै सुमृत पुराँनाँ नौ ब्याकरनाँ मरम न जाँनाँ ॥
चारि बेद जाकै गरड समाँनाँ, चरन कवल कँवला नहीं जाँनाँ ॥
कहै कबीर जाकै भेदै नाँहीं, निज जन बैठे हरि की छाहीं ॥४९॥

मैं सबनि मैं औरनि मैं हूं सब।
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो,
कोई कहौ कबीर कहौ राँम राई हो ॥ टेक ॥
नाँ हम वार बूढ़ नाही हम ना हमरै चिलकाई हो।
पठए न जाऊँ अरवा नहीं आऊँ सहजि रहूँ हरिआई हो ॥
वोढन हमरे एक पछेवरा, लोक बोलै इकताई हो ॥
जुलहे तनि बुनि पाँनि न पावल, फार बुनि दस ठाँई हो ॥
त्रिगुंण रहित फल रमि हम राखल, तब हमारौ नाँउ राँम राई हो ॥
जग मैं देखौं जग न देखै मोहि, इहि कबीर कछु पाई हो ॥५०॥

लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥ टेक ॥
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थै सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ॥
ता अला की गति नहीं जांनी गुरि गुड़ दीया मीठा ॥
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ॥ ५१ ॥

राँम मोहीं तारि काहाँ लै जैहो।
सो बैकुंठ कहौ धूँ कैसा, करि पसाव मोहि दैहो ॥ टेक ॥
जे मेरे जीव दोइ जाँनत हौ, तौ मोहि मुकति बताओ।
एकमेक रमि रह्या सबनि मैं, तो काहे भरमावौ ॥

(५०) ख—ना हम वार बूढ़ पुनि नाँही।

तारण तिरण जबै लग कहिये, तब लग तत न जांनां।
एक रांम देख्या सबहिन मैं कहै कबीर मन मांनां ॥ ५२ ॥

सोहं हंसा एक समान, काया के गुंण आंनही आन ॥ टेक ॥
माटी एक सकल संसारा, बहुबिधि भांडे घड़ै कुंभारा।
पंच बरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतिआइ ॥
कहै कबीर संसा करि दूरि त्रिभवननाथ रह्या भरपूर ॥ ५३ ॥

प्यारे रांम मनहीं मनां।
कासूं कहूं कहन कौं नाहीं, दूसरा और जनां ॥ टेक ॥
ज्यूं दरपन प्रतिब्यंब देखिये आप दवासूं सोई।
संसौ मिट्यौ एक कौ एकै, महा प्रलै जब होई ॥
जौ रिझऊं तौ महा कठिन है, बिन रिझयें थैं सब खोटी।
कहै कबीर तरक दोइ साधै, ताकी मति है मोटी ॥ ५४ ॥

हंम तौ एक एक करि जांनां।
दोइ कहै तिनही कौं दोजग, जिन नांहिन पहिचांनां ॥ टेक ॥
एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा ॥
एक ही खाक घड़े सब भांड़े, एक ही सिरजनहारा ॥
जैसैं बाढ़ी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई ॥
सब घटि अंतरि तूंहीं व्यापक, धरै सरूपै सोई।
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहै कूं गरबांनां ॥
निरभै भया कछू नांहिं ब्यापै, कहै कबीर दिवांनां ॥ ५५ ॥

अरे भाई दोइ कहा सो मोहि बतायौ,
बिचिही भरम का भेद लगावौ ॥ टेक ॥
जोनि उपाइ रची द्वै धरनीं दीन एक बीच भई करनी।
रांम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई ॥
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिंदू ॥ ५६ ॥

ऐसा भेद बिगूचन भारी।
बेद कतेब दीन अरु दुनियां, कौन पुरिष कौन नारी ॥ टेक ॥
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चांम एक चांम एक गूदा।
एक जोति थैं सब उतपनां, कौन बांम्हन कौन सूदा ॥
माटी का प्यंड सहजि उतपनां, नाद रु ब्यंद समांनां।
बिनसि गयां थैं का नांव धरिहौ, पढ़ि गुनि हरि भ्रंन जांना ॥
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक रांम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई ॥ ५७ ॥

हँमारै राँम रहीम करीमा केसो, अलाह राँम सति सोई ।
बिसमिल मेटि बिसंभर एकै, और न दूजा कोई ॥टेक॥
इनकै काजी मुलाँ पीर पैकंबर, रोजा. पछिम निवाजा ।
इनकै पूरब दिसा देव दिज पूजा, ग्यारसि गंग दिवाजा ॥
तुरक मसीति देहुरै हिंदू, दहूँठा राँम खुदाई ।
जहाँ मसीति देहुरा नाँहीं, तहाँ काकी ठकुराई ॥
हिंदू तुरक दोऊ रह तूटी, फूटी अरु कनराई ।
अरध उरध दसहूँ दिस जित तित, पूरि रह्या राम राई ॥
कहै कबीरा दास फकीरा, अपनी रहि चलि भाई ।
हिंदू तुरक का करता एकै, ता गति लखी न जाई ॥५८॥

काजी कौन कतेब बषांनै ।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जानैं ॥टेक॥
सकति से नेह पकरि करि सुंनति, बहु नबदूं रे भाई ।
जौर पुदाइ तुरक मोहि करता, तौ आपै कटि किन जाई ॥
हौं तौ तुरक किया करि सुंनति, औरति सौं का कहिये ।
अरध सरीरी नारि न छूटै, आधा हिंदू रहिये ॥
छाँड़ि कतेब राँम कहि काजी, खून करत हौ भारी ।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहै झष मारी ॥५९॥

मुलाँ कहाँ पुकारै दूरि,
राँम रहीम रह्या भरपूरि ॥टेक॥
यहु तौ अलह गूँगा नाँही, देखै खलक दुनीं दिल माँही ॥
हरि गुँन गाइ बग मैं दीन्हाँ, काम क्रोध दोऊ बिसमल कीन्हाँ ।
कहै कबीर यह मुलना झूठा, राम रहीम सबनि मैं दीठा ॥६०॥

पढ़ि ले काजी बंग निवाजा,
एक मसीति दसौं दरवाजा ॥टेक॥
मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुर येही ॥
उहाँ न दोजग भिस्त मुकाँमाँ, इहाँ ही राँम इहाँ रहिमाँनाँ ॥
बिसमल ताँमस भरम कै दूरी, पंचूँ भयि ज्यूँ होइ सबूरी ॥
कहै कबीर मैं भया दिवाँनाँ, मनवाँ मुसि मुसि सहजि समानाँ ॥६१॥

(६१) ख—मन करि मका कबिला कर देही ।
राजी समझि राह गति येही ।

मुलां करि ल्यौ न्याव खुदाई,

इहि बिधि जीव का भरम न जाई ।।टेक।।

सरजी आँनैं देह बिनासैं, माटी बिसमल कीता ।

जोति सरूपी हाथि न आया, कहौ हलाल क्या कीता ।।

वेद कतेब कहौ क्यूँ झूठा, झूठा जोनि बिचारै ।

सब घटि एक एक करि जाँनैं, भौं दूजा करि मारैं ।।

कुकड़ी मारै बकरी मारैं, हक हक हक करि बोलैं ।

सबै जीव साँई के प्यारे, उबरहुगे किस बोलैं ।।

दिल नहीं पाक पाक नही चीन्हाँ, उसदा षोजन जाँनाँ ।

कहै कबीर भिसति छिटकाई, दोजग ही मन माँनाँ ।।६२।।

या करीम बलि हिकमति तेरी ।

खाक एक सूरति बहु तेरी ।।टेक।।

अर्ध गगन में नीर जमाया, बहुत भाँति करि नूरनि पाया ।।

अवलि आदम पीर मुलाँनाँ, तेरी सिफति करि भये दिवाँनाँ ।।

कहै कबीर यहु हेत बिचारा, या रब या रब यार हमारा ।।६३।।

काहे री नलनी तूँ कुम्हिलाँनीं

तेरे ही नालि सरोवर पाँनी ।।टेक।।

जल मैं उतपति जल में बास, जल में नलनी तोर निवास ।।

ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि ।।

कहैं कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हँमरे ।।६४।।

इब तूँ हसि प्रभु में कुछ नाँहीं,

पंडित पढ़ि अभिमाँन नसाँहीं ।।टेक।।

मैं मैं मैं जब लग मैं कीन्हा, तब लग मैं करता नही चीन्हाँ ।

कहै कबीर सुनहु नरनाहा, नाँ हम जीवत न मूँवाले माहाँ ।।६५।।

अब का डरौं डर डरहि समाँनाँ

जब थैं मोर तोर पहिचाँनाँ ।। टेक ।।

जब लग मोर तोर करि लीन्हां, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हा ।।

अगम निगम एक करि जाँनाँ, ते मनवाँ मन माँहि समाना ।।

जब लग ऊँच नीच करि जानाँ, ते पसुवा भूले भ्रंम नाँनाँ ।

कहि कबीर मैं मेरी खोई, तबहि राँम अवर नहीं कोई ।।६६।।

(३२) ख—उसका खोज न जाँनाँ ।

बोलनाँ का कहिये रे भाई

बोलत बोलत तत नसाई ॥ टेक ॥

बोलत बोलत बढ़ै बिकारा, बिन बोल्याँ क्यूँ होइ बिचारा ॥
संत मिलै कछु कहिये कहिये, मिलै असंत मुष्टि करि रहिये ॥
ग्याँनी सूँ बोल्या हितकारी मूरिख सूँ बोल्याँ झष मारी ॥
कहै कबीर आधा घट डोलै, भर्या होइ तौ मुषाँ न बोलै ॥६७॥

बागड़ देस लूचन का घर है,

तहाँ जिनि जाइ दाझन का डर है ॥ टेक ॥

सब जग देखौ कोई न धीरा, परत धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहाँ तरवर न तहाँ पाँणी, न तहाँ सतगुरु साधू बाँणी ॥
न तहाँ कोकिला न तहाँ सूवा, ऊँचै चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा ॥
देश मालवा गहर गंभीर डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहैं कबीर घरहीं मन मानाँ, गूँगै का गुड़ गूँगै जानाँ ॥६८॥

अवधू जोगी जग थैं न्यारा ।
मुद्रा निरति सुरति करि सींगी, नाद न षंडै धारा ॥ टेक ॥
बसै गगन मैं दुनीं न देखै, चेतनि चौकी बैठा ।
चढ़ि अकास आसण नहीं छाड़ै, पीवै महा रस मीठा ॥
परगट कंथाँ माहैं जोगी दिल मैं दरपन जोवै ।
सहँस इकीस छ सै धागा, निहचल नाकै पोवै ॥
ब्रह्म अगनि मैं काया जारै; त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेश्वर, सहज सुंनि ल्यौ लागै ॥६९॥

अवधू गगन मंडल घर कीजै ।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै ॥ टेक ॥
मूल बाँधि सर गगन समाना, सुखमन यों तन लागी ।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहाँ जोगणीं जागी ॥
मनवाँ जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा ।
कहै कबीर जिय संसा नाँहीं, सबद अनाहद बागा ॥७०॥

कोई पीवै रे रस राम नाम का, जो पीवै सो जोगी रे ।
संतौ सेवा करौ राम की, और न दूजा भोगी रे ॥ टेक ॥
यहु रस तौ सब फीका भया, ब्रह्म अगनि परजारी रे ।
ईश्वर गौरी पीवन लागे, राँम तनीं मतिवारी रे ॥
चंद सूर दोइ भाठी कीन्हीं सुषमनि चिगवा लागी रे ।
अंमृत कूँ पी साँचा पुरया, मेरी त्रिष्णाँ भागी रे ॥

यहु रस पीवै गूंगा गहिला, ताकी कोई न बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महँगा, कोई पीवेगा पीवणहार रे ॥७१॥

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ्या मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा ॥ टेक ॥
गुड़ करि ग्यान ध्यांन कर महुवा भव भाठी करि भारा।
सुषमन नारी सहजि समानी, पीयै पीवनहारा ॥
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी, चुया महा रस भारी।
काम क्रोध दोइ किया पलीता, छुटि गई संसारी ॥
सुंनि मंडल मैं मँदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुर प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनाँ काछै ॥
पूरा मिल्या तबैं सुष उपज्यौ, तन की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी ॥७२॥

छाकि परचो आतम मतिवारा,
पीवत राँम रस करत बिचारा ॥ टेक ॥
बहुत मोलि महँगे गुड़ पावा, लै कसाब रस राँम चुवावा ॥
तन पाटन मैं कीन्ह पसारा, माँगि माँगि रस पीवै बिचारा।
कहै कबीर फाबी मतिवारी, पीवत राम रस लगी खुमारी ॥७३॥

बोलौ भाई राम की दुहाई।
इहि रसि सिव सनकादिक माते, पीवत अजहूँ न अघाई ॥ टेक ॥
इला प्यंगुला भाठी कीन्हीं ब्रह्म अगनि परजारी।
ससि हर सूर द्वार दस मूंदे, लागी जोग जुग तारी ॥
मन मतिवाला पीवै राँम रस, दूजा कछू न सुहाई।
उलटी गंग नीर बहि आया, अमृत धार चुवाई ॥
पंच जने सो सँग करि लीन्हे, चलत खुमारी लागी।
प्रेम पियालै पीवन लागे, सोवत नागिनी जागी ॥
सहज सुंनि मैं जिनि रस चाष्या; सतगुर थैं सुधि पाई।
दास कबीर इही रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई ॥७४॥

(७१) ख—चंद सूर दोइ किया पयाना।
उनमनि चढ्या महारस पीवै,
(७२) ख—पूरा मिल्या तबै सुष उपनाँ।

रांम रस पाईया रे,
ताथैं बिसरि गये रस और ।।टेक॥
रे मन तेरा को नहीं खैंचि लेइ जिनि भार ।
बिरषि बसेरा पंषि का, ऐसा माया जाल ॥
और मरत का रोइए, जो आया थिर न रहाइ ॥
जो उपज्या सो बिनसिहै ताथैं दुख करि मरै बलाइ ॥
जहाँ उपज्या तहाँ फिरि रच्या रे, पीवत मरदन लाग ॥
कहै कबीर चित चेतिया, ताथै रांम सुमरि बैराग ॥७५॥

राँम चरन मनि भाए रे ।
अस ढरि जाहु राँय के करहा, प्रेम प्रीति ल्यौ लाये रे ॥टेक॥
आंब चढ़ी अंबली रे अंबली बबूर चढ़ी नगबेली रे ।
द्वै रथ चढ़ि गयौ राँड की करहा. मनह पाट की सैली रे ॥
कंकर कूई पतालि पनियाँ, सूनैं बूँद बिकाई रे ।
बजर परी इति मथुरा नगरी, काँन्ह पियासा जाई रे ॥
एक दहिड़िया दही जमायौ, दुसरी परि गई साई रे ।
न्यूँति जिमाऊँ अपनौ करहा, छार मुनिस की डारी रे ॥
इहि बँनि बाजै मदन भेरि रे, उहि बँनि बाजै तूरा रे ।
इहि बँनि खेले राही रुकमनि, उहि बनि कान्ह अहीरा रे ॥
आसि पासि तुरसी को बिरवा, माँहि द्वारिका गाऊँ रे ।
तहाँ मेरो ठाकुर रांम राइ है, भगत कबीरा नाऊँ रे ॥७६॥

थिर न रहै चित थिर न रहै, च्यंतामणि तुम्ह कारणि हो ।
मन मैले मैं फिर फिर आहौं, तुम सुनहुँ न दुख बिसरावन हो ॥टेक॥
प्रेम खटोलवा कसि कसि बाँध्यो, बिरह बान तिहि लागू हो ।
तिहि चढ़ि इंदऊ करत गवँसिया, अंतरि जमवा जागू हो ॥
महरू मछा मारि न जांनै, गहरे पैठा धाई हो ॥
दिन इक मगरमछ लै खैहै, तब को रखिहै बंधन भाई हो ॥
महरू नाँम हरइये जाँनै सबद न बूझै बौरा हो ।
चारैं लाइ सकल जग खायो, तऊ न भेटि निसहुरा हो ॥
जौ महराज चाहौ महरईये, तौ नाथौ ए मन बौरा हो ।
तारी लाइकैं सिष्टि बिचारौ, तब गहि भेटि निसहुरा हो ॥
टिकुटी भइ काँन्ह के कारणि, भ्रमि भ्रमि तीरथ कीन्हाँ हो ।
सो पद देहु मोरि मदन मनोहर, जिहि पदि हरि मैं चीन्हाँ हो ॥
दास कबीर कीन्ह अस गहरा, बूझै कोई महरा हो ।
यह संसार जात मैं देखौं, ठाढ़ौ रहौ कि निहुरा हो ॥७७

बीनती एक रांम सुनि थोरी,
अब न बचाइ राखि पति मोरी ॥ टेक ॥
जैसैं मंदला तुमहि बजावा, तैसैं नाचत मैं दुख पावा ॥
जे मसि लागी सबै छुड़ावौ, अब मोहि जनि बहु रूप कछावौ ॥
कहैं कबीर मेरी नाच उठावौ, तुम्हारे चरन कवल दिखलावौ ॥७८॥
मन थिर रहै न घर ह्वै मेरा,
इन मन घर जारे बहुतेरा ॥ टेक ॥
घर तजि बन बाहरि कियौ बास, घर बन देखौं दोऊ निरास ॥
जहाँ जाँऊँ तहाँ सोग संताप, जुरा मरण कौ अधिक बियाप ॥
कहै कबीर चरन तोहि बंदा, घर मैं घर दे परमानंदा ॥७६॥
कैसे नगरि करौं कुटवारी,
चंचल पुरिष विचषन नारी ॥ टेक ॥
बैल बियाइ गाइ भई बांझ, बछरा दूहै तीन्यूँ साँझ ॥
मकड़ी धरि माषी छछिहारी, मास पसारि चील्ह रखवारी ॥
मूसा खेवट नाव बिलइया, मींडक सोवै साप पहरइया ॥
निति उठि स्याल स्यंघ सूँ झूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै ॥८०॥
माई रे चूंन बिलूंटा खाई,
वाघनि संगि भई सबहिन कै, खसम न भेद लहाई ॥टेक॥
सब घर फोरि बिलूंटा खायौ, कोई न जानैं भेव ।
खसम निपूतौ आँगणि सूतौ, राँड न देई लेव ॥
पाड़ोसनि पनि भई बिराँनी, माँहि हुई घर घालै ।
पंच सखी मिली मंगल गांवैं, यह दुख याकौं सालै ॥
द्वै द्वै दीपक घरि घरि जोया, मंदिर सदा अँधारा ।
घर घेहर सब आप सवारथ, बाहरि किया पसारा ॥
होत उजाड़ सबै कोई जानैं, सब काहू मनि भावै ॥
कहै कबीर मिलै जौ सतगुरु, तौ यहु चून छुड़ावै ॥८१॥
बिषिया अजहू सुख आसा,
हूँण न देइ हरि के चरन निवासा ॥ टेक ॥
सुख माँगै दुख पहली आवै, तातैं सुख माँग्यौं नहीं भावै ।
जा सुख थैं सिव बिरंचि डराँनाँ, सो सुख हमहु साच करि जाना ।
सुखि छचाड्या तब सब दुख भागा, गुर के सबद मेरा मन लागा ॥

(८१) ख---खसम न भेद लषाई ॥

निस बासुरि बिषैतनाँ उपगार, बिषई नरकि न जाताँ बार ॥
कहै कबीर चंचल मति त्यागी, तब केवल राँम नाँम ल्यौ लागी ॥८२॥

तुम्ह गारड़ू मैं बिष का माता,
काहै न जिवावौ मेरे अंमृतदाता ॥ टेक ॥
संसार भवंगम डसिले काया, अरु दुखदारन ब्यापै तेरी माया ॥
सापनि एक पिटारै जागै, अह निसि रोवं ताकूँ फिरि फिरि लागैं ।
कहै कबीर को को नहीं राखे, राम रसाँइन जिनि जिनि चाखे ॥८३॥

माया तजूँ तजी नहीं जाइ,
फिर फिर माय मोहि लपटाइ ॥ टेक ॥
माया आदर माया माँन, माया नहीं तहाँ ब्रह्म गियाँन ॥
माया रस माया कर जाँन, माया कारनि तजै परान ॥
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग ॥
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि ॥
माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता ॥
माया मारि करै व्यौहार; कहै कबीर मेरे राँम अधार ॥८४॥

ग्रिह जिनि जाँनौं रूड़ौ रे ।
कंचन कलस उठाइ लै मंदिर, राम कहे बिन धूरौ रे ॥ टेक ॥
इन ग्रिह मन डहके सबहिन के, काहू कौ परचौ न पूरौ रे ॥
राजा राँणाँ राव छत्रपति, जरि भये भसम कौं कूरौ रे ॥
सबथैं नीकी संत मँडलिया, हरि भगतनि कौ भेरौ रे ॥
गोबिंद के गुन बैठे गैहैं, खैहैं टूकौ टेरौ रे ॥
ऐसौं जानि जाँपौं जगजीवन, जग सूँ तिनका तोरौं रे ॥
कहै कबीर राम भजबे कौं, एक आध कोई सूरौ रे ॥८५॥

रंजसि मीन देखी बहु पानी,
काल जाल की खबरि न जानी ॥ टेक ॥
गारै गरब्यौ औघट घाट, सो जल छाड़ि बिकानौं हाट ॥
बँध्यौ न जानैं जल उदमादि, कहै कबीर सब मोहे स्वादि ॥८६॥

काहे रे मन दह दिस धावै,
बिषिया संगि संतोष न पावै ॥टेक॥
जहाँ जहाँ कलपैं तहाँ बंधनाँ, रतन कौ थाल कियौ तैं रंधनाँ ॥
जौ पै सुख पइयत इन माँही, तौ राज छाड़ि कत बन कौं जाँहीं ॥

(८२) ख—हौंन न देई हरि के चरन निवास ॥

आनँद सहत तजौं विष नारीं, अब क्या झींषँ पतित भिषारी ॥
कहै कबीर यहु सुख दिन चारि, तजि बिषिया भजि चरन मुरारि ॥८७॥

जियरा जाहिगा मैं जाँनाँ।
जो देखा सो बहुरि न पेष्या, माटी सूँ लपटाँनाँ ॥ टेक ॥
बाकुल बसतर किया पहरिबा, का तप बनखंडि बासा ॥
कहा मुगध रे पाँहन पूजैं, काजल डारैं गाता ॥
कहै कबीर सुर मुनि उपदेसा, लोका पंथि लगाई।
सुनौं संतौं सुमिरौं भगत जन, हरि बिन जनम गवाई ॥८८॥

हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई,
हरि कै बियोग कैसैं जीऊँ मेरी माई ॥ टेक ॥
कौंन पुरिग को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी ॥
कौंन पूत को काको बाप, कौंन मरै कौंन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सौं मन माना, गई ठगौरी ठग पहिचाना ॥८९॥

साईं मेरे साजि दई एक डोली,
हस्त लोक अरु मैं तैं बोली ॥ टेक ॥
इक झंझर सम सूत खटोला, त्रिस्ना बाव चहुँ दिसि डोला ॥
पाँच कहार का भरम न जाना, एकै कह्या एक नहीं माना ॥
भूमर घाम उहार न छावा, नैंहर जात बहुत दुख पावा ॥
कहै कबीर बर बहु दुख सहिये, राम प्रीति करि संगही रहिये ॥९०॥

बिनसि जाइ कागद की गुड़िया,
जब लग पवन तबै लग उड़िया ॥टेक॥
गुड़िया कौं सबद अनाहद बोलैं, खसम लियैं कर डोरी डोलै।
पवन थक्यो गुड़िया ठहरानी, सीस धुनैं धुनि रोवै प्रांनी ॥
कहै कबीर भजि सारंगपानी, नाहीं तर ह्वैहै खैंचा तानी ॥९१॥

मन रे तन कागद का पुतला।
लागै बूँद बिनसि जाइ छिन में, गरब कर क्या इतना ॥टेक॥
माटी खोदहिं भीत उसारैं, अंध कहै घर मेरा।
आवै तलब बाँधि लै चालैं, बहुरि न करिहै फेरा ॥
खोट कपट करि यहु धन जोरयो, लै धरती मैं गाड़्यौं।
रोक्यो घटि साँस नहीं निकसै, ठौर ठौंर सब छाड़्यौं ॥
कहै कबीर नट नाटिक थाके, मदला कौंन बजावै ॥
गये पषनियाँ उझरी बाजी, को काहू कै आवै ॥९२॥

---

(९०)—कहै कबीर बहुत दुख सहिए।

झूठे तन कौं कहा रखइये,

मरिये तौ पल भरि रहण न पइये ॥ टेक ॥

षीर षांड़ घृत प्यंड सँवारा, प्रांन गयें ले बाहरि जारा ॥
चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरै काठ के संगा ॥
दास कबीर यहु कीन्ह बिचारा, इक दिन ह्वैहै हाल हमारा ॥९३॥

देखहु यह तन जरता है;

घड़ी पहर बिलँबौ रे भाई जरता है ॥टेक॥

काहें कौ एता किया पसारा, यह तन जरि बरि ह्वैहै छारा ॥
नव तन द्वादस लागी आगी, मुगध न चेतै नख सिख जागी ॥
कांम क्रोध घट भरे बिकारा, आपहि आप जरै संसारा ॥
कहै कबीर हम मृतक समांनां, राम नाम छूटै अभिमाना ॥९४॥

तन राखनहारा को नाहीं,

तुम्ह सोच विचारि देखौ मन मांही ॥टेक॥

जोर कुटंब आपनौ करि पारचौ, मुंड ठोकि ले बाहरि जारचौ ॥
दगाबाज लूटैं अरु रोवैं, जारि गाडि पुर षोजहि षोवैं ॥
कहत कबीर सुनहुँ रे लोई, हरि बिन राखनहार न कोई ॥९५॥

अब क्या सोचै आइ बनी,

सिर पर साहिब राम धनी ॥टेक॥

दिन दिन पाप बहुत मैं कीन्हा, नहीं गोव्यंद की संक मनीं ॥
लेटचो भोमि बहुत पछितानौ, लालचि लागो करत धनीं ॥
छूटी फौज आंनि गढ घेरचौ, उडि गयौ गूडर छाड़ि तनीं ॥
पकरचौ हंस जम ले चाल्यौ, मंदिर रोवै नारि घनीं ॥
कहै कबीर राम किन सुमिरत, चीन्हत नाहिंन एक चिनी ॥
जब जाइ आइ पड़ोसी घेरचौ, छाँड़ि चल्यौ तजि पुरिष पनीं ॥९६॥

सुवटा डरपत रहु मेरे भाई, तोहि डराई देत बिलाई ॥
तीनि बार रूँधै इक दिन मैं, कबहूँ कै खता खवाई ॥टेक॥
या मंजारी मुगध न मांनैं, सब दुनियाँ डहकाई ॥
राणाँ राव रंक कौं ब्यापै, करि करि प्रीति सवाई ॥
कहत कबीर सुनहु रे सुवटा, उबरै हरि सरनाई ।
लाषौं मांहि तैं लेत अचानक, काहू न देत दिखाई ॥९७॥

का माँगू कुछ थिर न रहाई,

देखत नैन चल्या जग जाई ॥टेक॥

इक लष पूत सवा लष नाती, ता रावन घरि दिया न बाती ॥

लंका सी कोट समंद सी खाई, ता रावन की खबरि न पाई ॥
आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ दरि बाँधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसै चले जुवारी ॥९८॥

राम थोरे दिन कौं का धन करना,
धंधा बहुत निहाइति मरना ॥टेक॥
कोटी धज साह हस्ती बंध राजा, क्रिपन को धन कौनें काजा ॥
धन कै गरबि राम नहीं जाना, नागा ह्वै जंम पै गुदरानाँ ॥
कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कछु संगि न जाई ॥९९॥

काहू कूँ माया दुख करि जोरी
हाथि चूँन गज पाँच पछेवरी ॥टेक॥
नाँ को बंध न भाई साँथी, बाँधे रहे तुरंगम हाथी ॥
मैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा ॥
कहै कबीर राम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥१००॥

माया का रस षाण न पावा,
तब लग जम बिलवा ह्वै धावा ॥टेक॥
अनेक जतन करि गाड़ि दुराई, काहू साँची काहू खाई ॥
तिल तिल करि यहु माया जोरी, चलति बेर तिणाँ ज्यूँ तोरी ॥
कहै कबीर हूँ ताका दास, माया माँहै रहै उदास ॥१०१॥

मेरी मेरी दुनियाँ करते, मोह मछर तन धरते,
आगै पीर मुकदम होते, वै भी गये यौं करते ॥टेक॥
किसकी ममा चचा पुनि किसका, किसका पंगड़ा जोई ॥
यहु संसार बजार मंड्या है, जानैगा जग कोई ॥
मैं परदेसी काहि पुकारौं, इहाँ नहीं को मेरा ॥
यहु संसार ढूँढ़ि सब देख्या, एक भरोसा तेरा ॥
खाँहि हलाल हरांम निवारैं, भिस्त तिनहु कौं होई ॥
पंच तत का मरम न जानैं दो जगि पड़िहै सोई ॥
कुटंब कारणि पाप कमावै, तू जाँणै घर मेरा ॥
ए सब मिले आप सवारथ, इहाँ नहीं को तेरा ॥
सायर उतरौ पंथ सँवारौ, बुरा न किसी का करणाँ ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, ज्वाब खसम कूँ भरणा ॥१०२॥

(१००) ख—मैंडी महल अरु सोभित छाजा ।
(१०२) ख—मेरी मेरी सब जग करता ।

रे यामै क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहिं कहत घर मेरा ।। टेक।।
चारि पहर निस भोरा, जैसे तरवर पंखि बसेरा ।।
जैसैं बनियें हाट पसारा, सब जग का सो सिरजनहारा ।।
ये ले जारे बै ले गाडे, इनि दुखिइनि दोऊ घर छाड़े ।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, हम तुम्ह बिनसि रहैगा साई ।।१०३।।
नर जाँणैं अमर मेरी काया,
घर घर बात दुपहरी छाया ।। टेक ।।
मारग छाड़ि कुमारग जोवै, आपण मरै और कूँ रोवै ।
कछू एक किया कछू एक करणा, मुगध न चेतै निहचैं मरणाँ ।।
ज्यूँ जल बूँद तैसा संसारा उपजत बिनसत लागै न बारा ।
पंच पंषुरिया एक सरीरा, कृष्ण कवल दल भवर कबीरा ।।१०४।।
मन रे अहरषि बाद न कीजै
अपनाँ सुक्रत भरि भरि लीजै ।। टेक ।।
कुँभरा एक कमाई माटी, बहु बिधि जुगति बणाई ।
एकनि मैं मुकताहल मोती, एकनि ब्याधि लगाई ।।
एकनि दीना पाट पटबंर एकनि सेज निवारा ।
एकनि दीनीं गरै गूदरी, एकनि सेज पयारा ।।
साची रही सूँम की संपति, मुगध कहै यहु मेरी ।।
अंत काल जब आइ पहूँचा, छिन में कीन्ह न बेरी ।
कहत कबीर सुनौं रे संतों, मेरी मेरी सब झूठी ।।
चड़ा चीथड़ा चूहड़ा ले गया तणी तणगती टूटी ।।१०५।।
हड़ हड़ हड़ हड़ हसती है, दीवाँनपनाँ क्या करती है ।
आडी तिरछी फिरती है, क्या च्यौंच्यौं म्यौंम्यौं करती है ।।
क्या तू रंगी क्या तूँ चंगी, क्या सुख लौंड़ै कीन्हाँ ।
मीर मुकदम सेर दिवाँनी, जंगल केर षजीना ।।
भूले भरमि कहा तुम्ह राते, क्या मदुमाते माया ।
राँम रंगि सदा मतिवाले, काया होइ निकाया ।।
कहत कबीर सुहाग सुंदरी, हरि भजि ह्वै निस्तारा ।
सारा षलक खराब किया है, माँनस कहा बिचारा । १०६।।

(१०४) ख—मुगध न देखे ।

हरि के नांइ गहर जिनि करऊँ,

राँम नाँम चित मुखाँ न धरऊँ ॥ टेक ॥

जैसे सती तजै स्यंगार, ऐसैं जियरा करम निवार ॥

राग दोषदहूँ मैं एक न भाषि, कदाचि ऊपजै चिता न राषि ।

भूले विसरय गहर जौ होई, कहै कबीर क्या करिहाँ मोही ॥१०७॥

मन रे कागद कीर पराया ।

कहा भयौं व्यौंपार तुम्हारै, कल तर बढ़ै सवाया ॥ टेक ॥

बड़ै बाँहरे साँठो दीन्हाँ कलतर काढ़्यो खोटै ।

चार लाख अरु असी ठीक दे जनम लिष्यो सब चोटै ॥

अबकी बेर न कागद कीरयौ, तौ धर्म गई सूँ तूटै ।

पूँजी बितड़ि बंदि ले दैहै, तब कहै कौन के छूटै ॥

गुरुदेव ग्याँनी भयौं लगनियाँ, सुमिरन दीन्हौं होरा ।

बड़ी निसरना नाँव राँम कौ, चढ़ि गयौं कीर कबीरा ॥१०८॥

धागा ज्यूँ टूटै त्यूँ जोरि,

तूटै तूटनि होयगी, नाँ ऊँ मिलै बहोरि ॥टेक॥

उरझ्यो सूत पाँन नही लागै, कूच फिरै सब लाई ।

छिटकै पवन तार जब छूटै, तब मेरौ कहा बसाई ।

सुरझ्याँ सूत गुढ़ी सब भागी, पवन राखि मन धीरा ॥

पंचूँ भईया भये सनमुखा, तब यहु पान करीला ॥

नाँन्हीं मैदा पीसि लई है, छाँणि लई द्वै बारा ।

कहै कबीर तेल जब मेल्या, बुनत न लागी बारा ॥१०९॥

ऐसा औंसर बहुरि न आवै,

राम मिलै पूरा जन पावै ॥ टेक ॥

जनम अनेक गया अरु आया की बेगारि न भाड़ा पाया ॥

भेष अनेक एकधूँ कैसा, नाँनाँ रूप धरै नट जैसा ।

दाँन एक मागों कवलाकंत, कबीर के दुख हरन अनंत ॥११०॥

हरि जननी मैं बालिक तेरा,

काहे न औगुण बकसहु मेरा ॥ टेक ॥

सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते ॥

कर गहि केस करे जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥

कहैं कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥१११॥

गोब्यंदे तुम्ह थैं डरपों भारी ।
सरणाई आयाँ क्यूँ गहिये, यहु कौंन बात तुम्हारी ।।टेक।।
धूप दाझतैं छाँह तकाई, मति तरवर सचपाऊँ ।
तरवर माँहै ज्वाला निकसैं, तौ क्या लेइ बुझाऊँ ।।
जे बन जलै त जल कूं धावैं, मति जल सीतल होई ।
जलही माँहि अगनि जे निकसै, और न दूजा कोई ।।
तारण तिरण तिरण तूं तारण, और न दूजा जानौं ।
कहै कबीर सरनाँई आयाँ, अपनाँ देव नहीं मानौं ।।११२।।
मैं गुलाँम मोहि बेचि गुसाँई,
तन मन धन मेरा रामजी के ताँई ।।टेक।।
आँनि कबीरा हाटि उतारा, सोई गाहक बेचनहारा ।।
बेचै राँम तो राखै कौंन, राखै राँम तो बेचै कौंन ।
कहै कबीर मैं तन मन जारचा, साहिब अपनाँ छिन न बिसारचा ।।११३
अब मोहि राँम भरोसा तेरा,
जाके राँम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूँ अनंत पुकारन जाई ।।
जा सिरि तीनि लोक को भारा, सो क्यूं न करै जन की प्रतिपारा ।।
कहै कबीर सेवों बनवारी, सींचों पेड़ पीवैं सब डारी ।।११४।।
जियरा मेरा फिरै रे उदास ।
राम बिन निकसि न जाई साँस, अजहूँ कौंन आस ।।टेक।।
जहाँ जहाँ जाऊँ राँम मिलावै न कोई, कहौ संतौ कैसे जीवन होई ।।
जरै सरीर यहु तन कोई न बुझावै, अनल दहै निस नींद न आवैं ।।
चंदन घसि घसि अंग लगाऊँ, राँम बिनाँ दारुन दुख पाऊँ ।।
सतसंगति मति मनकरि धीरा, सहज जाँनि राँमहि भजै कबीरा ।।११५।।
राँम कहौ न अजहूँ केते दिनाँ,
जब ह्वै है प्राँन प्रभु तुम्ह लीनाँ ।।टेक।।
भौ भ्रमत अनेक जन्म गया, तुम्ह दरसन गोब्यंद छिन न भया ।।
भ्रम्य भूलि परचौ भव सागर, कछू न बसाइ बसोधरा ।।
कहै कबीर दुखभजना, करौ दया दुरत निकंदनाँ ।।११६।।
हरि मेरा पीव भाई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ।।टेक।।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राँम बड़े मैं छुटक लहुरिया ।।
किया स्यंगार मिलन कै ताँई, काहे न मिलौ राजा राँम गुसाँई ।।
अब की बेर मिलन जो पाऊँ, कहै कबीर भौ जलि नहीं आऊँ ।।११७।।

राँम बाँन अन्ययाले तीर,
जाहि लागै सो जाँनैं पीर ॥टेक॥
तन मन खोजौं चोट न पाँऊँ, ओषद मूली कहाँ घसि लाँऊँ ॥
एकही रूप दीसैं सब नारी, नाँ जानौं को पियहि पियारी ॥
कहै कबीर जा मस्तिक भाग, नाँ जाँनूं काहु देइ सुहाग ॥११८॥

आस नहीं पूरिया रे,
राँम बिन को कर्म काटणहार ॥टेक॥
जद सर जल परिपूरता, चात्रिग चितह उदास ।
मेरी विषम कर्म गति ह्वै परी, तार्थैं पियास पियास ॥
सिध मिलैं सुधि नाँ मिलै, मिलैं मिलावैं सोइ ।
सूर सिध जब भेटिये, तब दुख न व्यापैं कोइ ॥
बोछैं जलि जैसैं मछिका, उदर न भरई नीर ।
त्यूँ तुम्ह कारनि केसवा, जन ताला बेली कबीर ॥११९॥

राँम बिन तन की ताप न जाई,
जल मैं अगनि उठी अधिकाई ॥टेक॥
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीनाँ, जल मैं रहौं जलहि बिन षीनाँ ॥
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनाँ तोरा, दरसन देहु भाग बड़ मोरा ॥
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला, कहै कबीर राँम रमूँ अकेला ॥१२०॥

गोव्यंदा गुँण गाईये रे
तार्थैं भाई पाईये परम निधाँन ॥टेक॥
ऊंकारे जग ऊपजै, बिकारे जग जाइ ।
अनहद बेन बजाइ करि, रह्यौं गगन मठ छाइ ॥
झूठै जग डहकाइया रे, क्या जीवण की आस ।
राँम रसाँइण जिनि पीया, तिनकौं बहुरि न लागी रे पियास ॥
अरध षिन जीवन भला, भगवत भगति सहेत ।
कोटि कलप जीवन ब्रिथा, नाँहिन हरि सूँ हेत ॥
संपति देखि न हरषिये, बिपति देखि न रोइ ।
ज्यूँ संपति त्यूँ बिपति है, करता करै सु होइ ॥
सरग लोक न बाँछिये, डरिये न नरक निवास ।
हूँणाँ थाँ सो ह्वै रह्या, मनहु न कीजै झूठी आस ॥
क्या जप क्या तप संजमाँ, क्या तीरथ ब्रत स्नान ।
जो पै जुगति न जाँनियैं, भाव भगति भगवान ॥

सुंनि मंडल मैं सोधि लै, परम जोति परकास।
तहुँवा रूप न रेख है, बिन फूलनि फूल्यौ रे आकास ॥
कहै कबीर हरि गुंण गाइ लै, सत संगति रिदा मँझारि।
जो सेवग सेवा करै, ता सँगि रमैं रे मुरारि ॥१२१॥

मन रे हरि भजि हरि भजि हरि भज भाई।
जा दिन तेरो कोई नाँही, ता दिन राँम सहाई ॥ टेक ॥
तंत न जानूँ मंत न जांनूँ, जाँनूँ सुंदर काया।
मीर मलीक छत्रपति राजा, ते भी खाये माया ॥
बेद न जाँनूँ, भेद न जाँनूँ, जानूँ एकहि राँमां।
पंडित दिसि पछिवारा कीन्हाँ, मुख कीन्हौं जित नाँमा ॥
राजा अंबरीक कै कारणि, चक्र सुदरसन जारै।
दास कबीर को ठाकुर ऐसौ, भगत की सरन उबारै ॥१२२॥

राम मणि राँम मणि राँम चितामणि,
भाग बड़े पायौ छाड़ै जिनि ॥ टेक ॥
असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ, साध संगति मिलि हरि गुंण गाइ ।
रिदा कवल में राखि लुकाइ, प्रेम गाँठि दे ज्यूँ छूटि न जाइ ॥
अठ सिधि नव निधि नाँव मँझारि, कहै कबीर भजि चरन मुरारि ॥१२३॥

निरमल निरमल राँम गुंण गावै,
सो भगता मेरे मनि भावै ॥ टेक ॥
जे जन लेहि राँम को नाँउँ, ताकी मैं बलिहारी जाँउँ ॥
जिहि घटि राँम रहे भरपूरि, ताकी मैं चरनन की धूरि ॥
जाति जुलाहा मति कौ धीर, हरषि हरषि गुंण रमैं कबीर ॥१२४॥

जा नरि राँम भगति नहीं साधी,
सो जनमत काहे न मूवौ अपराधी ॥ टेक ॥
गरभ मुचे मुचि भई किन बाँझ, सूकर रूप फिरै कलि माँझ ॥
जिहि कुलि पुत्र न ग्याँन बिचारी, वाकी बिधवा काहे न भई महतारी ।
कहै कबीर नर सुंदर सरूप, राम भगति बिन कुचल करूप ॥१२५॥

राँम बिनाँ ध्रिग ध्रिग नर नारी,
कहा तैं आइ कियौ संसारी ॥ टेक ॥
रज बिनाँ कैसौ रजपूत, ग्याँन बिना फोकट अवधूत ॥

(१२१) ख—भगवंत भजन सहेत ॥

गनिका कौ पूत कासौं कहै, गुर बिन चेला ग्यान न लहै ॥
कबीर कन्याँ करै स्यंगार, सोभ न पावै बिन भरतार ॥
कहै कबीर हूँ कहता डरूँ, सुषदेव कहै तौ मैं क्या करौं ॥१२६॥

जरि जाव ऐसा जीवनाँ, राजा राँम सूँ प्रीति न होई।
जन्म अमोलिक जात है, चेति न देखै कोई ॥ टेक ॥
मधुमाषी धन संग्रहै, मधुवा मधु ले जाई रे।
गयौ गयौ धंन मूँढ़ जनाँ, फिरि पीछैं पछिताई रे ॥
विषिया सुख कै कारनै, जाइ गनिका सूँ प्रीति लगाई रे।
अंधै आगि न सूझई, पढ़ि पढ़ि लोग बुझाई रे ॥
एक जनम कै कारणैं, कत पूजौ देव सहँसौ रे।
काहे न पूजौ राँम जी, जाकौ भगत महेसौ रे ॥
कहै कबीर चित चंचला, सुनहु मूढ़ मति मोरी।
बिषिया फिर फिरि आवई, राजा राँम न मिले बहोरी ॥१२७॥

राँम न जपहु कहा भयौ अंधा,
राँम बिना जँम मेलै फंधा ॥ टेक ॥
सुत दारा का किया पसारा, अंत की बेर भये बटपारा ॥
माया ऊपरि माया माड़ी, साथ न चले षोपरी हाँड़ी ॥
जपौ राँम ज्यूँ अंति उबारै, ठाढ़ौ बाँह कबीर पुकारै ॥१२८॥

डगमग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हौं हाथ सिंधौरा ॥ टेक ॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ ॥
सूरौ कहा मरन थैं डरपैं, सती न संचैं भाडौ ॥
लोक वेद कुल की मरजादा, इहै कलै मैं पासी।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै ह्वैहै जग मैं हाँसी ॥

(१२७) ख प्रति में इसके आगे यह पद है—

राम न जपहु कवन भ्रम लाँगै।
मरि जाहहुगे कहा कहा करहु अभागे ॥ टेक ॥
राँम राँम जपहु कहा करौ बैसे, भेड कसाई कै घरि जैसे।
राँम न जपहु कहा गरबाना, जम के घर आगं है जाना ॥
राँम न जपहु कहा मुसकौ रे, जम के मुदगरि गरिण गरिण खहुरे।
कहै कबीर चतुर के राइ, चतुर बिना को नरकहि जाइ ॥१३०॥

यह संसार सकल है मैला, रांम कहै ते सूचा ।
कहै कबीर नाव नहीं छांड़ौ, गिरत परत चढ़ि ऊंचा ।।१२९।।

का सिधि साधि करौं कुछ नाहीं,
रांम रसांइन मेरी रसनां माहीं ।।टेक।।

नहीं कुछ ग्यांन ध्यांन सिधि जोग, ताथैं उपजैं नांनां रोग ।
का बन मैं बसि भये उदास, जे मन नहीं छाड़ै आसा पास ।।
सब कृत काच हरी हित सार, कहै कबीर तजि जग ब्यौहार ।।१३०।।

जौं तैं रसनां राम न कहियो,
तौ उपजत बिनसत भरमत रहियौ ।। टेक ।।

जैसी देखि तरवर की छाया, प्रांन गये कहु काकी माया ।।
जीवत कछू न कीया प्रवानां, मूवा मरम को काकर जांना ।।
संधि काल सुख कोई न सोवै, राजा रंक दोऊ मिलि रोवै ।।
हंस सरोवर कँवल सरीरा, राम रसाइन पीवै कबीरा ।।१३१।।

का नांगें का बांधे चांम,
जौ नहीं चीन्हसि आतम रांम ।।टेक।।

नागे फिरें जोग जे होई, बन को मृग मुकुति गया कोई ।।
मूंड मुड़ायैं जौ सिधि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहूँची कोई ।।
ब्यंद राखि जे खेलै है भाई, तौ पुसरै कौंण परँम गति पाई ।।
पढ़ें गुनें उपजैं अहंकारा, अधधर डूबे वार न पारा ।।
कहै कबीर सुनहु रे भाई, रांम नांम बिन किन सिधि पाई ।।१३२।।

हरि बिन भरमि बिगूते गदा ।
जापै जाऊँ आपनपौ छुडावण, ते बीधे बहु फंधा ।।टेक।।
जोगी कहैं जोग सिधि नीकी, और न दूजी भाई ।।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, ऐ जु कहैं सिधि पाई ।।
जहाँ का उपज्या तहाँ बिलाना, हरि पद बिसर्‌या जबहीं।।
पंडित गुंनी सूर कवि दाता, ऐ जु कहैं बड़ हँमहीं ।।
वार पार की खबरि न जाँनी, फिर्‌यौ सकल बन ऐसैं ।।
यहु मन बोहि थक्के कउवा ज्यूं, रह्यौ ठग्यौ सो वैसैं।।
तजि बावैं दाँहिणैं बिकार, हरि पद दिढ करि गहिये ।।
कहै कबीर गूंगे गुड़ खाया, बूझै तौ का कहिये ।।१३३।।

चलौ बिचारी रहौ सँभारी, कहता हूँ ज पुकारी ।
रांम नांम अंतर गति नाहीं, तौ जनम जुवा ज्यूं हारी ।।टेक।।
मूंड़ मुड़ाइ फूलि का बैठे, कांननि पहरि मंजूसा ।
बाहरि देह षेह लपटानीं, भीतरि तौ घर मूसा ।।

गालिब नगरी गाँव बसाया, हाँम काँम हंकारी।
घालि रसरिया जब जंम खैंचे, तब का पति रहै तुम्हारी॥
छाँड़ि कपूर गाँठि विष बाँध्यौ, मूल हूवा ना लाहा।
मेरे राँम की अभौ पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा॥१३४॥

कौन बिचारि करत हौ पूजा,
आतम राँम अवर नहीं दूजा॥टेक॥
बिन प्रतीतैं पाती तोड़ैं, ग्याँन बिनाँ देवलि सिर फोड़ै॥
लुचरी लपसी आप संघारै, द्वारै ठाढ़ा राम पुकारै॥
पर आतम जो तत बिचारै, कहि कबीर ताकै बलिहारै॥१३५॥

कहा भयौ तिलक गरैं जपमाला,
मरम न जानैं मिलन गोपाला॥टेक॥
दिन प्रति पसू करैं हरिहाई, गरैं काठ बाकी बाँनि न जाई।
स्वांग सेत करणी मनि काली, कहा भयौ गलि माला घाली॥
बिन ही प्रेम कहा भयौ रोये, भीतरि मैल बाहरि का धोये॥
गल गल स्वाद भगति नहीं धीर, चीकन चँदवा कहै कबीर॥

ते हरि आवेहि किहि काँमाँ,
जे नहीं चीन्है आतम राँमाँ॥ टेक॥
थोरी भगति बहुत अलंकारा, ऐसे भगता मिलैं अपारा॥
भाव न चीन्हैं हरि गोपाला, जानि क अरहट कै गलि माला॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमाना, सो भगता भगवंत समानाँ॥१३७॥

कहा भयौ रचि स्वाँग बनायौ,
अंतरिजामी निकट न आयौ॥टेक॥
विषई विषै ढिढावै गावै, राँम नाँम मनि कबहूँ न भावै॥
पापी परलै जाहि अभागै, अमृत छाड़ि बिषै रसि लागे॥
कहै कबीर हरि भगति न साधी, भग मुषि लागि मूये अपराधी॥१३८॥

जौ पैं पिय के मनि नाहीं भाये,
तौ का परोसनि कैं हुलराये॥टेक॥
का चूरा पाइल झमकायें, कहा भयौ बिछुवा ठमकायें॥
का काजल स्यंदूर कै दीयैं, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयैं।
अंजन मंजन करैं ठगौरी, का पचि मरैं निगौड़ी बौरी॥
जौ पैं पतिब्रता ह्वै नारी, कैसे ही रहौ सो पियहि पियारी।
तन मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा॥१३९॥

दूभर पनियाँ भर्‌या न जाई,
अधिक त्रिषा हरि बिन न बुझाई ॥ टेक ॥
उपरि नीर ले ज तलि हारी, कैसे नीर भरे पनिहारी ॥
उधर्‌याँ कूप घाट भयौं भारी, चली निरास पंच पनिहारी ॥
गुर उपदेश भरी ले नीरा, हरषि हरषि जल पीवै कबिरा ॥१४०॥
कहौ भइया अंबर कासूँ लागा,
कोई जाँणैगा जाँननहारा ॥ टेक ॥
अंबरि दीसे केता तारा कौंन चतुर ऐसा चितरनहारा ॥
जे तुम्ह देखौ सो यहु नाँही, यहु पद अगम अगोचर माँहीं ॥
तीनि हाथ एक अरधाई, ऐसा अंबर चीन्हौ रे भाई ॥
कहै कबीर जे अंबर जाने ताही सूँ मेरा मन माँनै ॥१४१॥
तन खोजौं नर करौ बड़ाई
जुगति बिना भगति किनि पाई ॥ टेक ॥
एक कहावत मुलाँ काजी; राम बिना सब फोकटबाजी ॥
नव ग्रिह बाँभण भणता रासी, तिनहुँ न काटी जम कौ पासी ॥
कहै कबीर यहु तन काचा, सबद निरंजन राँम नाँम साचा ॥१४२॥
जाइ परौ हमरौ का करिहै,
आप करै आपै दुख भरिहै ॥ टेक ॥
ऊभड़ जाताँ बाट बतावै जौ न चलै तौ बहुत दुख पावै ॥
अंधे कूप क दिया बताई, तरकि पड़े पुनि हरि न पत्याई ॥
इंद्री स्वादि विषै रसि बहिहै, नरकि पड़े पुनि राम न कहिहै ॥
पंच सखी मिलि मतौ उपायौ, जंम कौं पासौ हंस बँधायौ ॥
कहै कबीर प्रतीति न आवै, पाषंड कपट इहै जिय भावै ॥ टेक ॥
ऐसे लोगनि सूँ का कहिये ।
जे नर भये भगति थैं न्यारे, तिनथैं सदा डराते रहिये ॥ टेक ॥
आपण देही चरवाँ पाँनी ताहि निंदै जिनि गंगा आनी ।
आपण बूड़ैं और को बोड़ै, अगनि लगाइ मंदिर मैं सोवै ॥
आपण अंध और कूँ काँनाँ, तिनकौ देखि कबीर डराँनाँ ॥१४४॥
हैं हरि जन सूँ जगत लरत है,
फुंनिगा कैसे गरड़ भषत हैं ॥ टेक ॥
अचिरज एक देखह संसारा सुनहाँ खेदै कुंजर असवारा ॥

(१४०) ख—जल बिन न बुझाई ।

ऐसां एक अचंभा देखा जंबक करै केहरि सूं लेखा ।।
कहै कबीर राँम भजि भाई, दास अधम गति कबहुँ न जाई ।।१४५।।

हैं हरिजन थैं चूक परी,
जे कछु आहि तुम्हारो हरी ।। टेक ।।

मोर तोर जब लग मैं कीन्हा, तब लग त्रास बहुत दुख दीन्हाँ ।।
सिध साधिक कहैं हम सिधि पाई, राम नाम बिन सबै गँवाई ।।
जे बैरागी आस पियासी, तिनको माया कदे न नासी ।।
कहै कबीर मैं दास तुम्हारा, माया खंडन करहु हमारा ।।१४६।।

सब दुनी सयाँनी मैं बौरा,
हँम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ।। टेक ।।

मैं नहीं बौरा राम कियो बौरा, सतगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा ।।
विद्या न पढूं बाद नहीं जानूं, हरि गुंन कथत सुनत बौरांनूं ।।
काँम क्रोध दोऊ भये विकारा, आपहि आप जरै संसारा ।।
मीठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर राँम गुंन गावै ।।१४७।।

अब मैं राम सकल सिधि पाई ।
आँन कहूँ तौ राँम दुहाई ।। टेक ।।

इहि चिति चाषि सबै रस दीठा, राँम नाँम सा और न मीठा ।
औरे रसि ह्वैहै कफ गाता, हरि रस अधिक अधिक सुखदाता ।।
दूजा वणिज नहीं कछू बाषर, राँम नाँम दोऊ तत आषर ।
कहै कबीर जे हरि रस भोगी, ताकूं मिल्या निरंजन जोगी ।। १४८।।

रे मन जाहि जहाँ तोहि भावै,
अब न कोई तेरे अंकुस लावै ।। टेक ।।

जहाँ जहाँ जाइ तहाँ तहाँ राँमा, हरि पद चीन्हि कियौ विश्रामा ।
तन रंजित तब देखियत दोई, प्रगट्यौ ग्याँन जहाँ तहाँ सोई ।।
लीन निरंतर बपु बिसराया, कहै कबीर सुख सागर पाया ।।१४९।।

बहुरि हम काहैं कूँ आवहिंगे ।
बिछुरे पंचतत्त की रचना, तब हम राँमहि पाँवहिगे ।। टेक ।।

पृथी का गुण पाँणी सोष्या, पाँनी तेज मिलावहिगे ।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगाँवहिगे ।।
जैसे बहु कंचन के भूषन, ये कहि गालि तवाँवहिगे ।
ऐसैं हम लोक वेद के बिछुरें, सुंनिहि माँहि समाँवहिगे ।।
जैसैं जलहि तरंग तरंगनी, ऐसैं हम दिखलाँवहिगे ।
कहैं कबीर स्वामी सुख सागर, हंसहि हंस मिलाँवहिगे ।।१५०।।

कबीरा संत नदी गयी बहि रे ।
ठाढ़ी माइ कराड़ै टेरै, है कोई ल्यावै गहि रे ।।टेक।।
बादल बाँनी राँम धन उनयाँ, बरिषै अंमृत धारा ।
सखी नीर गंग भरि आई, पीवै प्राँन हमारा ।।
जहाँ बहि लागे सनक सनंदन, रुद्र ध्याँन धरि बैठे ।
सूर्य प्रकास आनंद बमेक मैं घर कबीर ह्वै पैठे ।।१५१।।

अवधू कामधेन गहि बाँधी रे ।
भाँड़ा भंजन करै सबहिन का, कछू न सूझै आधी रे ।।टेक।।
जौ ब्यावै तौ दूध न देई, ग्याभण अंमृत सरवै ।
कौली घाल्याँ बीडरि चालै ज्यूँ घेरौं त्यूँ दरवै ।।
तिहि धेन थैं इंछया पूगी पाकड़ि खूँटै बाँधी रे ।
ग्वाड़ा माँहै आनँद उपनौ, खूँटे दोऊ बाँधी रे ।।
साई माइ सास पुनि साई, साई बाकी नारी ।
कहै कबीर परम पद पाया, संतौ लेहु बिचारी ।।१५२।।

(राम रामकली)

जगत गुर अनहद कींगरी बाजे,
तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागे ।।टेक।।
त्री अस्थान अंतर मृगछाला, गगन मंडल सींगीं बाजे ।
तहुँआँ एक दुकाँन रच्यो हैं, निराकार ब्रत साजे ।।
गगन ही भाठी सींगीं करि चुंगी, कनक कलस एक पावा ।
तहुँवा चवे अमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा ।।
अब तौ एक अनूपम बात भई, पवन पियाला साजा ।
तीनि भवन मैं एकै जोगी, कहौ कहाँ बसै राजा ।।
बिनरे जानि परणऊँ परसोतम, कहि कबीर रँगि राता ।
यहु दुनियाँ काँई भ्रमि भुलाँनी, मैं राँम रसाइन माता ।।१५३।।

ऐसा ग्यान बिचारि लै, लै लाइ लै ध्याँनाँ ।
सुंनि मंडल मैं घर किया, जैसे रहै सिंचाँनाँ ।।टेक।।
उलटि पवन कह्याँ राखिये, कोई भरम बिचारै ।
साँधै तीर पताल कूँ, फिरि गगनहि मारै ।।
कंसा नाद बजाव ले, धुंनि निमसि ले कंसा ।
कंसा फूटा पंडिता, धुंनि कहाँ निवासा ।।

(१५२) ख—साई घर की नारी ।

प्यंड परें जीव कहाँ रहै, कोई मरम लखावै ।
जीवत जिस घरि जाइये, ऊँचे मुषि नहीं आवै ॥
सतगुर मिलै त पाइयै, ऐसी अकथ कहाँणीं ।
कहै कबीर संसा गया, मिले सारंगपाँणीं ॥१५४॥

है कोई संत सहज सुख उपजै, जाको जब तप देउ दलाली ।
एक बूंद भरि देइ राँम रस, ज्यूँ भरि देइ कलाली ॥ टेक ॥
काया कलाली लाँहनि करिहूँ, गुरू सबद गुड़ कीन्हाँ ।
काँम क्रोध मोह मद मंछर, काटि काटि कस दीन्हाँ ॥
भवन चतुरदस भाटी पुरई, ब्रह्म अगनि परजारी ।
मूंदे मदन सहज धुनि उपजी, सुखमन पीसनहारी ॥
नीझर झरै अँमी रस निकसै, तिहि मदिरावल छाका ॥
कहैं कबीर यहु बास बिकट अति, ग्याँन गुरू ले बांका ॥ १५५ ॥

अकथ कहाँणी प्रेम की, कछू कही न जाई ।
गूँगे केरी सरकरा, बैठे मुसुकाई ॥ टेक ॥
भोमि बिनाँ अरु बीज बिन, तरबर एक भाई ।
अनँत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई ।
मन थिर बैसि बिचारिया, राँमहि ल्यौ लाई ।
झूठी अनभै बिस्तरी सब थोथी बाई ॥
कहै कबीर सकति कछु नाहीं, गुरु भया सहाई ॥
आँवण जाँणी मिटि गई, मन मनहि समाई ॥१५६॥

संतो सो अनभै पद गहिये ।
कला अतीत आदि निधि निरमल ताकूं सदा बिचारत रहिये ॥टेक॥
सो काजी जाकौं काल न व्यापै, सो पंडित पद बूझै ।
सो ब्रह्मा जो ब्रह्म बिचारै, सो जोगी जग सूझै ॥
उदै न अस्त सूर नहीं ससिहर, ताको भाव भजन करि लीजै ।
काया थैं कछु दूरि बिचारै, तास गुरू मन धीजै ॥
जार्‌यो जरै न काट्यो सूकै, उतपति प्रलै न आवै ।
निराकार अषंड मंडल मैं, पाँचौ तत्त समावै ॥
लोचन अछित सबै अँधियारा, बिन लोचन जग सूझै ।
पड़दा खोलि मिलै हरि ताकूं, जो या अरथहि बूझै ॥
आदि अनंत उभै पख निरमल, द्रिष्टि न देख्या जाई ।
ज्वाला उठी अकास प्रजल्यौ, सीतल अधिक समाई ॥

एकनि गंध बासनाँ प्रगटै जग थैं रहै अकेला ॥
प्राँन पुरिस काया थैं बिछुरे, राखि लेहु गुर चेला ।
भागा भर्म भया मन अस्थिर, निद्रा नेह नसाँनाँ ॥
घट की जोति जगत प्रकास्या, माया सोक बुझाँनाँ ।
बंकनालि जे संमि करि राखै, तौ आवागमन न होई ॥
कहैं कबीर धुनि लहरि प्रगटी, सहजि मिलैगा सोई ॥१५७॥

जाइ पूछो गोविंद पढ़िया पंडिता, तेराँ कौन गुरू कौन चेला ।
अपणें रूप कौं आपहि जाँणें, आपैं रहै अकेला ॥टेक॥
बाँझ का पूत बाप बिना जाया, बिन पाँऊँ तरवरि चढ़िया ।
अस बिन पाषर गज बिन गुड़िया, बिन षंडै संग्राम जुड़िया ॥
बीज बिन अंकूर पेड़ बिन तरवर, बिन साषा तरवर फलिया ।
रूप बिन नारी पुहुप बिन परमल, बिन नीरैं सरवर भरिया ॥
देव बिन देहुरा पत्र बिन पूजा, बिन पाँषाँ भवर बिलंबिया ।
सूरा होइ सु परम पद पावै, कीट पतंग होइ सब जरिया ॥
दीपक बिन जोति जोति बिन दीपक, हद बिन अनाहद सबद बागा ।
चेतनाँ होइ सु चेति लीज्यौं, कबीर हरि के अंगि लागा ॥ १५८॥

पंडित होइ सु पदहि बिचारैं, मूरिष नाँहिन बूझै ।
बिन हाथनि पाँइन बिन काँननि, बिन लोचन जग सूझै ॥टेक॥
बिन मुख खाइ चरन बिनु चालै, बिन जिभ्या गुण गावै ।
आछै रहै ठौर नहीं छाड़ै, दह दिसिहीं फिरि आवै ॥
बिनहीं तालाँ ताल बजावै, बिन मंदल षट ताला ।
बिनहीं सबद अनाहद बाजै, तहाँ निरतत है गोपाला ॥
बिनाँ चोलनैं बिनाँ कंचुकी, बिनहीं संग संग होई ।
दास कबीर औसर भल देख्या, जाँनैंगा जस कोई ॥१५९॥

है कोई जगत गुर ग्याँनी, उलटि बेद बूझै ।
पाँणीं में अगनि जरैं, अँधरे कौं सूझै ॥ टेक ॥
एकनि दादरि खाये, पंच भवंगा ।
गाइ नाहर खायौ, काटि काटि अंगा ॥
बकरी बिघार खायौ, हरनि खायौ चीता ।
कागिल गर फाँदिया, बटेरैं बाज जीता ॥
मूसैं मँजार खायौ, स्यालि खायौ स्वाँनाँ ।
आदि कौं आदेस करत, कहैं कबीर ग्याँनाँ ॥ १६०॥

ऐसा अद्भुत मेरे गुरि कथ्या, मैं रह्या उभेषै ।
मूसा हसती सौं लड़ै, कोई बिरला पेषै ॥ टेक ॥
मूसा पैठा बाँबि मैं, लारै सापणि धाई ।
उलटि मूसै सापणि गिली, यहु अचिरज भाई ॥
चींटी परबत ऊषण्याँ, ले राख्यौ चौड़ै ॥
मुर्गा मिनकी सूं लड़ै, झल पाँणी दौड़ै ।
सुरहीं चूंषै बछतलि, बछा दूध उतारै ॥
ऐसा नवल गुंणी भया, सारदूलहि मारै ।
भील लूक्या बन बीझ मैं, ससा सर मारै ॥
कहै कबीर ताहि गुर करौं, जो या पदहि बिचारै ॥ १६१ ॥

अवधू जागत नींद न कीजै ।
काल न खाइ कलप नहीं ब्यापै, देही जुरा न छीजै ॥ टेक ॥
उलटी गंग समुद्रहि सोखै ससिहर सूर गरासै ।
नव ग्रिह मारि रोगिया बैठे, जल में ब्यंब प्रकासैं ॥
डाल गह्या थैं मूल न सूझै मूल गह्याँ फल पावा ।
बंबई उलटि शरप कौं लागी, धरणि महा रस खावा ॥
बैठि गुफा मैं सब जग देख्या, बाहरि कछू न सूझै ।
उलटैं धनकि पारधी मार्यौ यहु अचिरज कोई बूझै ॥
औंधा घड़ा न जल में डूबै, सूधा सूभर भरिया ।
जाकौं यहु जुग घिण करि चालैं, ता प्रसादि निस्तरिया ॥
अंबर बरसै धरती भीजै, बूझै जाँणौं सब कोई ।
धरती बरसै अंबर भीजै, बूझै बिरला कोई ॥
गाँवणहारा कदे न गावै, अणबोल्या नित गावै ।
नटवर पेषि पेषनाँ पेषै, अनहद बेन बजावै ॥
कहणीं रहणीं निज तत जाँणैं यहु सब अकथ कहाणीं ।
धरती उलटि अकासहि ग्रासै, यहु पुरिसाँ की बाँणी ॥
बाझ पियालैं अंमृत सोख्या, नदी नीर भरि राष्या ।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, धरणि महारस चाष्या ॥ १६२ ॥

राँम गुन बेलड़ी रे, अवधू गोरषनाथि जाँणीं ।
नाति सरूप न छाया जाके, बिरध करैं बिन पाँणी ॥ टेक ॥
बेलड़िया द्वै अणीं पहूँती गगन पहूँती सैली ।
सहज बेलि जल फूलण लागी, डाली कूपल मेल्ही ॥
मन कुंजर जाइ बाड़ी बिलंब्या सतगुर बाही बेली ।
पंच सखी मिसि पवन पयंप्या, बाड़ी पाणीं मेल्ही ॥

काटत बेलो कूपले मेल्हीं, सींचताड़ी कुमिलाँणीं।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरंतर जाँणीं ॥ १६३ ॥

राँम राइ अबिगत बिगति न जानै,
कहि किम तोहि रूप बषानै ॥ टेक ॥
प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभू प्रथमे पवन कि पाँणीं।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनाँणीं ॥
प्रथमे प्राँण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत कि रेत।
प्रथमे पुरिष की नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज की खेत ॥
प्रथमे दिवस कि रैंणि प्रथमे प्रभु, प्रथमे पाप कि पुन्य।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरंजन, तहाँ कुछ आहि कि सुन्यं ॥ १६४

अवधू सो जोगी गुर मेरा,
जो या पद का करै नबेरा ॥ टेक ॥
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिन फूलाँ फल लागा।
साखा पत्र कछू नहीं वाकै अष्ट गगन मुख बागा ॥
पैर बिन निरति कराँ बिन बाजैं, जिभ्या हीणाँ गावै।
गायणहारे के रूप न रेषा, सतगुर होई लखावं ॥
पंषी का षोज मीन का मारग, कहै कबीर बिचारी।
अपरंपार पार परसोतम, वा मूरति बलिहारी ॥ १६५ ॥

अब मैं जाँणिबौ रे केवल राइ की कहाँणी।
मझा जोति राँम प्रकासै, गुर गमि बांणी ॥ टेक ॥
तरवर एक अनंत मूरति, सुरताँ लेहु पिछाँणीं।
साखा पेड़ फूल फल नाँहीं, ताको अंमृत बाँणीं ॥
पुहुप बास भवरा एक राता, बरा ले उर धरिया।
सोलह मंझै पवन झकोरैं, आकासे फल फलिया ॥
सहज समाधि बिरष यह सींच्या, धरती जल हर सोष्या।
कहै कबीर तास मैं चेला, जिनि यहु तरुवर पेष्या ॥ १६६ ॥

राजा राँम कवन रंगैं,
जैसैं परिमल पुहुप संगैं ॥ टेक।
पंचतत ले कीन्ह बँधाँन, चौरासी लष जीव समाँन।
वेगर बेगर राखि ले भाव, तामैं कीन्ह आपको ठाँव ॥
जैसै पावक भंजन का बसेष, घट उनमाँन कीया प्रवेस ॥

(१६३) ख--जाति सिमूल न छाया जाकै।

कह्यो चाहूँ कछू कह्या न जाइ, जल जीव ह्वै जल नहीं बिगराइ ॥
सकल आतमां बरतै जे, छल बल कौं सब चीन्हि बसे ॥
चीनियत चीनियत ता चीन्हिनै से, तिहि चीन्हिअत धूंका करके ॥
आपा पर सब एक समांन, तब हम पावा पद निरबांण ॥
कहै कबीर मन्य भया संतोष, मिले भगवंत गया दुख दोष ॥ १६७ ॥

अंतर गतिअनि अनि बांणी ।
गगन गुपत मधुकर मधु पीवत, सुगति सेस सिव जांणीं ॥ टेक ॥
त्रिगुण त्रिबिध तलपत तिमरातन, तंती तंत मिलानीं ।
भागे भरम भोइन भए भारी, बिधि बिरंचि सुषि जांणीं ॥
बरन पवन अबरन बिधि पावक, अनल अमर मरै पांणीं ।
रबि ससि सुभग रहे भरि सब घटि, सबद सुंनि तिथि मांही ॥
संकट सकति सकल सुख खोये, उदित मथित सब हारे ।
कहैं कबीर अगम पुर पाटण, प्रगटि पुरातन जारे ॥ १६८ ॥

लाधा है कछू लाधा है, ताकी पारिष को न लहै ।
अबरन एक अकल अबिनासी, घटि घटि आप रहै ॥ टेक ॥
तोल न मोल माप कछु नाहीं, गिणँती ग्यांन न होई ।
नाँ सो भारी नां सो हलका, ताकी पारिष लषै न कोई ॥
जामैं हम सोई हम ही मैं, नीर मिले जल एक हूवा ।
यौ जांणैं तो कोई न मरिहैं, बिन जांणैं थैं बहुत मूवा ॥
दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊँ ।
बिधनां बचन पिछांड़त नाहीं, कहु क्या काढ़ि दिखाऊँ ॥ १६९ ॥

हरि हिरदे रे अनत कत चाही,
भूलै भरम दुनी कत बाही ॥ टेक ॥
जग परबोधि होत नर खालो, करते उदर उपाया ।
आतम रांम न चीन्हैं संतो, क्यूं रमि लै रांम राया ॥
लागै प्यास नीर सो पीवै, बिन लागै नहीं पीवै ।
खोजै तत मिलै अबिनासी, बिन खोजै नहीं जीवै ।
कहै कबीर कठिन यहु करणी जैसी षंडे धारा ।
उलटी चाल मिलै परब्रह्म कौं, सो सतगुरू हमारा ॥ १७० ॥

रे मन बैठि कितै जिनि जासी,
हिरदै सरोवर है अबिनासी ॥ टेक ॥
काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी ।
माया मधे कवलापति, काया मधै बैकुंठबासी ॥
उलटि पवन षटचक्र, निवासी, तीरथराज गंगतट बासी ॥

गगन मंडल रबि ससि दोइ तारा, उलटी कूची लागि किवारा।
कहै कबीर भई उजियारा, पंच मारि एक रह्यो निनारा ॥१७१

राँम बिन जन्म मरन भयो भारी।
साधिक सिध सूर अरु सुरपति, भ्रमत भ्रमत गये हारी ॥टेक॥
व्यंद भाव भ्रिग तत जंत्रक, स[illegible] सुख सुखकारी।
श्रवन सुनि रबि ससि सिव सिव, पलक पुरिष पल नारी॥
अंतर गगन होत अंतर धुंनि बिन सासनि है सोई।
घोरत सबद सुमंगल सब घटि, ब्यंदत ब्यंदै कोई॥
पाणीं पवन अवनि नभ पावक, तिहि संग सदा बसेरा।
कहै कबीर मन मन करि बेध्या, बहुरि न कीया फेरा ॥१७२॥

नर देही बहुरि न पाईये,
तायैं हरषि हरषि गुंण गाईये ॥ टेक ॥
जब मन नहीं तजै बिकारा, तौ क्यूँ तरिये भौ पारा ॥
जे मन छाड़ै कुटिलाई, तब आइ मिलै रांम राई ॥
ज्यूँ जीमण त्यूँ मरणाँ, पछितावा कछू न करणाँ ॥
जांणि मरै जे कोई, तो बहुरि न मरणाँ होई ॥
गुर बचनाँ मंझि समावै, तब रांम नांम ल्यौ लावै ॥
जब रांम नांम ल्यौ लागा, तब भ्रम गया भौ भागा ॥
ससिहर सूर मिलावा, तब अनहद बेन बजावा ॥
जब अनहद बाजा बाजै, तब साँई संगि बिराजै ॥
होत संत जनन के संगी, मन राचि रह्यो हरि रंगी ॥
धरो चरन कवल बिसवासा, ज्यूँ होइ निरभै पदवासा ॥
यहु काचा खेल न होई, जन षरतर खेलै कोई ॥
जब षरतर खेल मचावा, तब गगन मंडल मठ छावा ॥
चित चंचल निहचल कीजै तब रांम रसाइन पीजै ॥
जब रांम रसांइन पीया, तब काल मिट्या जन जीया ॥
यूँ दास कबीरा गावै, तायैं मन को मन समझावै ॥
मन ही मन समझाया, तब सतगुर मिलि सचु पाया ॥१७३

अवधू अगनि जरै कै काठ।
पूछौ पंडित जोग संन्यासी, सतगुर चीन्है बाट ॥ टेक ॥
अगनि पवन मैं पवन कवन मैं, सबद गगन के पवनाँ ॥
निराकार प्रभु आदि निरंजन, कत रवंते भवनाँ ॥

उतपति जोति कवन अँधियारा, घन बादल का बरिषा।
प्रगट्यो बीज धरनि अति अधिकै, पारब्रह्म नहीं देखा॥
मरनाँ मरै न मरि सकै, मरनां दूरि न नेरा।
द्वादश द्वादस सनमुख देखें, आपैं आप अकेला॥
जे बांध्या ते छुछंद मुकुता, बाँधनहारा बाँध्या।
बाँध्या मुकता मुकता बाँध्याँ, तिहि पारब्रह्म हरि लाँघा॥
जै जाता तें कौंण पठाता, रहता ते किनि राख्या।
अँमृत समाँनाँ, बिष मैं जानाँ, बिष मैं अमृत चाख्या॥
कहै कबीर बिचार बिचारी, तिल मैं मेर समाँनाँ।
अनेक जनम का गुर गुर करता, सतगुर तब भेटाँनाँ ॥१७४॥

अवधू ऐसा ग्यान बिचारं,
भेरैं चढ़े सु अधधर डूबे निराधार भये पारं॥ टेक॥
ऊघट चले सु नगरि पहूँचे, बाट चले ते लूटे।
एक जेवड़ी सब लपटाँने, के बांधे के छूटे॥
मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका।
सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा॥
बिन नैंनन के सब जग देखै, लोचन अछते अंधा।
कहैं कबीर कछु समझि परी है, यहु जग देख्या धंधा॥१७५॥

जन धंधा रे जग धंधा, सब लोगनि जाँणौ अंधा।
लोभ मोह जेवड़ी लपटानीबिनहीं गाँठि गह्यो फंदा॥टेक॥
ऊँचे टीबे मंछ बसत है, ससा बसे जल माँहीं।
परबत ऊपरि डूबि मूवा नीर मूवा धूँ काँही॥
जलै नीर तिण षड़ उबरै, बैसंदर ले सींचै।
ऊपरि मूल फूल बिन भीतरि, जिनि जान्यां तिनि नीकै॥
कहै कबीर जाँनही जाँनै, अनजानत दुख भारी।
हारी बाट बटाऊ जीत्या, जानत की बलिहारी॥१७६॥

अवधू ब्रह्म मतैं घरि जाइ।
कालिह जू तेरी बंसरिया छीनी कहा चरावै गाइ॥टेक॥
तालि चुगें बन सीतर लउवा, पवति चरै सौरा मछा।
बन की हिरनी कूवै बियानी, ससा फिरे अकासा॥
ऊँट मारि मैं चारै लावा, हस्ती तरंडवा देई।
बबूर की डरियाँ बनसी लैहूँ सीयरा भूंकि भूंकि षाई॥

आँब क बौरे चरहल करहल, निबिया छोलि छोलि खाई।
मोरै आग निदाष दरी बल, कहै कबीर समझाई ॥ १७७ ॥

कहा करौं कैसैं तिरौं, भौ जल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा राखि राखि मुरारी ॥ टेक ॥
घर तजि बन खंडि जाइए, खनि खनि खइए कंदा।
बिषै बिकार न छूटई ऐसा मन गंदा ॥
विष विषिया कौं बाँसनाँ, तजौं तजी नहीं जाई।
अनेक जतन करि सुरझिहौं, फुनि फुनि उरझाई।
जीव अछित जोबन गया, कछु कीया न नीका।
यहु हीरा निरमोलिका, कौड़ी पर बीका ॥
कहै कबीर सुनि केसवा, तूं सकल बियापी।
तुम्ह समाँनि दाता नहीं, हँम से नहीं पापी ॥ १७८ ॥

बाबा करहु कृपा जन मारगि लावो ज्यूं भव बंधन षूटै।
जरा मरन दुख फेरि करँन सुख, जीव जनम थैं छूटै ॥ टेक ॥
सतगुरु चरन लागि यों बिनऊँ, जीवनि कहाँ थैं पाई ॥
जा कारनि हम उपजैं बिनसैं क्यूं न कहौ समझाई ॥
आसा पास षंड नहीं पाँड़े, यौं मन सुंनि न लूटै।
आपा पर आनंद न बूझै, बिन अनभै क्यूं छूटै ॥
कह्याँ न उपजै उपज्याँ नहीं जाणैं, भाव अभाव बिहूनाँ।
उदै अस्त जहाँ मति बुधि नाहीं, सहजि राँम ल्यौं लीनाँ ॥
ज्यूं बिंबहि प्रतिबिंब समाँनाँ, उदिक कुंभ बिगराँनाँ।
कहै कबीर जाँनि भ्रम भागा, जीवहिं जीव समाँनाँ ॥

संतौ धोखा कासूं कहिए।
गुंण मैं निरगुंण निरगुंण मैं गुंण है, बाट छाँड़ि क्यूँ बहिए ॥ टेक ॥
अजरा अमर कथैं सब कोई, अलख न कथणाँ जाई।
नाति सरूप बरण नहीं जाकै, घटि घटि रह्यौ समाई ॥
प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथिए, कहैं कबीर हरि सोई ॥ १८० ॥

पषा पषी कै पेषणैं, सब जगत भुलानाँ।
निरपष होइ हरि भजैं, सो साध सयाँनाँ ॥ टेक ॥
ज्यूं पर सूं षर बँधिया, यूं बँधे सब लोई।
जाकै आत्मद्रिष्टि है, साचा जन सोई ॥

एक एक जिनि जाँणियाँ, तिनहीं सच पाया।
प्रेंम प्रीति ल्यौं लीन मन, ते बहुरि न आया॥
पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखै।
कहै कबीर कछू समूझि न परई, या कछू बात अलेखै ॥१८१॥

अजहूँ न संक्या गई तुम्हारी,
नाँहि निसंक मिले बनवारी ॥ टेक ॥
बहुत गरब गरबे संन्यासी, ब्रह्मचरित छूटी नहीं पासी।
सुद्र मलेछ बसैं मन माँहीं, आतमराम सु चीन्ह्या नाहीं॥
संक्या डाँइणि बसै सरीरा, ता करणि रांम रमैं कबीरा ॥१८२॥

सब भूले हौं पाषंडि रहे,
तेरा बिरला जन कोई राम कहै ॥ टेक ॥
होइ आरोगि बूँटी घसि लावै, गुर बिना जैसे भ्रमत फिरै।
है हाजिर परतीति न आवै, सो कैसे परताप धरै॥
ज्यूँ सुख त्यूँ दुख द्रिढ़ मन राखै एकादसी एकतार करै।
द्वादसी भ्रमैं लष चौरासी, गर्भ बास आवै सदा मरै॥
सैं तैं तजै तजैं अपमारग, चारि बरन उपराति चढ़ै।
ते नहीं डूबै पार तिरि लंघै, निरगुण अगुण संग करै॥
होइ मगन राँम रँगि राचै, आवागमन मिटै धापै।
तिनह उछाह सोक नहीं ब्यापै, कहै कबीर करता आपै ॥१८३॥

तेरा जन एक आध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ बिबर्जित, हरिपद चीन्हैं सोई ॥ टेक ॥
राजस तांमस सातिग तीन्यूँ, ये सब तेरी माया।
चौथैं पद कौं जे जन चीन्हैं, तिनहि परम पद पाया॥
असतुति निंद्या आसा छाँड़ै, तजै माँन अभिमानाँ।
लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानाँ॥
च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणि, हरिपद रमैं उदासा।
त्रिस्ना अरु अभिमाँन रहित है, कहै कबीर सो दासा ॥ १८४॥

हरि नाँमैं दिन जाइ रे जाकौ,
सोइ दिन लेखै, लाइ राँम ताकौ ॥ टेक॥
हरि नाँम मैं जन जागै, ताकै गोब्यंद साथी आगै॥

(१८४) ख—जे जन जानैं। लोहा कंचन सँम करि जानैं।

दीपक एक अभंगा, तामैं सुर नर पड़ै पतंगा।
ऊँच नींच सम सरिया, ताथैं जन कबीर निसतरिया ॥१८५॥

जब थैं आतम तत्त बिचारा।
तब निरबैर भया सबहिन थैं, काम क्रोध गहि डारा ॥टेक॥
ब्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै, को पंडित को जोगी।
राँणाँ राव कवन सूँ कहिये, कवन बैद को रोगी॥
इनमैं आप आप सबहिन मैं, आप आप सूँ खेलैं।
नाँनाँ भाँति घड़े सब भाँड़े, रूप धरे धरि मेलै॥
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, निरगुण कोई न बतावै।
कहै कबीर गुंणी अरु पंडित, मिलि लीला जस गावै ॥१८६॥

तू माया रघुनाथ की, खेलड़ चढ़ी अहेड़ै।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड़्या नेंड़ैं ॥टेक॥
मुनियर पीर डिगंबर मारे, जतन करंता जोगी।
जंगल महि के जंगम मारे, तूँ रे फिरै बलिवंतीं।
वेद पढ़ंता बाँम्हण मारा, सेवा करताँ स्वामी।
अरथ करताँ मिसर पछाड्या, तूँ रे फिरै मैंमंती॥
साषित कैं तू हरता करता, हरि भगतन कै चेरी।
दास कबीर राम कै सरनै, ज्यूँ लागी त्यूँ तोरी॥ १८७॥

जग सूँ प्रीति न कीजिए, सँमझि मन मेरा।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा॥ टेक॥
एक कनक अरु कामनी, जग में दोइ फंदा।
इनपै जो न बँधावई, ताका मैं बंदा॥
देह धरे इन माँहि बास, कहु कैसे छूटै।
सीव भये ते ऊबरे, जीवन ते लूटै॥
एक एक सूँ मिलि रह्या, तिनहीं सचु पाया।
प्रेम मगन लैलीन मन, सो बहुरि न आया॥
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया॥
संसा ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥१८८॥

राँम मोहिं सतगुर मिलै अनेक कलानिधि, परम तत्त सुखदाई।
काँम अगनि तन जरत रही है, हरि रसि छिरकि बुझाई ॥टेक॥
दरस परस तैं दुरमति नासी, दीन रटनि ल्यौ आई।
पाषंड भरँम कपाट खोलि कै अनभै कथा सुनाई॥

(१८७) ख—तू माया जगनाथ की।

यहु संसार गँभीर अधिक जल को गहि लावै तीरा।
नाव जिहाज खेवइया साधू, उतरे दास कबीरा ॥१८९॥

दिन दहुँ चहुँ कै कारणैं, जैसे सैंबल फूले।
झूठी सूँ प्रीति लगाइ करि, साँचे कूँ भूले ॥ टेक ॥
जो रस गा सो परहरचा, बिड़राता प्यारे।
आसति कहूँ न देखिहूँ, बिन नाँव तुम्हारे ॥
साँची सगाई राँम की, सुनि आतम मेरे।
नरकि पड़े नर बापुड़े, गाहक जस तेरे ॥
हंस उड़चा चित चालिया, सगपन कछू नाहीं।
माटी सूँ माटी मेलि करि, पीछैं अनखाँहीं ॥
कहै कबीर जग अंधला, कोई जन सारा ॥
जिनि हरि मरण न जाँणिया, तिनि किया पसारा ॥१९०॥

माधौ मैं ऐसा अपराधी,
तेरी भगति होत नहीं साधी ॥टेक॥

कारनि कवन जाइ जग जनम्यां, जनमि कवन सचु पाया।
भौ जल तिरण चरण च्यंतामणि, ता चित घड़ी न लाया ॥
पर निंद्या पर धन पर दारा, पर अपवादैं सूरा।
ताथैं आवागवन होइ फुनि फुनि, ता पर संग न चूरा ॥
काम क्रोध माया मद मंछर, ए संतति हम माँही।
दया धरम ग्यांन गुर सेवा, ए प्रभु सूपिनै नाँहीं ॥
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत बछल भौ हारी।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमारी ॥१९१॥

राँम राइ कासनि करौं पुकारा,
ऐसे तुम्ह साहिब जाननिहारा ॥ टेक ॥

इंद्री सबल निबल मैं माधौ, बहुत करै बरियाई।
लै धरि जाँहि तहाँ दुख पइये बुधि बल कछू न बसाई ॥
मै बपरौ का अलप मूढ़ मति, कहा भयौ जे लूटे।
मुनि जन सती सिध अरु साधिक तेऊ न आयैं छूटे ॥
जोगी जती तपा संन्यासी, अह निसि खोजैं काया।
मैं मेरी करि बहुत बिगूते, बिषै बाघ जग खाया ॥

(१९१) ख—सो गति करहु हमारी।

ऐंकत छाँड़ि जाँहि घर घरनी, तिन भी बहुत उपाया।
कहै कबीर कछु समझि न पाई, विषम तुम्हारी माया ॥ १९२ ॥

माधौ चले बुनाँवन माहा,
जग जीतें जाइ जुलाहा ॥ टेक ॥

नव गज दस गज गज उगनींसा, पुरिया एक तनाई।
सान सूत दे गंड बहुतरि, पाट लगी अधिकाई ॥
तुलह न तोली गजह न मापी, पहज न सेर अढ़ाई।
अढ़ाई में जैं पाव घटे तौ करकस करैं बजहाई ॥
दिन की बैंठि खसम सूँ कीजै अरज लगी तहाँ ही।
भागी पुरिया घर ही छाडी चले जुलाह रिसाई ॥
छोछी नली काँमि नहीं आवै लहटि रही उरझाई।
छाँड़ि पसारा राँम कहि बौरे, कहै कबीर समझाई ॥ १९३॥

बाजें जंत्र बजावै गुँनी,
राम नाँम बिन भूली दुनीं ॥ टेक ॥

रजगुन सतगुन तमगुन तीन, पंच तत से साज्या बींन ॥
तीनि लोक पूरा पेखनां, नाँच नचावै एकै जनाँ।
कहै कबीर संसा करि दूरि, त्रिभवननाथ रह्या भरपूरि ॥ १९४॥

जंत्री जंत्र अनूपम बाजै,
ताकौ सबद गगन मैं गाजै ॥टेक॥

सुर की नालि सुरति का तूँबा, सतगुर साज बनाया।
सुर नर गण गँध्रप ब्रह्मादिक गुर बिन तिनहुँ न पाया ॥
जिभ्या ताँति नासिका करहीं, माया का मैण लगाया।
गमाँ बतीस मोरणाँ पाँचौं, नीका साज बनाया ॥
जंत्री जंत्र तजै नहीं बाजै, तब बाजै जब बावै।
कहै कबीर सोई जन साँचा जंत्री सूँ प्रीति लगावै ॥१९५॥

अवधू नादैं ब्यंद गगन गाज सबद अनाहद बोलै।
अंतरि गति नहीं देखै नेड़ा, ढूँढ़त बन बन डोलैं ॥टेक॥

सालिगराँम तजौं सिव पूजौं, सिर ब्रह्मा का काटौं।
सायर फोडि नीर मुकलाऊँ, कुँवाँ सिला दे पाटौं।
चंद सूर दोइ तूँबा करिहूँ, चित चेतिनि की डाँड़ी।
सुषमन तंती बाजड़ लागी, इहि विधि त्रिष्णाँ षाँड़ी ॥
परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।
कालहि षंडूँ नीच बिहंडूँ, बहुरि न करिहूँ फेरा ॥

जप न जाप हतौं नहीं गूगल पुस्तक ले न पढ़ाऊँ।
कहै कबीर परम पद पाया, नहीं आऊँ नहीं जाऊँ ॥१९६॥

बाबा पेड़ छाड़ि सब डाली लागे मूँढ़े जंत्र अभागे।
सोइ सोइ सब रैंणि बिहाँणीं, भोर भयो तब जागे ॥टेक॥
देवलि जाँऊँ तौं देवी देखौं, तीरथि जाँऊँ त पाणीं।
ओछी बुधि अगोचर बाँणीं, नहीं परम गति जांणीं॥
साध पुकारैं सभझत नाँहीं, आन जन्म के सूते।
बाँधै ज्यूँ अरहट की टीडरि, आवत जात बिगूते॥
गुर बिन इहि जग कौन भरोसा, काके संग ह्वै रहिए।
गनिका के घरि बेटा जाया, पिता नाँव किस कहिए।
कहै कबीर यहु चित्र बिरोध्या, बूझौ अंमृत बाँणी।
खोजत खोजत सतगुर पाया, रहि गई आँवण जाँणीं ॥१९७॥

भूली मालिनी, है गोब्यंद जागतौ जगदेव,
तूँ करै किसकी सेव ॥टेक॥
भूली मालिन पाती तोड़ै, पाती पाती जीव।
जा मूरति कौ पाती तोड़ै, सो मूरति नर जीव।
टाँचणहारै टाँचिया, दै छाती ऊपरि पाव।
जे तू मूरति सकल है, तौ घड़णहारे कौ खाव॥
लाडू लावण लापसी, पूजा चढ़ै अपार।
पूजि पुजारी ले गया, दे मूरति कै मुँहि छार।
पाती ब्रह्मा पुहपे बिष्णु, फूल फल महादेव।
तीनि देवौ एक मूरति, करै किसकी सेव॥
एक न भूला दोइ न भूला भूला सब संसारा।
एक न भूला दास कबीरा, जाकैं राम अधारा ॥१९८॥

सेइ मन समझि संमर्थ सरणाँगता, जाकी आदि अंति मधि कोई न पावै।
कोटि कारिज सरैं देह गुँण सब जरैं; नेक जो नाँव पतिव्रत आवै ॥टेक॥
आकार की ओट आकार नहीं ऊबरैं, सिव बिरंचि अरु बिष्णु ताँई।
जास का सेवक तास कौ पइहैं, इष्ट कौं छाड़ि आगे न जाँहीं॥
गुँण मई मूरति सेइ सब भेष मिलि, निरगुण निज रूप बिश्राम नाँहीं।
अनेक जुग बंदिगी बिविध प्रकार की, अंति गुँण का गुँणहीं समाहीं॥
पाँच तत तीनि गुण जुगति करि साँनिया, अष्ट बिन होत नहीं क्रम काया।
पाप पुन बीज अंकूर जाँमैं मरै, उपजि बिनसैं जेती सर्ब माया॥

क्रितम करता कहैं परम पद क्यूं कहै, भूलि मैं पड़चा लोक सारा।
कहै कबीर रांम रमिता भजैं, कोई एक जन गए उतरि पारा ॥१६६॥

राम राइ तेरी गति जांणी न जाई ।
जो जस करिहै सो तस पइहै, राजा रांम नियाई ॥ टेक ॥
जैसी कहै करै जो तैसी, तौ तिरत न लागै बारा ।
कहता कहि गया सुनता सुणि गया, करणीं कठिन अपारा ॥
सुरही तिण चरि अंमृत सरवै, लेर भवंगहि पाई ।
अनेक जतन करि निग्रह कीजै, विषै बिकार न जाई ॥
संत करै असंत की संगति, तासूं कहा बसाई ।
कहैं कबीर ताके भ्रम छूटैं, जे रहे रांम ल्यौ लाई ॥२००॥

कथणीं बदणी सब जंजाल,
भाव भगति अरु रांम निराल ॥ टेक ॥
कथै बदै सुणै सब कोई, कथें न होई कीयें होई ॥
कूड़ी करणीं रांम न पावै, साच टिकै निज रूप दिखावै ।
घट में अग्नि घर जल अवास, चेति बुझाइ कबीरादास ॥२०१॥

(राग आसावरी)

ऐसी रे अवधू की वाणी,
ऊपरि कूवटा तलि भरि पांणी ॥ टेक ॥
जब लग गगन जोति नहीं पलटै, अविनासा सूं चित नहीं चिहुटै ।
जब लग भँवर गुफा नहीं जानैं, तौ मेरा मन कैसै मानैं ॥
जब लग त्रिकुटी संधि न जानैं, ससिहर कै घरि सूर न आनैं ।
जब लग नाभि कवल नहीं सोधैं, तौ हीरैं हीरा कैसैं बेधैं ॥
सोलह कला संपूरण छाजा, अनहद कै घरि बाजैं बाजा ।
सुषमन कै घरि भया अनंदा, उलटि कवल भेटे गोव्यंदा ॥
मन पवन जब परचा भया, क्यूं नाले रांषी रस मइया ।
कहै कबीर घटि लेहु बिचारी, औघट घाट सींचि ले क्यारी ॥२०२॥

मन का भ्रम मन ही थैं भागा,
सहज रूप हरि खेलण लागा ॥ टेक ॥
मैं तैं तैं मैं ए द्वै नाहीं, आपै अकल सकल घट मांहीं ।
जब थैं इनमन उनमन जांनां, तब रूप न रेष तहां ले बांनां ॥
तन मन मन तन एक समांनां, इन अनभै माहैं मनमांनां ॥
आतमलीन अषंडित रांमां, कहै कबीर हरि मांहि समांनां ॥२०३॥

आत्माँ अनंदी जोगी,
पीवैं महारस अँमृत भोगी ।। टेक ।।

ब्रह्म अगनि काया परजारी, अजपा जाप उनमनी तारी ।।
त्रिकुट कोट मैं आसण माँडै, सहज समाधि बिषै सब छाँड़ै ।।
त्रिवेणी बिभूति करै मन मंजन, जन कबीर प्रभु अलष निरंजन ।।२०४।।

या जोगिया को जुगति जु बूझै,
राम रमै ताको त्रिभुवन सूझै ।। टेक ।।

प्रकट कंथा गुपत अधारी, तामैं मूरति जीवनि प्यारी ।
है प्रभू नेरै खोजै दूरि, ज्ञाँन गुफा में सींगी पूरि ।।
अमर बेलि जो छिन छिन पीवै, कहै कबीर सो जुगि जुगि जीवै ।।२०५।।

सो जोगी जाकै मन मैं मुद्रा,
रात दिवस न करई निद्रा ।। टेक ।।

मन मैं आँसण मन मैं रहणाँ, मन का जप तप मन सूँ कहणाँ ।।
मन मैं षपरा मन मैं सींगी, अनहद बेन बजावै रंगी ।।
पंच परजारि भसम करि भूका, कहै कबीर सो लहसै लंका ।।२०६।।

बाबा जोगी एक अकेला,
जाके तीर्थ ब्रत न मेला । टेक ।।

झोली पत्र बिभूति न बटवा, अनहद बेन बजावै ।।
माँगि न खाइ न भूखा सोवै, घर अँगनाँ फिरि आवै ।।
पाँच जना की जमाति चलावै, तास गुरू मैं चेला ।।
कहै कबीर उनि देसि सिधाये, बहुरि न इहि जगि मेला ।।२०७।।

जोगिया तन को जंत्र बजाइ,
ज्यूँ तेरा आवागमन मिटाइ ।। टेक ।।

तत करि ताँति धर्म करि डाँड़ी, सत को सारि लगाइ ।
मन करि निहचल आसँण निहचल, रसनाँ रस उपजाइ ।।
चित करि बटवा तुचा मेषली, भसमैं भसम चढ़ाइ ।
तजि पाषंड पाँच करि निग्रह, खोजि परम पद राइ ।।
हिरदै सींगी ग्याँन गुणि बाँधौ, खोजि निरंजन साँचा ।
कहै कबीर निरंजन की गति, जुगति बिनाँ प्यंड काचा ।।२०८।।

अवधू ऐसा ज्ञाँन बिचारी,
ज्यूँ बहुरि न ह्वै संसारी ।। टेक ।।

च्यँत न सोच चित बिन चितवै, बिन मनसा मन होई ।
अजपा जपत सुंनि अभिअंतरि, यहु तत जानैं सोई ।।

कहै कबीर स्वाद जब पाया, बंक नालि रस खाया ।
अमृत झरै ब्रह्म परकासै तबही मिलै राम राया ॥२०९॥

गोव्यंदे तुम्हारैं बन कंदलि, मेरो मन अहेरा खेलै ॥
बपु बाड़ी अनगु मृग, रचिहीं रचि मेलैं ॥ टेक ॥
चित तरउवा पवन षेदा, सहज मूल बाँधा ।
ध्याँन धनक जोग करम, ग्याँन बाँन साँधा ॥
षट चक्र कँवल बेधा, जारि उजारा कीन्हाँ ।
काम क्रोध लोभ मोह, हाकि स्यावज दीन्हाँ ॥
गगन मंडल रोकि बारा, तहाँ दिवस न राती ।
कहै कबीर छाँड़ि चले, बिछुरे सब साथी ॥ २१० ॥

साधन कंचू हरि न उतारै,
अनभै ह्वै तौ अर्थ बिचारै ॥ टेक ॥
बाँणी सुरँग सोधि करि आणौं आणौं नौं रंग धागा ।
चंद सूर एकंतरि कीया, सीवत बहु दिन लागा ॥
पंच पदार्थ छोड़ि समाँनाँ, हीरैं मोती जड़िया ।
कोटि बरष लूं कंचूं सीयाँ, सुर नर धंधैं पड़िया ॥
निस बासुर जे सोवैं नाहीं, ता नरि काल न खाई ।
कहै कबीर गुर परसादैं सहजै रह्या समाई ॥ २११ ॥

जीवत जिनि मारै मूवा मति ल्यावैं,
मास बिहूँणाँ घरि मत आवै हो कंता ॥ टेक ॥
उर बिन षुर बिन चंच बिन, बपु बिहूँना सोई ।
सो स्यावज जिनि मारैं कंता, जाकै रगत मांस न होई ॥
पैली पार के पारधी, ताकी धुनहीं पिनच नहीं रे ।
ता बेली को ढूंक्यों मृग लौ, ता मृग कैसी सनहीं रे ॥
मारया मृग जीवता राख्या, यहु गुरु ग्याँन मही रे ।
कहै कबीर स्वाँमी तुम्हारे मिलन कौ, बेली है पर पात नहीं रे ॥२१२॥

धीरौ मेरे मनवाँ तोहि धरि टाँगौं,
तैं तौ कीयौ मेरे खसम सूं षाँगौ ॥ टेक ॥
प्रेम की जेवरिया तेरे गलि बाँधूँ, तहाँ लै जाँउँ जहाँ मेरौ माधौ ।
काया नगरीं पैंसि किया मैं बासा, हरि रस छाड़ि बिषै रसि माता ॥
कहैं कबीर तन मन का ओरा भाव भकति हरिसूं गठजोरा ॥२१३॥

परब्रह्म देख्या हो तत बाड़ी फूली, फल लागा बडहूली ।
सदा सदाफल दाख बिजौरा कौतिकहारी भूली ॥ टेक ॥
द्वादस कूँवा एक बनमाली, उलटा नीर चलावै ।
सहजि सुषमनाँ कूल भरावैं, दह दिसि बाड़ी पावै ॥
ल्यौकी लेज पवन का ढींकू, मन मटका ज बनाया ।
सत की पाटि सुरति का चाठा, सहजि नीर मुलकाया ॥
त्रिकुटी चढ्यौ पाव ढी ढारै, अरध उरध की क्यारी ।
चंद सूर दोऊ पांणति करिहैं, गुर मुषि बीज बिचारी ॥
भरी छाबड़ी मन बैकुंठा, साँई सूर हिया रंगा ।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, हरि हँम एकै संगा ॥ २१४॥

राँम नाँम रँग लागौ, कुरंग न होई ।
हरि रंग सौ रंग औंर न कोई ॥ टेक ॥
और सबै रंग इहि रंग थैं छूटै, हरि रंग लागा कदे न खूटै ।
कहै कबीर मेरे रंग राँम राई, और पतंग रंग उड़ि जाई ॥ २१५॥

कबीरा प्रेम कूल ढरै, हँमारे राम बिना न सरे ।
बाँधि ले धौरा सींचि लै क्यारी ज्यूँ तूँ पेड़ भरें ॥ टेक॥
काया बाड़ी माँहैं माली, टहल करै दिन राती ।
कबहूँ न सोवै काज सँवारे, पाँण तिहारी माती ॥
सेभै कूवा स्वाति अति सीतल, कबहूँ कुवा बनहीं रे ।
भाग हँमारे हरि रखवाले, कोई उजाड़ नहीं रे ॥
गुर बीज जनाया कि रखि न पाया, मन की आपदा खोई ।
औरैं स्यावढ़ करै षारिसा, सिला करै सब कोई ॥
जौ घरि आया तौ सब ल्याया, सबही काज सँवार्‌या ।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, थकित भया मैं हार्‌या ॥२१६॥

राजा राम बिना तकती धो धो ।
राम बिना नर क्यूँ छूटौगे, जम करै नग धो धो धो ॥ टेक ॥
मुद्रा पहर्‌या जोग न होई, घूँघट काढ्या सती न कोई ॥
माया कै संगि हिलि मिलि आया, फोकट साटै जनम गँवाया ।
कहै कबीर जिनि हरि पद चीन्हाँ, मलिन प्यंड थैं निरमल कीन्हा ॥२१७॥

है कोई राम नाँम बतावै,
वस्तु अगोचर मोहि लखावै ॥ टेक ॥
राँम नाँम सब कोई बखाँनैं, राँम नाँम का मरम न जाँनैं ॥

ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावैं तौ सुख पावै ।
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिनाँ मरम को पावै ॥२१८॥

गोव्यंदे तूँ निरंजन तूँ निरंजन राया ।
तेरे रूप नहीं रेख नाहीं मुद्रा नहीं माया ॥ टेक ॥
समद नाहीं सिषर नाहीं, धरती नाहीं गगनाँ ।
रवि ससि दोउ एकै नाँहीं, बहत नाँहीं पवनाँ ॥
नाद नाँहीं ब्यँद नाँहीं, काल नहीं काया ।
जब तै जल ब्यंब न होते, तब तूँहीं राम राया ॥
जप नाँहीं तप नाँहीं, जोग ध्यान नहीं पूजा ।
सिव नाँहीं सकती नाँहीं देव नहीं दूजा ॥
रुग न जुग न स्याँम अथरबन, बेद नहीं ब्याकरनाँ ।
तेरी गति तूँहि जाँनैं, कबीरा तो सरनाँ ॥२१९॥

राम कै नाँइ नीसाँन बागा, ताका मरम न जानै कोई ।
भूख त्रिषा गुण वाकै नाँहीं, घट घट अंतरि लोई ॥ टेक ॥
बेद बिर्बजित भेद बिर्बजित, बिर्बजित पाप रु पुंन्यं ।
ग्याँन बिर्बजित ध्यान बिर्बजित, बिर्बजित अस्थूल सुंन्यं ।
भेष बिर्बजित भीख बिर्बजित बिर्बजित डयंभक रूपं ।
कहै कबीर तिहूँ लोक बिर्बजित, ऐसा तत्त अनूपं ॥२२०॥

राँम राँम राँम रमि रहिए,
साषित सेती भूलि न कहिये ॥ टेक ॥
का सुनहाँ कौं सुमृत सुनायें, का साषित पै हरि गुन गाँये ।
का कऊवा कौं कपूर खवाँयें, का बिसहर कौं दूध पिलाँयें ॥
साषित सुनहाँ दोऊ भाई, वो नींदै वौ भौंकत जाई ।
अंमृत ले ले नींब स्यँचाई, कहै कबीर वाकी बाँनि न जाई ॥२२१॥

अब न बसूँ इहि गाँइ गुसाँई,
तेरे नेवगी खरे सयाँने हो राम ॥ टेक ॥
नगर एक तहाँ जीव धरम हता, बसै जु पंच किसानाँ ।
नैनूँ निकट श्रवनूँ रसनूँ, इंद्री कह्या न मानै हो राँम ॥
गाँइ कु ठाकुर खेत कु नेपै, काइथ खरच न पारै ॥
जोरि जेवरी खेति पसारै, सब मिलि मोकौं मारै हो राँम ॥
खोटो महतो बिकट बलाही, सिर कसदम का पारै ।
बुरो दिवाँन दादि नहिं लागै, इक बाँधै इक मारै हो राम ॥

धरमराई जब लेखा माँग्या, बाकी निकसी भारी ।
पाँच किसानाँ भाजि गये हैं, जीव धर बाँध्यौ पारी हो राँम ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, हरि भजि बाँधौ भेरा ।
अबकी बेर बकसि बंदे कौं, सब खत करौ नबेरा ॥२२२॥

ता भै थैं मन लागौ राँम तोही,
करौ कृपा जिनि बिसरौ मोही ॥ टेक ॥
जननी जठर सह्या दुख भारी,
सो संक्या नहीं गई हमारी ॥
दिन दिन तन छीजै जरा जनावै,
केस गहैं काल बिरदंग बजावै ॥
कहै कबीर करुणाँमय आगैं,
तुम्हारी क्रिया बिना यहु बिपति न भागै ॥२२३॥

कब देखूँ मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही ॥ टेक ॥
हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वाँमी,
कब रमि लहुगे अंतरजाँमी ।
जैसैं जल बिन मीन तलपै,
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै ।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै,
दरस पियासी राँम क्यूँ सचु पावै ।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै,
अपनौं जाँनि मोहि दरसन दीजै ॥ २२४ ॥

सो मेरा राँम कबैं धरि आवै,
ता देखे मेरा जिय सुख पावै ॥ टेक ॥
बिरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यूँ होइ सराई ॥
निस बासुर मन रहै उदासा, जैसैं चातिग नीर पियासा ॥
कहै कबीर अति आतुरताई, हमकौं बेगि मिलौ राँम राई ॥२२५॥

मैं सामने पीव गौंहनि आई ।
साँई संगि साध नहीं पूगी, गयौ जोबन सुपिनाँ की नाँई ॥ टेक ॥
पंच जना मिलि मंडप छायौ, तीन जनाँ मिलि लगन लिखाई ।
सखी सहेली मंगल गावैं, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई ॥
नाँनाँ रंगैं भाँवरि फेरी, गाँठि जोरि बावै पति ताई ।
पूरि सुहाग भयो बिन दूलह, चौक कै रंगि धरचो सगौ भाई ॥

अपनें पुरिष मुख कबहूँ न देख्यौ, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूँ सर रचि मरिहूँ, तिरौं कंत ले तूर बजाई ॥२२६॥

धीरैं धीरैं खाइबौ अनत न जाइबौ,
राँम राँम राँम रमि रहिबौ ॥ टेक ॥

पहली खाई आई माई, पीछै खैहूँ सगौ जवाई।
खाया देवर खाया जेठ, सब खाया ससुर का पेट ॥
खाया सब पटण का लोग, कहै कबीर तब पाया जोग ॥२२७॥

मन मेरौ रहटा रसनाँ पुरइया,
हरि कौ नाउँ लैं लैं काति बहुरिया ॥टेक॥

चारि खूँटी दोइ चमरख लाई, सहजि रहटवा दियौ चलाई ॥
सासू कहै काति बहू ऐसैं, बिन कातैं निसतरिबौ कैसैं ॥
कहै कबीर सूत भल काता, रहटाँ नहीं परम पद दाता ॥२२८॥

अब की घरी मेरी घर करसी,
साध संगति ले मोकौं तिरसी ॥ टेक ॥

पहली को घाल्यौ भरमत डोल्यौ, सच कबहूँ नहीं पायौ।
अब की धरनि धरी जा दिन थैं सगलौ भरम गमायौ ॥
पहली नारि सदा कुलवंती, सासू सुसरा मानैं।
देवर जेठ सबनि की प्यारी, पिव कौ मरम न जाँनैं ॥
अब की धरनि धरी जा दिन थैं, पीय सूँ बाँन बन्यूँ रे।
कहै कबीर भाग बपुरी कौ, आइ रु राँम सुन्यूँ रे ॥२२९॥

मेरी मति बौरी राँम बिसारचौ, किहि बिधि रहनि रहूँ हो दयाल ॥
सेजैं रहूँ नैंन नहीं देखौं, यह दुख कासौं कहूँ हो दयाल ॥ टेक ॥
सासु की दुखी ससुर की प्यारी, जेठ के तरसि डरौं रे।
नणद सुहेली गरब गहेली, देवर कै बिरह जरौं हो दयाल ॥
बाप सावको करै लराई, माया सद मतिवाली।
सगौ भइया लै सलि चिढहूँ, तब ह्वै हूँ पीयहिं पियारी ॥
सोचि बिचारि देखौं मन माँहीं, औसर आइ बन्यूँ रे।
कहै कबीर सुनहुँ मति सुंदरि, राजा राँम रमूँ रे ॥२३०॥

अवधू ऐसा ग्याँन बिचारी,
ताथैं भई पुरिष थैं नारी ॥ टेक ॥

नाँ हूँ परनी नाँ हूँ क्वारी, पूत जन्यूँ द्यौ हारी।
काली मूँड कौ एक न छोड़्यो, अजहूँ अकन कुवारी ॥

---

(२२७) ख—खाया पंच पटण का लोग।

बाम्हन कै बम्हनेटी कहियौं, जोगी कै घरि चेली।
कलमाँ पढ़ि पढ़ि भई तुरकनी, अजहूँ फिरौं अकेली ॥
पीहरि जाँऊँ न सासुरै, पुरषहि अंगि न लाँऊँ ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, अंगहि अंग न छुवाँऊँ॥२३१॥

मींठी मींठी माया तजी न जाई।
अग्याँनी पुरिष कौं भोलि भोलि खाई ॥टेक॥
निरगुँण सगुँण नारी, संसारि पियारी,
लषमणि त्यागी गोरषि निवारी॥
कीड़ी कुंजर मैं रही समाई,
तीनि लोक जीत्या माया किनहूँ न खाई ॥
कहै कबीर पद लेहु बिचारी,
संसारि आइ माया किनहूं एक कही षारी ॥२३२॥

मन कै मैंलौ बाहरि ऊजलौ किसौ रे,
खाँडे की धार जन कौ धरम इसौ रे॥टेक॥
हिरदा कौ बिलाव नैंन बगध्यानी,
ऐसी भगति न होइ रे प्रानीं॥
कपट की भगति करै जिन कोई,
अंत की बेर बहुत दुख होई ॥
छाँड़ि कपट भजौ राँम राई,
कहै कबीर तिहूँ लोक बड़ाई॥२३३॥

चोखौ बनज ब्यौपार करीजै,
आइनैं दिसावरि रे राँम जपि लाहौ लीजै ॥टेक॥
जब लग देखौं हाट पसारा
उठि मन बणियों रे, करि ले बणज सवारा।
बेगे हो तुम्ह लाद लदाँनों,
औघट घाटा रे चलनाँ दूरि पयाँनाँ॥
खरा न खोटा नाँ परखानाँ,
लाहे कारनि रे सब मूल हिराँनाँ॥
सकल दुनीं मैं लोभ पियारा,
मूल ज राखै रे सोई बनिजारा ॥
देस भला परिलोक बिरांनां.
जन दोइ चारि नरे पूछौ साध मयाँनाँ॥

(२३१) ख--पूत जने जनि हारी।

सायर तीर न वार न पारा,
कहि समझावै रे कबीर बणिजारा ॥२३४॥

जौ मैं ग्याँन विचार न पाया,
तौ मैं यौं हीं जन्म गँवाया ॥टेक॥

यह संसार हाट करि जाँनूं, सबको बणिजण आया।
चेति सकै सो चेतौ रे भाई, मरिख मूल गँवाया ॥
थाके नैंन बैंन भी थाकै, थाकी सुंदर काया।
जाँमण मरण ए द्वै थाके, एक न थाकी माया।
चेति चेति मेरे मन चंचल, जब लग घट मैं सासा।
भगति जाव परभाव न जइयौ, हरि के चरन निवासा ॥
जे जन जाँनि जपैं जग जीवन, तिनका ग्याँन न नासा।
कहै कबीर वै कबहूँ न हारैं, जाँनि न ढारैं पासा ॥२३५॥

लावौं बाबा आगि जलावौ घरा रे,
ता कारनि मन धंधै परा रे ॥ टेक ॥

इक डाँइनि मेरे मन मैं बसै रे, नित उठि मेरे जिय को डसै रे।
या डाँइन्य के लरिका पाँच रे, निस दिन मोहि नचावैं नाच रे।
कहै कबीर हूं ताको दास, डाँइनि कै संगि रहै उदास ॥२३६॥

बंदे तोहि बंदिगी सौ काँम, हरि बिन जानि और हराँम।
दूरि चलणाँ कूंच वेगा, इहाँ नहीं मुकाँम ॥ टेक ॥
इहाँ नहीं कोई यार दोस्त, गाँठि गरथ न दाम।
एक एकै संगि चलणाँ, बीचि नहीं बिश्राँम ॥
संसार सागर बिषम तिरणाँ, सुमरि लै हरि नाँम।
कहै कबीर तहाँ जाइ रहणाँ, नगर बसत निधाँन ॥२३७॥

झूठा लोग कहैं घर मेरा।
जा घर माँहैं बोलै डोलै, सोई नहीं तन तेरा ॥टेक॥
बहुत बँध्या परिवार कुटुँब मैं, कोई नहीं किस केरा।
जीवित आँषि मूंदि किन देखौ, संसार अंध अँधेरा ॥
बस्ती मैं थैं मारि चलाया, जंगलि किया बसेरा।
घर कौ खरच खबरि नहीं भेजी, आप न कीया फेरा ॥
हस्ती घोड़ा बैल बाँहणो, संग्रह किया घणेरा।
भीतरि बीबी हरम महल मैं, साल मिया का डेरा ॥

बाजी की बाजीगर जाँनै कै बाजीगर का चेरा।
चेरा कबहूँ उझकि न देखै चेरा अधिक चितेरा॥
नौ मन सूत उरझि नहीं सुरझै, जनमि जनमि उरझेरा।
कहै कबीर एक राँम भजहु रे, बहुरि न ह्वैगा फेरा॥२३८॥

हावड़ि धावड़ि जनम गवावै,
कबहूँ न राँम चरन चित लावै॥ टेक॥
जहाँ जहाँ दाँम तहाँ मन धावै, अँगुरी गिनताँ रैनि बिहावै।
तृया का बदन देखि सुख पावै, साध की संगति कबहूँ न आवै॥
सरग के पंथि जात सब लोई सिर धरि पोट न पहुँच्या कोई।
कहै कबीर हरि कहा उबारै, अपणैं पाव आप जौ मारै॥२३९॥

प्रांणी काहे कै लोभ लागि, रतन जनम खोयौ।
बहुरि हीरा हाथि न आवै, राँम बिनाँ रोयौ॥ टेक॥
जल बूँद थैं ज्यानि प्यँड बाँध्या, अगिन कुंड रहाया।
दस मास माता उदरि राख्या, बहुरि लागी माया॥
एक पल जीवन की आसा नाहीं, जम निहारे सासा।
बाजीगर संसार कबीरा, जाँनि ढारौ पासा॥२४०॥

फिरत कत फूल्यौ फूल्यौ।
जब दस मास उरध मुखि होते, सो दिन काहे भूल्यौ॥ टेक॥
जौ जारै तौ होई भसम तन, रहत कृम ह्वै जाई।
काँचै कुंभ उद्यक भरि राख्यौ, तिनकी कौन बड़ाई॥
ज्यूँ माषी मधु संचि करि, जोरि जोरि धन कीनौ।
मूये पीछैं लेहु लेहु करि, प्रेत रहन क्यूँ दीनौ॥
ज्यूँ घर नारी संग देखि करि, तब लग संग सुहेलौ॥
मरघट घाट खैंचि करि राखे, वह देखिहु हंस अकेलौ॥
राँम न रमहु मदन कहा भूले, परत अँधेरै कूवा।
कहै कबीर सोई आप बँधायौ, ज्यूँ नलनी का सूवा॥२४१॥

जाइ रे दिन हीं दिन देहा,
करि लै बौरी राँम सनेहा॥ टेक॥
बालापन गयौ जोबन जासी, जुरा मरण भौ संकट आसी।
पलटे केस नैन जल छाया, मूरिख चेति बुढ़ापा आया॥
राँम कहत लज्या क्यूँ कीजे, पल पल आउ घटै तन छीजे।
लज्या कहै हूँ जम की दासी, एकैं हाथि मुदिगर दूजैं हाथि पासी॥
कहै कबीर तिनहूँ सब हारया, राँम नाम जिनि मनहुं बिसारया॥२४२॥

मेरी मेरी करताँ जनम गयौ,
जनम गयौ पर हरि न कह्यौ ।। टेक ।।
बारह बरस बालापन खोयौ, बीस बरस कछु तप न कयौ।
तीस बरस कै रांम न सुमिरयौ, फिरि पछितानौं बिरध भयौ ।।
सूकै सरवर पालि बँधावै, लुणें खेत हठि बाड़ि करै ।
आयौ चोर तुरंग मुसि ले गयौ, मोरी राखत मुगध फिरै ।।
सीस चरन कर कंपन लागे, नैंन नीर अस राल बहै ।
जिभ्या बचन सूध नहीं निकसैं, तब सुकरित की बात कहै ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतो धन संच्यो कछु संगि न गयौ।
आई तलब गोपाल राइ की, मैंडी मंदिर छाड़ि चल्यौ ।।२४३।।

जाहि जाती नाँव न लीया,
फिरि पछितावैगो रे जीया ।।टेक।।
धंधा करत चरन कर घाटे, आउ घटी तन खीना ।
बिषै बिकार -; त रुचि मांनी, माया मोह चित दीन्हाँ ।।
जागि जागि नर काहे सोवै, सोइ सोइ कब जागैगा।
जब घर भीतरि चोर पड़ैंगे, तब अंचलि किसकै लागैगा ।।
कहै कबीर सुनहु रे संतौ, करि त्यौ जे कछू करणाँ ।
लख चौरासी जोनि फिरौगे, बिनाँ रांम की सरनाँ ।।२४४।।

माया मोहि मोहि हित कीन्हाँ,
तायैं मेरो ग्याँन ध्याँन हरि लीन्हाँ ।। टेक ।।
संसार ऐसा सुपिन जैसा, जीव न सुपिन समाँन ।
साँच करि नरि गाँठि बाँध्यौ, छाड़ि परम निधांन ।।
नैंन नेह पतंग हुलसै, पसू, न पेखै आगि।
काल पासि जु मुगध बाँध्या, कलंक कांमिनी लागि ।
करि बिचार बिकार परहरि, तिरण तारण सोइ ।
कहै कबीर रघुनाथ भजि नर, दूजा नाँहीं कोइ ।।२४५।।

ऐसा तेरा झूठा मीठा लागा,
तायैं साचे सूं मन भागा ।।टेक।।
झूटे के घरि झूठा आया, झूठा खान पकाया ।
झूठी सहन क झूठा बाह्या, झूठै झूठा खाया ।।

(२४३) ख—मोरी बाँधत ।
(२४४) ख—धंधा करत करत कर थाके ।

झूठा ऊठण झूठा बैठण, झूठी सबै सगाई ।
झूठे के घरि झूठा राता, साचे को न पत्याई ॥
कहै कबीर अलह का पँगुरा, साचे सूँ मन लावो ।
झूठे केरी संगति त्यागौ, मन बंछित फल पावो ॥२४६॥

कौंण कौंण गया राम कौंण कौंण न जासी,
पड़सी काया गढ़ माटी थासी ॥ टेक ॥
इंद्र सरीखे गये नर कोडी, पाँचौं पांडौ सरिषी जोड़ी ।
धू अविचल नहीं रहसी तारा, चंद सूर की आइसी वारा ॥
कहै कबीर जग देखि संसारा, पड़सी घट रहसी निरकारा ॥२४७॥

तायैं सेविये नारांइणाँ,
प्रभू मेरौ दीनदयाल दया करणाँ ॥ टेक॥
जौ तुम्ह पंडित आगम जांणौं, बिद्या व्याकरणाँ ।
तंत मंत सब ओषदि जाणौं, अंति तऊ मरणाँ ॥
राज पाट स्यंघासण आसण, बहु सुंदरि रमणाँ ।
चंदन चीर कपूर बिराजत, अंति तऊ मरणाँ ।
जोगी जती तपी संन्यासी, बहु तीरथ भरमणाँ ।
लुंचित मुंडित मोनि जटाधर, अंति तऊ मरणाँ ॥
सोचि बिचारि सबै जग देख्या, कहूँ न ऊबरणाँ ।
कहै कबीर सरणाई आयौ, मेटि जामन मरणाँ ॥२४८॥

पांडे न करसि बाद बिवादं,
या देही बिना सबद न स्वादं ॥ टेक ॥
अंड ब्रह्मंड खंड भी माटी, माटी नवनिधि काया ।
माटी खोजत सतगुर भेटया, तिन कछू अलख लखाया ॥
जीवत माटी मूवा भी माटी, देखौ ग्यान बिचारी ।
अंति कालि माटी मैं बासा लेटै पाँव पसारी ॥
माटी का चित्र पवन का थंभा, ब्यंद संजोगि उपाया ।
भांनैं घड़ै सँवारै सोई, यहु गोब्यंद की माया ।
माटी का मंदिर ग्यान का दीपक, पवन बाति उजियारा ।
तिहि उजियारै सब जग सूझै, कबीर ग्यांन बिचारा ॥२४९॥

मेरी जिभ्या बिस्न नैन नारांइन, हिरदै जपौं गोबिंदा ।
जंम दुवार जब लेख मांग्या, तब का कहिसि मुकंदा ॥ टेक ॥
तूँ ब्राँह्मण मैं कासी का जुलाहा, चीन्हि न मोर गियाना ।
तैं सब मांगे भूपति राजा, मोरे रांम धियाना ॥

पूरब जनम हम ब्राँह्मन होते, वोछैं करम तप हीनाँ।
राँमदेव की सेवा चूका, पकरि जुलाहा कीन्हाँ।।
नौंमी नेम दसमी करि संजम, एकादसी जागरणाँ।
द्वादसीं दाँन पुन्नि की बेलाँ, सर्व पाप छयौ करणाँ।
भौ बूड़त कछू उपाय करीजै, ज्यूँ तिरि लंघै तीरा।
राँम नाँम लिखि मेरा बाँधौ, कहै उपदेस कबीरा।।२५०।।

कहु पाँडे सुचि कवन ठाँव,
जिहि घरि भोजन बैठि खाऊँ ।। टेक ।।
माता जूठी पिता पुनि जूठा जूठे फल चित लागे।।
जूठा आँवन जूठा जाँनाँ, चेतहु क्यूँ न अभागे।।
अन्न जूठा पाँनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अन्न परोस्या, जूठे जूठा खाया।।
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढीकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं बिकारा।।२५१।।

हरि बिन झूठे सब ब्यौहार,
केते कोऊ करौ गँवार।। टेक।।
झूठा जप तप झूठा ग्यांन, राँम राम बिन झूठा ध्यांन।
बिधि नखेद पूजा आचार, सब दरिया मैं वार न पार।।
इंद्री स्वारथ मन के स्वाद, जहाँ साच तहाँ माँडै बाद।
दास कबीर रह्या ल्यौ लाइ, मर्म कर्म सब दिये बहाइ।।२५२।।

चेतनि देखै रे जग धंधा,
राँम नाँम का मरम न जाँनैं, माया कै रसि अंधा।। टेक।।
जनमत हीरू कहा ले आयो, मरत कहा ले जासी।
जैसे तरवर बसत पँखेरू, दिवस चारि के बासी।।

(२५०) ख प्रति में इसके आगे यह पद है—

कहु पाँडे कैसी सुचि कीजै,
सुचि कीजै तौ जनम न लीजै ।। टेक ।।
जा सुचि केरा करहु बिचारा, भिष्ट भए लीन्हा औतारा ।।
जा कारणि तुम्ह धरती काटी, तामैं मूए जीव सौ साटी ।।
जा कारणि तुम्ह लीन जनेऊ, थूक लगाइ कातै सब कोऊ ।।
एक खाल घृत केरी साखा, दूजी खाल मैले घृत राखा ।।
सो घृत सब देवतनि चढ़ायौ, सोई घृत सब दुनियाँ भायौ ।।
कहै कबीर सुचि देहु बताई, राम नाँम लीजो रे भाई ।। ५० ।।

आपा थापि अवर की निंदैं, जन्मत हो जड़ काटी।
हरि को भगति बिना यहु देही, धब लोटै ही फाटी।।
काँम क्रोध मोह मद मछर, पर अपवाद न सुणियें।
कहै कबीर साध की संगति, राँम नाँम गुण भणियें।।२५३।।

रे जम नाँहि नवै व्यापारी,
जे भरैं जगाति तुम्हारी।। टेक।।
वसुधा छाड़ि बनिज हम कीन्हों, लाद्यो हरि को नाँऊँ।
राँम नाँम की गूँनि भराऊँ, हरि कै टाँडै जाँऊँ।।
जिनकै तुम्ह अगिवानी कहियत, सो पूँजी हँम पासा।
अबै तुम्हारौ कछु बल नाँहीं, कहै कबीरा दासा।।२५४।।

मींयाँ तुम्ह सौं बोल्याँ बणि नहीं आवै।
हम मसकीन खुदाई बंदे, तुम्हारा जस मनि भावै।। टेक।।
अलह अवलि दीन का साहिब, जार नहीं फुरमाया।
मुरिसद पीर तुम्हारै है को, कहौ कहाँ थैं आया।।
रोजा करै निवाज गुजारै, कलमैं भिसत न होई।
सतरि काबे इक दिल भीतरि, जे करि जानैं कोई।।
खसम पिछाँनि तरस करि जिय मैं माल मनी करि फीकी।
आपा जाँनि साँई कूँ जाँनै, तब ह्वै भिस्त सरीकी।।
माटी एक भेष धरि नाँनाँ, सब मैं ब्रह्म समानाँ।
कहै कबीर भिस्त छिटकाई, दाजग ही मन मानाँ।।२५५।।

अलह ल्यौ लाँयें काहे न रहिये,
अह निसि केवल राँम नाँम कहिये।। टेक।।
गुरमुखि कलमा ग्याँन मुखि छुरी, हुई हलाहल पचूँ पुरी।।
मन मसीति मैं किनहूँ न जाँनाँ, पंच पीर मालिम भगवानाँ।।
कहै कबीर मैं हरि गुन गाऊँ, हिंदू तुरक दोऊ समझाऊँ।।२५६।।

रे दिल खोजि दिलहर खोजि, नाँ परि परेसाँनीं माँहि।
महल माल अजीज औरति, कोई दस्तगीरी क्यूँ नाँहि।। टेक।।
पीराँ मुरीदाँ काजियाँ, मुलाँ अरू दरबेस।
कहाँ थें तुम्ह किनि कीये, अकलि है सब नेस।।
कुराना कतेबाँ अस पढ़ि पढ़ि, फिकरि या नहीं जाइ।
टुक दम करारी जे करै, हाजिराँ सूर खुदाइ।।

दरोगाँ बकि बकि हूँहिं खुसियाँ, वे अकलि बकहिं पुमाँहिं।
इक साच खालिक खालक म्यानैं, सो कछू सच सूरति माँहि ॥
अलह पाक तूँ नापाक क्यूँ, अब दूसर नाँहीं कोइ।
कबीर करम करीम का, करनीं करै जाँनैं सोइ ॥ २५७ ॥

खालिक हरि कहीं दर हाल।
पंजर जसि करद दुसमन, मुरद करि पैमाल ॥ टेक ॥
भिस्त हुसकाँ दोजगाँ दुंदर दराज दिवाल।
पहनाँम परदा ईत आतस, जहर जंगम जाल ॥
हम रफत रहबरहु समाँ, मैं खुर्दा सुमाँ बिसियार।
हम जिमीं असमाँन खालिक, गुंद मुसिकल कार ॥
असमाँन म्यानैं लहंग दरिया, तहाँ गुसल करदा बूद।
करि फिकर रह सालक जसम, जहाँ स तहाँ मौजूद ॥
हँम चु बूंदनि बूंद खालिक, गरक हम तुम पेस।
कबीर पहन खुदाइ की, रह दिगर दावानेस ॥ २५८ ॥

अलह रांम जीऊँ तेरे नाँई,
बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे साँईं ॥ टेक ॥
क्या ले माटी भुंइ सूँ मारैं क्या जल देइ न्हवायें।
जो करैं मसकीन सतावै, गुंन हीं रहै छिपायें ॥
क्या तू जू जप मंजन कीये, क्या मसीति सिर नाँयें।
रोजा करैं निमाज गुजारैं, क्या हज काबै जाँयें ॥
ब्राह्मण ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी महरम जाँन।
ग्यारह मास जुदे क्यू कीये, एकहि माँहि समाँन ॥
जौ रे खुदाइ मसीति वसत हैं, और मुलिक किस केरा।
तीरथ मूरति राँम निवासा, दुहु मैं किनहूँ न हेरा ॥
पूरिब दिसा हरी का बासा, पछिम अलह मुकाँमा।
दिल ही खोजि दिलैं दिल भीतरि, इहां रांम रहिमाँनाँ ॥
जेती औरति मरदाँ कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा।
कबीर पंगुड़ा, अलह राँम का, हरि गुर पीर हमारा ॥२५९॥

(२५७) 'क' प्रति में आठवीं में पंक्ति का पाठ इस प्रकार है—
साचु खलक खालक, सैल सूरति माँहि ॥
(२५९) ख—सब मैं नूर तुम्हारा।

मैं बड़ मैं बड़ मैं बड़ माटी,
मण दसना जट का दस गाँठी ॥ टेक ॥
मैं बाबा का जध कहाऊँ, अपणीं मारी नीद चलाऊँ ।
इनि अहंकार घणें घर घाले, नाचत कूदत जमपुरि चाले ॥
कहै कबिर करता हीं बाजी, एक पलक मैं राज बिराजी ॥२६०॥

काहे बीहौ मेरे साथी, हूँ हाथी हरि केरा ।
चौरासी लख जाके मुख मैं, सो च्यंत करेगा मेरा ॥ टेक ॥
कहौ कौन षिबै कहौ कौन गाजै, कहा थैं पांणी निसरै ।
ऐसी कला अनंत हैं जाकै, सो हँम कौं क्यूँ बिसरै ॥
जिनि ब्रह्मांड रच्यौ बहु रचना, बाब बरन ससि सूरा ।
पाइक पंच पुहमि जाकै प्रकटै, सो क्यूँ कहिये दूरा ॥
नैन नासिका जिनि हरि सिरजे, बसन बसन बिधि काया ।
साधू जन कौं सो क्यूँ बिसरै, ऐसा है राँम राया ॥
को काहू का मरम न जानैं, मैं सरनाँगति तेरी ।
कहै कबीर बाप राँम राया, हुरमति राखहु मेरी ॥२६१॥

(राग सोरठि)

हरि को नाँम न लेइ गँवारा,
क्या सोचै बारंबारा ॥ टेक ॥
पंच चोर गढ़ मंझा, गढ़ लूटैं दिवस रे संझा ॥
जौ गढ़पति मुहकम होई, तौ लूटि न सकै कोई ॥
अँधियारै दीपक चहिए, तब बस्त अगोचर लहिये ॥
जब बस्त अगोचर पाई, तब दीपक रह्या समाई ॥
जौ दरसन देख्या चहिये, तौ दरपन मंजत रहिये ॥
जब दरपन लागै काई, तब दरसन किया न जाई ॥
का पढ़िये का गुनिये, का बेद पुराना सुनिये ॥
पढ़े गनें मति होई, मैं सहजैं पाया सोई ॥
कहै कबीर मैं जाँनाँ, मैं जाँनाँ मन पतियानाँ ॥
पतियानाँ जौ न पतीजै, तौ अंधै कूँ का कीजै ॥२६२॥

अंधे हरि बिन को तेरा,
कवन सूँ कहत मेरी मेरा ॥ टेक ॥
तजि कुलाक्रम अभिमाँनाँ, झूठे भरमि कहा भुलानाँ ॥
झूठे तन की कहा बड़ाई, जे निमष माँहि जरि जाई ॥

जब लग मनहिं बिकारा, तब लगि नहीं छूटै संसारा ॥
जब मन निरमल करि जाँनाँ, तब निरमल माँहि समानाँ ॥
ब्रह्म अगनि ब्रह्म सोई. अब हरि बिन और न कोई ॥
जब पाप पुंनि भ्रँम जारी, तब भयौ प्रकास मुरारी ॥
कहै कबीर हरि ऐसा, जहाँ जैसा तहाँ तैसा ॥
भूलै भरमि परै जिनि कोई राजा राँम करै सो होई ॥२६३॥

मन रे सर्यौ न एकौ काजा,
ताथैं भज्यौ न जगपति राजा ॥ टेक ॥

वेद पुराँना सुमृत गुन पढ़ि पढ़ि गुनि भरम न पावा ।
संध्या गायत्री अरु षट करमाँ, तिन थैं दूरि बतावा ॥
बनखंडि जाइ बहुत तप कीन्हाँ, कंद मूल खनि खावा ।
ब्रह्म गियाँनी अधिक धियाँनी, जंम कै पटै लिखावा ॥
रोजा किया निवाज गुजारी, बंग दे लोग सुनावा ।
हिरदै कपट मिलै क्यूँ साँई, क्या हज काबै जावा ॥
पहरचौ काल सकल जग ऊपरि, माँहि लिखे सब ग्याँनीं ।
कहै कबीर ते भये षालसे, राम भगति जिनि जाँनीं ॥२६४॥

मन रे जब तैं राम कह्यौ,
पीछे कहिबे कौ कछू न रह्यौ ॥ टेक ॥

का जोग जगि तप दाँनाँ, जौ तैं राम नाँम नहीं जाँना ॥
काँम क्रोध दोऊ भारे, ताथैं गुरु प्रसादि सब जारे ॥
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा राम मिले अविनासी ॥२६५॥

राँम राइ सो गति भई हमारी,
मो पै छूटत नहीं संसारी ॥ टेक ॥

यूँ पंखी उड़ि जाइ आकासाँ, आस रही मन माँहीं ॥
छूटी न आस टूटचौ नहीं फंधा उडिबौ लागौ काँहीं ॥
जो सुख करत होत दुख तेहीं कहत न कछु बनि आवै ।
कुंजर ज्यूँ कस्तूरी का मृग, आपै आप बंधावै ॥
कहै कबीर नहीं बस मेरा, सुनिये देव मुरारी ।
इन भैभीत डरौं जम दूतनि, आये सरनि तुम्हारी ॥२६६॥

राँम राइ तूँ ऐसा अनभूत अनूपम, तेरी अनभै थैं निस्तरिये ॥
जे तुम्ह कृपा करौ जगजीवन, तौ कतहूँ न भूलि न परिये ॥टेक॥

हरि पद दुरलभ अगम अगोचर, कथिया गुर गमि बिचारा ।
जा कारंनि हम ढूंढत फिरते, आथि भरचौ संसारा ॥

प्रगटीं जोति कपाट खोलि दिये, दगधे जंम दुख द्वारा।
प्रगटे बिस्वनाथ जगजीवन, मैं पाये करत बिचारा॥
देख्यन एक अनेक भाव है, लेखत जात अजाती।
बिह कौ देव तजि ढूढँत फिरते मंडप पूजा पाती॥
कहै कबीर करुँणामय किया, देरी गलियाँ बहु बिस्तारा॥
राँम कै नाँव परम पद पाया छूटै बिघन बिकारा॥२६७॥

राम राइ को ऐसा बैरागी,
हरि भजि मगन रहै बिष त्यागी॥ टेक॥
ब्रह्मा एक जिनि सृष्टि उपाई, नाँव कुलाल धराया।
बहु बिधि भाँडै उनहीं घड़िया, प्रभू का अंत न पाया॥
तरवर एक नाँनाँ बिधि फलिया, ताकै मूल न साखा॥
भौजलि भूलि रह्या रे प्राणीं सो फल कदे न चाखा॥
कहै कबीर गुर बचन हेत करि, और न दुनियाँ आथी॥
माटीं का तन माँटीं मिलिहै, सबद गुरू का साथी॥२६८॥

नैक निहारि हो माया बीनती करै,
दीन बचन बोलै कर जोरै, फुनि फुनि पाइ परै॥ टेक॥
कनक लेहु जेता मनि भावै, कामिन लेहु मन हरनीं।
पुत्र लेहु बिद्या अधिकारी राज लेहु सब धरनीं॥
अठि सिधि लेहु तुम्ह हरि के जनाँ नवैं निधि है तुम्ह आगैं॥
सुर नर सकल भवन के भूपति, तेऊ लहै न मागैं॥
तैं पापणीं सबै संघारे काकौ काज सँवारचौ॥
जिनि जिनि संग कियौ है तेरौ को बेसासि न मार्यौ॥
दास कबीर राँम कै सरनैं छाड़ी झूठी माया।
गुर प्रसाद साध की संगति, तहाँ परम पद पाया॥३६९॥

तुम्ह घरि जाहु हँमारी बहनाँ,
बिष लागै तुम्हरे नैना॥ टेक॥
अंजन छाड़ि निरंजन राते नाँ किसही का दैनाँ।
बलि जाऊँ ताकी जिनि तुम्ह पठई एक माइ एक बहनाँ॥
राती खाँडी देख कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ॥
सरग लोक थैं हम चलि आई, करत कबीर भरतारौं॥
सर्ग लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम्ह आई कलि माँही।
जाति जलाहा नाम कबीरा, अजहुँ पतीजौ नाँही॥

तहाँ जाहु जहाँ पाट पटंबर, अगर चंदन घसि लीनां।
आइ हमारै कहाँ करौगी, हम तौ जाति कमीनां॥
जिनि हँम साजे सांज्य निवाजे बाँधे काचै धागै।
जे तुम्ह जतन करो बहुतेरा, पाँणी आगि न लागै॥
साहिब मेरा लेखा मागै लेखा क्यूँ करि दीजै।
जे तुम्ह जतन करो बहुतेरा, तौ पाँइण नीर न भीजै॥
जाकी मैं मछी मो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊँ, तो राजाँ राँम रिसालू॥
जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी।
आसि पासि तुम्ह फिरि फिरि बैसो, एक माउ एक मासी॥२७०॥

ताकूँ रे कहा कीजै भाई,
तजि अंमृत बिषै सूँ ल्यो लाई॥ टेक॥
बिष संग्रह कहा सुख पाया,
रंचक सुख कौं जनम गँवाया॥
मन बरजै चित कह्यो न करई,
सकति सनेह दीपक मैं परई॥
कहत कबीर मोहि भगति उमाहा,
कृत करणी जाति भया जुलाहा॥२७१॥

रे सुख इब मोहि बिष भरि लगा
इनि सुख डहके मोटे मोटे छत्रपति राजा॥ टेक॥
उपजै बिनसै जाइ बिलाई संपति काहु के संगि न जाई॥
धन जोबन गरब्यो संसारा, यहु तन जरि बरि ह्वैहै छारा।
चरन कवल मन राखि ले धीरा, राम रमत सुख कहै कबीरा॥२७२॥

इब न रहूँ माटी के घर मैं,
इब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि मैं॥ टेक॥
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कंपै मेरी छाती॥
दसवैं द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी॥
चहुँ दिसि बैठे चारि पहरिया, जागत मुसि गये मोर नगरिया॥
कहै कबीर सुनहु रे लोई, भाँनड़ घड़ण सँवारण सोई॥२७३॥

कबीर बिगरचा राम दुहाई,
तुम्ह जिनि बिगरौ मेरे भाई॥ टेक॥
चंदन कै ढिग बिरष जु भैला, बिगरि बिगरि सो चंचल ह्वैला॥
पारस कौं जे लोह छिवैगा, बिगरि बिगरि सो कंचन ह्वैला॥

गंगा मैं जे नीर मिलैगा, बिगरि बिगरि गंगोदिक ह्वैला ॥
कहै कबीर जे रांम कहैला, बिगरि बिगरि सो राँमहि ह्वैला॥२७४॥

रांम राइ भई बिकल मति मोरी,
कै यहु दुनी दिवानी तेरी ॥ टेक ॥
जे पूजा हरि नाही भावै सो पूजनहार चढ़ावै ॥
जिहि पूजा हरि भल मानैं, सो पूजनहार न जाँनै ॥
भाव प्रेम की पूजा, ताथैं भयो देव थैं दूजा ॥
का कीजै बहुत पसारा, पूजी जे पूजनहारा ॥
कहै कबीर मैं गावा, मैं गावा आप लखावा ॥
जो इहि पद माँहि समाना, सो पूजनहार सयाँना ॥२७५॥

राम राइ भई बिगूचनि भारी,
भले इन ग्याँनियन थैं संसारी ॥ टेक ॥
इक तप तीरथ औंगाहैं इक मानि महातम चाँहै ॥
इक मैं मेरी मैं बीझै, इक अहंमेव मैं रीझै ॥
इक कथि कथि भरम जगाँवैं, सँमिता सी बस्त न पावैं
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन दीजै ॥२७६॥

काया मंजसि कौन गुनाँ,
घट भीतरि है मलनाँ ॥ टेक ॥
जौ तूँ हिरदै सुध मन ग्यानीं, तौ कहा बिरोलै पाँनी ।
तूँबी अठसठि तीरथ न्हाई, कड़वापन तऊ न जाई ॥
कहै कबीर बिचारी, भवसागर तारि मुरारी ॥ २७७॥

कैसे तूँ हरि कौ दास कहायौ,
करि बहु भेषर जनम गँवायौ ॥ टेक ॥
सुध बुध होइ भज्यौ नहिं साँईं काछ्यो ड्यँभ उदर कै ताँईं ॥
हिरदै कपट हरि सूँ नहीं साँचौ, कहा भयो जे अनहद नाच्यौ ॥
झूठे फोकट कलू मँझारा, राम कहै ते दास नियारा ॥
भगति नारदी मगन सरीरा, इहि बिधि भव तिरि कहै कबीरा ॥२७८॥

राँम राइ इहि सेवा भल माँनै,
जै कोई राँम नाँम तन जाँनैं ॥ टेक ॥
दे नर कहा पषालै काया, सो तन चीन्हि जहाँ थैं आया ॥
कहा बिभूति अटा पट बाँधें, का जल पैसि हुतासन साधें ॥
राँममाँ दोई आखिर सारा, कहै कबीर तिहुँ लोक पियारा ॥२७९॥

इहि बिधि राँम सूं ल्यौ लाइ ।
चरन पाषें निरति करि, जिभ्या बिना गुंण गाइ ॥ टेक ॥
जहाँ स्वाँति बूंद न सीप साइर सहजि मोती होइ ।
उन मोतियन में नीर पोयाँ पवन अंबर धोइ ॥
जहाँ धरनि बरषै गगन भीजै, चंद सूरज मेल ।
दोइ मिलि तहाँ जुड़न लागे, करता हंसा केलि ॥
एक बिरष भीतरि नदी चाली, कनक कलस समाइ ।
पंच सुवटा आइ बैठे, उदै भई बनराइ ॥
जहाँ बिछट्यो तहाँ लाग्यौ, गगन बैठो जाइ ।
जन कबीर बटाऊवा, जिनि मारग लियौ चाइ ॥२८०॥

ताथैं मोहि नाचबौ, न आवै,
मेरो मन मंदला न बजावै ॥ टेक ॥
ऊभर था ते सूभर भरिया, त्रिष्णां गागरि फूटी ।
हरि चिंतत मेरो मंदला भीनौं, भरम भोयन गयौ छूटी ॥
ब्रह्म अगनि मैं जरी जु ममिता, पाषंड अरु अभिमानाँ ।
काम चोलना भया पुराना, मोपैं होइ न आना ॥
जे बहु रूप कीये ते किये, अब बहु रूप न होई ।
थाकी सौंज संग के बिछुरे, राम नाँम मसि धोई ॥
जे थे सचल अचल ह्वै थाके, करते बाद बिबादं ।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, भय राम परसादं ॥२८१॥

अब क्या कीजै ग्यान बिचारा,
निज निरखत गत ब्यौहारा ॥ टेक ॥
जाचिग दाता इक पाया धन दिया जाइ न खाया ॥
कोई ले भरि सकै न मूका, औरनि पैं जानाँ चूका ।
तिस बाझ न जीव्या जाई, वो मिलै त घालै खाई ॥
वो जीवन भला कहाहीं, बिन मूवाँ जीवन नाहीं ॥
घसि चंदन बनखंडि बारा, बिन नैंननि रूप निहारा ।
तिहि पूत बाप इक जाया, बिन ठाहर नगर बसाया ॥
जौं जीवत ही मरि जानैं तौ पंच सयल सुख मानैं ।
कहै कबीर सो पाया, प्रभू भेटन आप गँवाया ॥२८२॥

अब मैं पायौ राजा राम सनेही ॥ टेक ॥
जा बिनु दुख पावै मेरी देही ॥ टेक ॥
वेद पुरान कहत जाकी साखी, तीरथि ब्रति न छूटै जंम की पासी ॥

जाथैं जनम लहत नर आगैं, पाप पुंनि दोऊ भ्रम लागै ॥
कहै कबीर सोई तत जागा, मन भया मगन प्रेम सर लागा ॥२८३॥

बिरहिनी फिरै है नाम अधीरा,
उपजि बिनाँ कछू समझि न परई, बाँझ न जानै पीरा ॥ टेक ॥
या बड़ बिथा सोई भल जाँनै राँम बिरह सर मारी ।
कैसो जाँनै जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी ॥
सँग की बिछुरी मिलन न पावै सोच करै अरु काहै ।
जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै राँम कूँ चाहै ॥
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोही राम मिलावै ।
दास कबीर मीन ज्यूँ तलपै, मिलै भलैं सचु पावै ॥२८४॥

जातनि बेद न जानैगा जन सोई,
सारा भरम न जाँनै राँम कोई ॥ टेक ॥
चषि बिन दिवस जिसी है संझा,
ब्यावन पीर न जानै बंझा ॥
सूझै करक न लागै कारी,
बैद बिधाता करि मोहि सारी ॥
कहै कबीर यहु दुख कासनि कहिये,
अपने तन की आप ही सहिये ॥२८५॥

जन की पीर हो राजा राम भल जाँनै,
कहूँ काहि को मानै ॥ टेक ॥
नैन का दुःख बैन जाँनैं, बैन को दुख श्रवनाँ ।
प्यंड का दुख प्रान जानै, प्रान का दुख मरनाँ ॥
आस का दुख प्यासा जानै, प्यास का दुख नीर ।
भगति का दुख राम जानैं, कहै दास कबीर ॥२८६

तुम्ह बिन राँम कवन सौं कहिये,
लागी चोट बहुत दुख सहिये ॥ टेक ॥
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जानैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ॥

(२८७) ख प्रति के अंतिम पंक्ति इस प्रकार है—
लागी चोट बहुत दुख सहिये । देखो २८७ की टेक ।

तुम्ह से बैद न हमसे रोगी, उपजी बिथा कैसै जीवै बियोगी ॥
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले राँम राई ॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूँ जीवहि मुरारी ॥ २८७ ॥

तेरा हरि नाँमैं जुलाहा,
मेरे राँम रमण की लाहा ॥ टेक ॥
दस सै सूत की पुरिया पूरी, चंद सूर दोइ साखी ।
अनत नाँव गिनि लई मजूरी, हिरदो कवल मैं राखी ॥
सुरति सुमृति दोइ खूँटी कीन्हीं आरंभ कीया बमेकी ।
ग्यान तत की नली भराई बुनित आतमा पेषी ॥
अबिनासी धंन लई मँजूरी, पूरी थापनि पाई ।
रस बन सोधि सोधि सब आये, निकटै दिया बताई ॥
मन सूधा को कूच कियौ है, ग्यान बिथरनी पाई ।
जीव की गाँठि गुढी सब भागी, जहाँ की तहाँ ल्यौ लाई ॥
बैठि बेगारि बुराई थाकी, अनभै पद परकासा ।
दास कबीर बुनत सच पाया, दुख संसार सब नासा ॥ २८८ ॥

भाई रे सकहु त तनि बुनि लेहु रे,
पीछै राँमहि दोस न देहु रे ॥ टेक ॥
करगहि एकै बिनाँनी, ता भीतरि पंच पराँनीं ॥
तामैं एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी ॥
जे तूँ चौसठि बरिया धावा, नहीं होइ पंच सूँ मिलाँवा ॥
जे तैं पाँसै छसै ताँणी, तौ सुख सूँ रहै पराँणीं ॥
पहलो तणियाँ ताणाँ पीछै बुणियाँ बाँणाँ ॥
तणि बुणि मुरतब कीन्हाँ, तब राम राइ पूरा दीन्हाँ ॥
राछ भरत भइ संझा, तारुणीं त्रिया मन बंधा ॥
कहै कबीर बिचारा, अब छोछी नली हँमारी ॥ २८९ ॥

वै क्यूँ कासी तजैं मुरारी,
तेरी सेवा चोर भये बनवारी, ॥ टेक ॥
जोगी जती तपी सन्यासी, मठ देवल बसि परसैं कासी ॥
तीन बार जे नित प्रति न्हावै, काया भीतरि खबरि न पावै ॥
देवल देवल फेरी देहीं, नाँव निरंजन कबहुँ न लेहीं ॥
चरन बिरद कासी कौं न देहूँ, कहै कबीर भल नरकहि जैहूँ ॥ २९० ॥

तब काहे भूलौ बनजारे,
अब आयौ चाहै संगि हँमारे ।। टेक ।।

जब हँम बनजी लौंग सुपारी. तब तुम्ह काहे बनजी खारी ।
जब हम बनजी परमल कस्तूरी, तब तू काहे बनजी कूरी ।।
अंमृत छाड़ि हलाहल खाया, लाभ लाभ करि करि मूल गँवाया ।
कहैं कबीर हँम बनज्या सोई, जाँथैं आवागमन न होई ।। २९१ ।।

परम गुर देखो रिदै बिचारी,
कछू करौ सहाई हमारी ।। टेक ।।

लवानालि तंति एक सँमि करि जंत्र एक भल साजा ।
सति असति कछु नाहीं जानूँ, जैसे बजवा तैसें बाजा ।।
चोर तुम्हारा तुम्हारी आग्या, मुसियत नगर तुम्हारा ।
इनके गुनह हमह का पकरौ, का अपराध हमारा ।।
सेई तुम्ह सेई हम एकै कहियत, जब आपा पर नाहीं जाँनाँ ।।
ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै, कहै कबीर मन माँनाँ ।। २९२ ।।

मन रे आइर कहाँ गयौ,
ताथैं मोहि बैराग भयौ ।। टेक ।।

पंच तत ले काया कीन्हीं, तत कहा ले कीन्हाँ ।
करमौं के बसि जीव कहत है, जीव करम किनि दीन्हाँ ।।
आकास गगन पाताल गगन दसौं दिसा गगन रहाई ले ।
आँनँद मूल सदा परसोतम, घट बिनसैं गगन न जाई ले ।।
हरि मैं तन हैं तन मैं हरि है, है पुनि नाँही सोई ।।
कहै कबीर हरि नाँम न छाडूं सहजैं होई सो होई ।।२९३।।

हँमारै कौंन सहै सिरि भारा,
सिर की शोभा सिरजनहारा ।। टेक ।।

टेढी पाग बड जूरा, जरि भये भसम कौ कूरा ।।
अनहद कीगुरी बाजी, तब काल द्रिष्टि भै भागी ।।
कहै कबीर राँम राया, हरि कै रँगैं मूड़ मुड़ाया ।।२९४।।

कारनि कौंन सँवारै देहा
यहु तनि जरि बरि ह्वैहै षेहा ।। टेक ।।

चोवा चंदन चरचत अंगा, सो तन जरत काठ के संगा ।।
बहुत जतन करि देह मुटचाई, अगिन दहै कै जंबुक खाई ।।
जा सिरि रचि रचि बाँधत पागा, ता सिरि चंच सँवारत कागा ।।
कहि कबीर सब झूठा भाई, केवल राम रह्यौ ल्यौ लाई ।।२९५।।

धँन धंधा ब्यौहार सब, माया मिथ्याबाद।
पाँणीं नीर हलूर ज्यूं, हरि नाँव बिना अपवाद ॥टेक॥
इक राँम नाँम निज साचा, चित चेति चतुर घट काचा ॥
इस भरमि न भूलसि भोली, बिधना की गति है औली ॥
जीवते कूँ मारन धावैं, मरते कौं बेगि जिलावैं ॥
जाकै हुँहि जम से बैरी, सो क्यूँ न सोवै नींद घनेरी ॥
जिहि जागत नींद उपावै, तिहि सोवत क्यू न जगावै ॥
जलजंत न देखिसि प्रानीं, सब दीसै झूठ निदानी ॥
तन देवल ज्यूँ धज आछै, पड़ियाँ पछितावै पाछै ॥
जीवत हीं कछू कीजै, हरि राँम रसाइन पीजै ॥
राँम नाँम निज सार है माया लागि न खोई ॥
अंति कालि सिरि पोटली, ले जात न देख्या कोई ॥
कोई ले जात न देख्या, बलि बिक्रम भोज ग्रस्या ॥
काहू कै संगि न राखी, दीसै बीसल की साखी ॥
जब हंस पवन ल्यौ खेलै, पसरचो हाटिक जब मेलै ॥
मानिख जनम अवतारा, नाँ ह्वैहै बारंबारा ॥
कबहूँ ह्वै किसा बिहाँनाँ, तर पंखी जेम उड़ानाँ ॥
सब आप आप कूँ जाई, को काहू मिलै न भाई ॥
मूरिख मनिखा जनम गँवाया, बर कौडी ज्यूं डहकाया ॥
जिहि तन धन जगत भुलाया, जग राख्यौ परहरि माया ॥
जल अंजुरी जीवन जैसा, ताका है किसा भरोसा ॥
कहै कबीर जग धधा, काहे न चेतहु अंधा ॥२६६॥

रे चित चेति च्यंति लै ताहीं,
जा च्यंतत आपा पर नाँहीं ॥ टेक ॥
हरि हिरदै एक ग्यांन उपाया, ताथैं छूटि गई सब माया ॥
जहाँ नाँद न ब्यंद दिवस नहीं राती, नहीं नरनारि नहीं कुल जाती ॥
कहै कबीर सरब सुख दाता, अविगत अलख अभेद बिधाता ॥२६७॥

सरवर तटि हंसणीं तिसाई
जुगति बिनाँ हरि जल पिया न जाई ॥टेक॥
पीया चाहै तौ लै खग सारी, उड़ि न सकै दोऊ पर भारी ॥
कुंभ लीयैं ठाढी पनिहारी, गुण बिन नीर भरै कैसैं नारी ॥
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिले राँम राई ॥२६८॥

भरथरी भूप भया बैरागी।
बिरह बियोग बनि बनि ढूंढै, वाकी सुरति साहिब सौं लागी ।।टेक।।
हसती घोड़ा गाँव गढ़ गूडर, कनडा पा इक आगी।
जोगी हूवा जाँणि जग जाता, सहर उजीणीं त्यागी ।।
छत्र सिघासण चवर ढुलंता राग रंग बहु आगी ।।
सेज रमैंणीं रंभा होती, तासौं प्रीत न लागी।
सूर बीर गाढ़ा पग रोप्या. इह बिधि माया त्यागी।
सब सुख छाड़ि भज्या इक साहिब, गुरु गोरख ल्यौ लागी ।।
मनसा बाचा हरि हरि भाखै, ग्रंध्रप सुत बड़ भागी।
कहै कबीर कुदर भजि करता, अमर भए अणंरागी ।।२९९।।

(राग केदारौ)

सार सुख पाइये रे,
रंगि रमहु आतमाँराँम ।। टेक ।।
बनह बसे का कीजिये, जे मन नहीं तजै बिकार।
घर बन तत समि जिनि किया, ते बिरला संसार ।।
का जटा भसम लेपन कियें, कहा गुफा मैं बास।
मन जीत्याँ जग जीतिये, जौ बिषया रहै उदास ।।
सहज भाइ जे ऊपजै, ताका किसा माँन अभिमान।
आपा पर समि चीनियैं, तब मिलै आतमाँ राम ।।
कहै कबीर कृपा भई, गुर ग्यान कह्या समझाइ।
हिरदै श्री हरि भेटियै, जे मन अनतै नहीं जाइ ।।३००।।

है हरि भजन कौ प्रवाँन।
नीच पाँवै ऊँच पदवी, बाजते नींसान ।।टेक।।
भजन कौ प्रताप ऐसो, तिरे जल पाषान।
अधम भील अजाति गनिका, चढ़ जात बिवाँन ।।
नव लख तारा चलै मंडल, चलै ससिहर भाँन।
दास धू कौं अटल पदवी राँम को दीवाँन ।।
निगम जाकी साखि बोलैं, कहै संत सुजाँन।
जन कबीर तेरी सरनि आयौ, राखि लेहु भगवाँन ।।३०१।।

(२९९) ख प्रति में यह पद नहीं है।

चलौ सखी जाइये तहाँ,
जहाँ गयें पाँइयें परमानंद ॥ टेक ॥
यहु मन ग्रामन घूमनां, मेरो तन छीजत नित जोइ।
च्यंतामरिण चित चोरियौ, ताथैं कछू न सुहाइ ॥
सुंनि लखी सुपनैं की गति ऐसी, हरि ग्राए हम पास।
सोवत हीं जगाइया, जागत भए उदास ॥
चलु सखी बिलम न कीजिये, जब लग साँस सरीर।
मिलि रहिये जगनाथ सूँ, सूँ कहै दास कबीर ॥३०२॥

मेरे तन मन लागी चोट सठौंरी।
बिसरे ग्यान बुधि सब नाठी, भई बिकल मति बौंरी ॥ टेक ॥
देह बदेह गलित गुन तीनूँ, चलत ग्रचल भई ठौंरी ॥
इत उत जित कित द्वादस चितवत, यहु भई गुपत ठगौंरी ॥
सोई पै जांनै पीर हमारी, जिंहि सरीर यहु ब्यौंरी।
जन कबीर ठग ठग्यौं है बापुरौं, सुंनि सँमानी त्यौंरी ॥३०३॥

मेरी ग्राँखियाँ जान सुजाँन भई।
देवर भरम सुसर संग तजि करि, हरि पीव तहाँ गई। टेक ॥
बालपनैं के करम हमारे काटे जानि दई।
बाँह पकरि करि कृपा कीन्हीं, ग्राप समीप लई ॥
पानीं की बूंद थें जिनि प्यंड साज्या, तासंगि ग्रधिक करई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई ॥३०४॥

हो बलियाँ कब देखोंगी तोहि।
ग्रह निस ग्रातुर दरसन कारनि, ऐसी व्यापै मोहि ॥ टेक ॥
नैंन हमारे तुम्ह कूँ चाँहै, रती न मानैं हारि।
बिरह ग्रगनि तन ग्रधिक जरावै ऐसी लेहु बिचारि ॥
सुनहुँ हमारी दादि गुसाँई, ग्रब जिन करहु वधीर।
तुम्ह धीरज मैं ग्रातुर स्वामीं, काचै भाँडै नीर ॥
बहुत दिनन कै बिछुरे माधौं, मन नहीं बाँधै धीर।
देह छताँ तुम्ह मिलहु कृपा करि, ग्रारतिवंत कबीर ॥३०५॥

वै दिन कब ग्रावैंगे भाइ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ ग्रंगि लगाइ ॥ टेक ॥
हौं जाँनूं जे हिल मिलि खेलूँ, तन मन प्राँन समाइ।
या कांमनाँ करौ परपूरन, समरथ हौ राँम राइ ॥

माँहि उदासी साधौ चाहै, चितवन रैंनि बिहाइ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊँ तब खाइ॥
यहु अरदास दास की सुँनिये, तन की तपति बुझाइ।
कहै कबीर मिलै जे साँई, मिलि करि मंगल गाइ॥३०६॥

बाल्हा आव हमारे गेह रे,
तुम्ह बिन दुखिया देह रे॥ टेक॥
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे॥
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह वन धरै न धीर रे।
ज्यूँ काँमी कौं काम पियारा, ज्यूँ प्यासे कूँ नीर रे॥
है कोइ ऐसा परउपगारी, हरि सूँ कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाइ रे॥३०७॥

माधौ कब करिहौ दाया।
काम क्रोध अहंकार ब्यापैं, नाँ छूटै माया॥ टेक॥
उतपति ब्यंद भयौ जा दिन थै, कबहूँ सच नहीं पायौ।
पंच चोर सगि लाइ दिए हैं, इन संगि जनम गँवायौ॥
तन मन डस्यौ भुजंग भाँमिनी, लहरी वार न पारा।
सो गारडू मिल्यौ नहीं कबहूँ, पसरचौ बिष बिकराला॥
कहै कबीर यहु कासूँ कहिये, यह दुख कोई न जानैं।
देहु दीदार बिकार दूरि करि, तब मेरा मन मानैं॥३०८॥

मैं बन भूला तूँ समझाइ।
चित चंचल रहै न अटक्यौ, बिषै बन कूँ जाइ। टेक॥
संसार सागर माँहि भूल्यौ, थक्यौ करत उपाइ।
मोहनी माया बाघनी थैं, राखि लै राँम राइ॥
गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ।
कहै कबीर यहु काँम रिप है, मारै सबकूँ ढाइ॥३०९॥

भगति बिन भौंजलि डूबत है रे।
बोहिथ छाड़ि बैसि करि डूंडै, बहुतक दुख सहै रे॥ टेक॥
बार बार जम पैं डहकावै हरि कौ ह्वै न रहै रे।
चोरी के बालक की नाईं, कासूँ बाप कहै रे॥

(३०८) ख—लहरी अंत न पारा।

नलिनीं के सुवटा की नाँई, जग सूँ राचि रहै रे।
वंसा अपनि बंस कुल निकसै, आपहि आप दहै रे।।
खेवट बिनाँ कवन भौ तारै, कैसे पार गहै रै।
दास कबीर कहै समझावै, हरि की कथा जीवै रे।।
राँम कौ नाँव अधिक रस मीठौं, बरंबार पीवै रे।।३१०।।

चलत कत टेंढौ टेढौ रे।
नऊँ दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि को बैढौ रे।।
जे जारै तौ होई भसमतन रहित किरम जल खाई।
सूकर स्वांन काग कौ भखिन, तामैं कहा भलाई।।
फूटे नैन हिरदै नाहीं सूझै, मति एकै नहीं जाँनी।
माया मोह ममिता सूँ बाँध्यौ बूडि मूवौ बिन पाँनी।।
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयाँनाँ।
कहै कबीर एक राँम भगती बिन, बूड़े बहुत सयाना।। ३११।।

अरे परदेसी पीव पिछाँनि।
कहा भयौ तोकौं समझि न परई, लागी कैसी बाँनि।। टेक।।
भोमि बिडाणी मैं कहा रातौ, कहा कियो कहि मोहि।
लाहै कारनि मूल गमावै, समझावत हूँ तोहि।।
निस दिन तोहि क्यूँ नींद परत है, चितवत नाँहीं तोहि।।
जम से बैरी सिर परि ठाढे पर हथि कहाँ बिकाइ।।
झूठे परपंच मैं कहा लागौ, ऊठै नाँही चालि।
कहै कबीर कछू बिलम न कीजै, कौने देखी काल्हि।। ३१२।।

भयौ रे मन पाहुँनड़ौ दिन चारि।
आजिक काल्हिक माँहि चलैगो, ले किन हाथ संवारि।। टेक।।
सौंज पराई जिनि अपणावै, ऐसी सुणि किन लेह।
यहु संसार इसौ रे प्राँणी, जैसी धूंवरि मेह।।
तन धन जीवन अंजुरी कौ पानी, जात न लागै बार।
सैंवल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यो कहा गँवार।।
खोटी खाटै खरा न लीया, कछू न जाँनीं साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि।। ३१३।।

मन रे राँम नाँमहि जाँनि।
थरहरी थूंनी परयो मंदिर सूतौ खूंटी तानि।। टेक।।
सैंन तेरी कोई न समझै, जीभ पकरी आँनि।
पाँच गज दोवटी माँगी, चूंन लीयौ साँनि।।

बैसंदर पोषरी हाँडी, चल्यौ लादि पलाँनि ।
भाई बँध बोलइ बहु रे, काज कीनौं आँनि ॥
कहै कबीर या मैं झूँठ नाहीं, छाड़ि जीय की बाँनि ।
राँम नाँम निसंक भजि रे, न करि कुल की काँनि ।।३१४।।

प्राणी लाल औसर चल्यौ रे बजाइ ।
मूठी एक मठिया मुठि एक कठिया, संग काहू कै न जाइ ।। टेक ।।
देहली लग तेरी मिहरी सगी रे, फलसा लग सगी माइ ।
मड़हट लूँ सब लोग कुटुंबी, हंस अकेलौ जाइ ।।
कहाँ वै लोग कहाँ पुर पाटण, बहुरि न मिलबौ आइ ।
कहै कबीर जगनाथ भजहु रे, जन्म अकारथ जाइ ।। ३१५ ।।

राँम गति पार न पावै कोई ।
च्यंतामणि प्रभु निकटि छाडि करि, भ्रँमि मति बुधि खोई ।। टेक ।।
तीरथ बरत जपै तप करि करि, बहुत भाँति हरि सोधै ।
सकति सुहाग कहौ क्यूँ पावै, अछता कंत बिरोधै ।।
नारी पुरिष बसैं इक संगा, दिन दिन जाइ अबोलै ।
तजि अभिमान मिलै नहीं पीव कूँ, ढूँढ़त बन बन डोलै ।।
कहै कबीर हरि अकथ कथा है, बिरला कोई जानै ।।
प्रेम प्रीति बेधी अंतर गति, कहूँ काहि कौ मानै ।। ३१६ ।।

राँम बिनाँ संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगट्या जम का फेरा ।। टेक ।।
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरुक मूये हज जाई ।
जटा बाँधि बाँधि जोगी मूये, कापड़ी के दारौं पाई ।।
कवि कवीवैं कविता मूये, कापड़ी के दारौं जाई ।
केस लूँचि लूँचि मूये बरतिया, इनमें किनहूँ न पाई ।।
धन संचते राजा मूये अरु ले कंचन भारी ।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूये रूप भूले मूई नारी ।
जे नर जोग जुगति करि जाँनैं, खोजैं आप सरीरा ।
तिनकूँ मुकति का संसा नाहीं कहत जुलाह कबीरा ।।३१७।।

कहूँ रे जे कहिबे की होइ ।
नाँ को जानैं नाँ को मानै ताथैं अचिरज मोहि ।। टेक ।।
अपने अपने रंग के राजा, माँनत नाहीं कोइ ।
अति अभिमान लोभ के घाले, अपनपौ खोइ ।।

मैं मेरी करि यहु तन खोयां, समझत नहीं गँवार ।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं, बूड़े बहुत अपार ॥
मोहि आग्या दई दयाल दया करि, काहू कूँ समझाइ ।
कहै कबीर मैं कहि कहि हारचौ, अब मोहि दोष न लाइ ॥३१८॥

एक कोस बन मिलांन न मेला ।
बहुतक भांति करै फुरमाइस, है असवार अकेला ॥ टेक ॥
जोरत कटक जु धरत सब गढ़, करतब झेली झेला ।
जोरि कटक गढ़ तोरि पातिसाह, खेलि चल्यौ एक खेला ॥
कूँच मुकाँम जोग के घर मैं, कछू एक दिवस खटाँनाँ ।
आसन राखि बिभूति साखि दे, फुनि ले मटी उडाँनाँ ॥
या जोगि की जुगति जू जाँनै, सो सतगुर का चेला ।
कहै कबीर उन गुर की कृपा थैं, तिनि सब भरम पछेला ॥३१९॥

(राग मारू)

मन रे राँम सुमिरि, राँम सुमिरि, राँम सुमिरि भाई ।
राँम नाँम सुमिरन बिनैं, बूड़त है अधिकाई ॥ टेक ॥
दारा सुत ग्रेह नेह, संपति अधिकाई ॥
यामैं कछु नाँहि तेरौ, काल अवधि आई ॥
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हाँ ।
तेऊ उतरि पारि गये, राँम नाँम लीन्हाँ ॥
स्वाँन सूकर काग कीन्हौं, तऊ लाज न आई ।
राँम नाँम अंमृत छाड़ि, काहे बिष खाई ॥
तजि भरम करम बिधि नखेद, राँम नाँम लेही ।
जन कबीर गुरु प्रसादि, राँम करि सनेही ॥३२०॥

राँम नाँम हिरदै धरि, निरमोलिक हीरा ।
सोभा तिहूँ लोक, तिमर जाय त्रिबिध पीरा ॥ टेक ॥
त्रिसनाँ नैं लोभ लहरि, काँम क्रोध नीरा ।
मद मछर कछ मछ, हरषि सोक तीरा ॥
काँमनी अरु कनक भवर, बोये बहु बीरा ।
जब कबीर नवका हरि, खेवट गुरु कीरा ॥३२१॥

चलि मेरीं सखी हो, वो लगन राँम राया ।
जब तक काल बिनासै काया ॥ टेक ॥
जब लोभ मोह की दासी, तीरथ ब्रत न छूटै जंम की पासी ।

ग्रावैंगे जम के घालैंगे बाँटी, यहु तन जरि बरि होइगा माटी ॥
कहै कबीर जे जन हरि रँगिराता, पायौ राजा राँम परद पद दाता ॥३२२॥

(राग टोड़ी)

तूं पाक परमानंदे ।
पीर पैकंबर पनह तुम्हारी, मैं गरीब क्या गंदे ॥ टेक ॥
तुम्ह दरिया सबही दिल भीतरि परमाँनंद पियारे ।
नैंक नजरि हम ऊपरि नाँहीं, क्या कमिबखत हँमारे ॥
हिकमति करैं हलाल बिचारैं, ग्राप कहाँवैं मोटे ।
चाकरी चोर निवाले हाजिर, साँईं सेती खोटे ॥
दाँइम दूवा करद बजावैं, मैं क्या करूँ भिखारी ।
कहै कबीर मैं बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी ॥३२३॥
ग्रब हम जगत गौंहन तैं भागे,
जग की देखि गति राँमहि ढूँरि लाँगे ॥ टेक ॥
ग्रयाँनपनैं थैं बहु बौराने, समझि परी तब फिर पछितानें ॥
लोग कहौ जाकै जो मनि भावै, लहै भुवंगम कौन डसावै ॥
कबीर बिचारि इहै डर डरिये, कहै का हो इहाँ नैं मरिये ॥३२४॥

(राग भैरूँ)

ऐसा ध्यान धरौ नरहरी
सबस ग्रनाहद च्यंत करी ॥ टेक ॥
पहली खोजौ पंचे बाइ, बाइ ब्यंद ले गगन समाइ ॥
गगन जोति तहाँ त्रिकुटी संधि, रबि ससि पवनाँ मेलौ बंधि ॥
मन थिर होइ त कवल प्रकासै, कवला माँहि निरंजन बासै ॥
सतगुरु संपट खोलि दिखावै, निगुरा होइ तो कहाँ बतावै ॥
सहज लछिन ले तजो उपाधि, ग्रासण दिढ निद्रा पुनि साधि ॥
पुहुप पत्र जहाँ हीरा मणीं, कहै कबीर तहाँ त्रिभुवन धणीं ॥३२५॥
इहि विधि सेवियै श्री नरहरी,
मन की दुबिध्या मन परहरी ॥ टेक ॥
जहाँ नहीं तहाँ कछू जाँणि, जहाँ नहीं तहाँ लेहु पछाँणि ॥
नाँहीं देखि न जइये भागि, जहाँ नहीं तहाँ रहिये लागि ॥
मन मंजन करि दसवैं द्वारि, गंगा जमुना संधि बिचारि ॥

नादहि ब्यंद कि ब्यंदहि नाद, नादहिं ब्यंद मिलै गोब्यंद ॥
देवी न देवा पूजा नहीं जाप, भाइ न बंध माइ नहीं बाप ॥
गुणातीत जस निरगुन आप, भ्रम जेवड़ी जन कीया साप ॥
तन नाँहीं कब जब मन नाँहि, मन परतीति ब्रह्म मन माँहि ॥
परहरि बकुला ग्रहि गुन डार, निरखि देखि निधि वार न पार ॥
कहै कबीर गुर परम गियाँन, सुंनि मंडल मैं धरौ धियाँन ॥
प्यंड परे जीव जैहैं जहाँ, जीवत ही ले राखौ तहाँ ॥३२६॥

अलह अलख निरंजन देव,
किहि बिधि करौं तुम्हारी सेव ॥ टेक ॥

बिश्न सोई जाको बिस्तार, सोई क्रुस्न जिनि कीयौ संसार।
गोब्यंद ते ब्रह्मंडहि गहै, सोई राम जे जुगि जुगि रहै ॥
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोलै सोई खुदाई।
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे एती करै ॥
गोरख सोई ग्यांन गमि गहै, महादेव सोई मन की लहै।
सिध सोई जो साधै इती, नाथ सोई जो त्रिभवन जती ॥
सिध साधू पैकंबर हूवा, जपै सु एक भेष है जूवा।
अपरंपार का नांउ अनंत, कहै कबीर सोई भगवंत ॥३२७॥

तहाँ जो राँम नाँम ल्यौ लागै,
तौ जुरा मरण छूटै भ्रम भागै ॥ टेक ॥

अगम निगम गढ़ रचि ले अवास, तहुवाँ जोति करै परकास।
चमकै बिजुरी तार अनंत, तहाँ प्रभु बैठे कवलाकंत ॥
अखंड मंडित मंडित भंड, त्रि स्नाँन करै त्रीखंड।
अगम अगोचर अभिअंतरा, ताकौ पार न पावै धरणीधरा ॥
अरध उरध बिचि लाइ ले अकास, तहँवा जोति करै परकास।
टारचौ टरै न आवै जाइ, सहज सुंनि मैं रह्यौ समाइ ॥
अबरन बरन स्यांम नहीं पीत, होहू जाइ न गावै गीत।
अनहद सबद उठै झणकार, तहाँ प्रभू बैठे समरथ सार ॥
कदली पुहुप दीप परकास, रिदा पंकज मैं लिया निवास।
द्वादस दल अभिअंतरि स्यंत, तहाँ प्रभु पाइसि करिलै च्यंत ॥
अमलिन मलिन घाम नहीं छाँहाँ, दिवस न राति नहीं है ताहाँ।
तहाँ न ऊगै सूर न चंद, आदि निरंजन करै अनंद ॥
ब्रह्मंडे सो प्यंडे जाँन, माँनसरोवर करि असनाँन।
सोहं हंसा ताकौ जाप, ताहि न लिपै पुन्य न पाप ॥

काया माँहैं जाँनैं सोई, जो बौलै सो आपै होई ।
जोति माँहि जे मन थिर करै, कहै कबीर सो प्रांणी तिरै ॥३२८॥

एक अचंभा ऐसा भया,
करणीं थै कारण मिटि गया ॥ टेक ॥
करणी किया करम का नास, पावक माँहि पुहुप प्रकास ॥
पुहुप माँहि पावक प्रजरै, पाप पुंन दोऊ भ्रम टरै ॥
प्रगटी बास बासना धोइ, कुल प्रगट्यौ कुल घाल्यौं खोइ ॥
उपजी च्यंत च्यंत मिटि गई, भौ भ्रम भागा ऐसे भई ॥
उलटी गंग मेर कूँ चली, धरती उलटि अकासहिं मिली ॥
दास कबीर तत ऐसा कहै, ससिहर उलटि राह कौं गहै ॥३२९॥

है हजूरि क्या दूर बतावै,
दुंदर बाँधें सुंदर पावै ॥ टेक ॥
सो मुलनाँ जो मनसूँ लरै, अह निसि काल चक्र सूँ भिरै ॥
काल चक्र का मरदै माँन, ताँ मुलनाँ कूँ सदा सलाँम ॥
काजी सो जो काया बिचारै, अहनिसि ब्रह्म अगनि प्रजारै ॥
सुप्पनै बिंद न देई झरनाँ, ता काजी कूँ जुरा न मरणाँ ॥
सो सुलितान जु द्वै सुर ताँनैं, बाहरि जाता भीतरि आनैं ॥
गगन मंडल मैं लसकर करै, सो सुलिताँन छत्र सिरि धरै ॥
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू राँम नाम उच्चरैं ॥
मुसलमाँन कहै एक खुदाइ, कबीरा कौ स्वाँमी घटि घटि रह्यौ समाइ ॥३३०॥

आऊँगा न जाऊँगा, न मरूँगा न जीऊँगा ।
गुरु के सबद मैं रमि रमि रहूँगा ॥ टेक ॥
आप कटोरा आपैं थारी, आपैं पुरिखा आपै नारी ॥
आप सदाफल आपै नींबू, आपें मुसलमाँन आपै हिंदू ॥
आपैं मछ कछ आपै जाल, आपैं झींवर आपैं काल ।
कहै कबीर हम नाँहीं रे नाँहीं, नाँ हम जीवत न मुवले माँहीं ॥३३१॥

हम सब माँहि सकल हम माँहीं,
हम थैं और दूसरा नाहीं ॥ टेक ॥
तीनि लोक मैं हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा ॥
खट दरसन कहियत हम भेखा, हमहीं अतीत रूप नहीं रेखा ॥
हमहीं आप कबीर कहावा, हमहीं अपनाँ आप लखावा ॥३३२॥

सो धन मेरे हरि का नाँउ,
गाँठि न बाँधौं बेचि न खाँउँ ॥ टेक ॥
नाँउ मेरें खेती नाँउ मेरे बारी, भगति करौं मैं सरनि तुम्हारी ॥
नाँउ मेरे सेवा नाँउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन ग्रौर न जाँनौं दूजा ॥
नाँउ मेरे बंधव नाँव मेरे भाई, ग्रंत कि बिरियाँ नाँव सहाई ॥
नाँउ मेरें निरधन ज्यू निधि पाई, कहै कबीर जैसें रंक मिठाई ॥ ३३३ ॥
ग्रब हरि हूँ ग्रपनौं करि लीनौं,
प्रेम भगति मेरीं मन भीनौं ॥ टेक ॥
जरै सरीर ग्रंग नहीं मोरौं, प्रान जाइ तौ नेह तोरौं ॥
च्यंतामणि क्यूँ पाइएं ठोली, मम दे राँम लियौ निरमोली ॥
ब्रह्मा खोजत जनम गवायौं, सोई राम घट भीतरि पायौं ॥
कहै कबीर छूटी सब ग्रासा, मिल्यौ राम उपज्यौ बिसवासा ॥३३४॥
लोग कहैं गोबरधनधारी,
ताकौं मोहि ग्रचंभौ भारी ॥ टेक ॥
ग्रष्ट कुली परबत जाके पग की रैनाँ, सातौं सायर ग्रंजन नैनाँ ॥
ए उपमाँ हरि किती एक ग्रोपैं, ग्रनेक मेर नख उपारि रोपैं ॥
धरनि ग्रकास ग्रधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहै न साखी ॥
सिव बिरंचि नारद जस गावैं, कहै कबीर वाको पार न पावैं ॥३३५॥
राँम निरंजन न्यारा रे,
ग्रंजन सकल पसारा रे ॥ टेक ॥
ग्रंजन उतपति वो उंकार, ग्रंजन माँड्या सब बिस्तार ॥
ग्रंजन ब्रह्मा शंकर इंद, ग्रंजन गोपी संगि गोब्यंद ॥
ग्रंजन बाँणी, ग्रंजन बेद, ग्रजन कीया नाँनाँ भेद ॥
ग्रंजन विद्या पाठ पुराँन, ग्रंजन फोकट कथाहि गियाँन ॥
ग्रंजन पाती ग्रंजन देव, ग्रंजन की करै ग्रंजन सेव ॥
ग्रंजन नाचै ग्रंजन गावैं, ग्रंजन भेष ग्रनंत दिखावै ॥
ग्रंजन कहौं कहाँ लग केता, दाँन पुंनि तप तीरथ जेता ॥
कहै कबीर कोई बिरला जागै, ग्रंजन छाँड़ि निरंजन लागै ॥३३६॥
ग्रंजन ग्रलप निरंजन सार,
यहै चीन्हि नर करहुँ बिचार ॥ टेक ॥
ग्रंजन उतपति बरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई ॥
ग्रंजन ग्रावैं ग्रंजन जाइ, निरंजन सब घट रह्यौ समाइ ॥
जोग ध्याँन तप सबै विकार, कहै कबीर मेरे राँम ग्रधार ॥३३७॥

एक निरंजन अलह मेरा,
हिंदू तुरक दहू नहीं नेरा ॥ टेक ॥
राखूँ ब्रत न मरहम जाँनाँ, तिसही सुमिरूँ जो रहै निदाँनाँ ।
पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ, एक निराकार हिरदै नमसकारूँ ॥
नाँ हज जाँऊँ न तीरथ पूजा, एक पिछाँण्याँ तौ का दूजा ॥
कहै कबीर भरम सब भागा, एक निरंजन सूँ मन लागा ॥३३८॥
तहाँ मुझ गरीब की को गुदरावै
मजलिस दूरि महल को पावै ॥ टेक ॥
सत्तरि सहस सलार हैं जाकं, असी लाख पैंकंबर ताकै ॥
सेख जु कहिय सहस अठ्यासी, छपन कोड़ि खलिबे खासी ॥
कोड़ि तेतीसूँ अरू खिलखाँनाँ, चौरासी लख फिरै दिवाँनाँ ॥
बाबा आदम पैं नजरि दिलाई, नबी भिस्त घनेरी पाई ॥
तुम्ह साहिब हम कहा भिखारी, देत जबाब होत बजगारी ॥
जन कबीर तेरी पनह समाँनाँ, भिस्त नजीक राखि रहिमाँनाँ ॥३३९॥
जौ जाचौं तो केवल राँम,
आँन देव सूँ नाँहीं काँम ॥ टेक ॥
जाकै सूरिज कोटि करै परकास, कोटि महादेव गिरि कबिलास ॥
ब्रह्मा कोटि बेद ऊचरैं, दुर्गा कोटि जाकै मरदन करैं ॥
कोटि चंद्रमाँ गहै चिराक, सुर तेतीसूँ जीमैं पाक ॥
नौग्रह कोटि ठाढ़े दरबार, धरमराइ पौली प्रतिहार ॥
कोटि कुबेर जाकै भरै भंडार, लछमी कोटि करैं सिंगार ॥
कोटि पाप पुंनि ब्यौहरै, इंद्र कोटि जाकी सेवा करैं ॥
जगि कोटि जाकै दरबार, गंध्रप कोटि करै जैकार ॥
विद्या कोटि सबै गुंण कहै, पारब्रह्म कौ पार न लहैं ॥
बासिग कोटि सेज बिसतरैं पवन कोटि चौबारै फिरैं ॥
कोटि समुद्र जाकै पणिहारा, रोमावली अठारह भारा ॥
असंखि कोटि जाकै जमावली, राँवण सेन्याँ जाथैं चली ॥
सहसबाँह के हरे पराँण, जरजोधन घाल्यौ खै माँन ॥
बावन कोटि जाके कुटवाल, नगरी नगरी क्षेत्रपाल ॥
लट छूटी खेलैं बिकराल, अनंत कला नटवर गोपाल ॥
कंद्रप कोटि जाकैं लाँवन करैं, घट घट भीतरि मनसा हरै ॥
दास कबीर भजि सारंगपान, देहु अभै पद माँगौं दान ॥३४०॥

मन न डिगै ताथैं तन न डराई,

केवल राँम रहे ल्यौ लाई ।। टेक ।।

अति अथाह जल गहर गँभीर, बाँधि जजीर जलि बोरे हैं कबीर ।।

जल की तरंग उठि कटि है जंजीर, हरि सुमिरन तट बैठे हैं कबीर ।।

कहैं कबीर मेरे संग न साथ, जल थल मैं राखै जगनाथ ।।३४१।।

भलैं नींदौ भलैं नींदौ भलैं नींदौ लोग,

तनौ मन राँम पियारे जोग ।। टेक ।।

मैं बौरी मेरे राँम भरतार, ता कारँनि रचि करौं स्यँगार ।।

जैसे धुबिया रज मल धोवै, हर तप रत सब निंदक खोवै ।

न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ।।

न्यंदक मेरे प्रान अधार, बिन वेगारि चलावै भार ।

कहै कबीर न्यँदक बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी ।।३४२।।

जौ मैं बौरा तौ राँम तोरा,

लोग मरम का जाँनै मोरा ।। टेक ।।

माला तिलक पहरि मन मानाँ, लोगनि राँम खिलौंनाँ जाँनाँ ।

थोरी भगति बहुत अहँकारा, ऐसे भगता मिलै अपारा ।।

लोग कहैं कबीर बौराना, कबीरा कौ मरम राँम भल जाना ।।३४३ ।।

हरिजन हंस दसा लिये डोलै, ।।

निर्मल नाँव चवै जस बोलै ।। टेक ।।

मानसरोवर तट के बासी, राम चरन चित आँन उदासी ।।

मुकताहल बिन चंच न लाँवै, मौंनि गहै कै हरि गुन गाँवै ।।

कउवा कुबधि निकट नहीं आवै, सो हंसा निज दरसन पावै ।।

कहै कबीर सोई जन तेरा, खीर नीर का करै नबेरा ।।३४४।।

संति राँम सतगुर की सेवा,

पूजहु राँम निरंजन देवा ।। टेक ।।

जल कै मंजन्य जो गति होई, मीनां नित ही न्हावै ।

जैसा मींनाँ तैसा नरा, फिरि फिरि जोनीं आवैं ।।

मन मैं मैला तीर्थं न्हाँवै, तिनि वैकुंठ न जाँनाँ ।

पाखंड करि करि जगत भुलाँनाँ, नाँहिन राँम अयाँनाँ ।।

हिरदै कठोर मरै बनारसि, नरक न बंच्या जाई ।

हरि कौ दास मरै जे मगहरि, सेन्याँ सकल तिराई ।।

पाठ पुराँन बेद नहीं सुमृत, तहाँ बसै निरकारा ।

कहै कबीर एक ही ध्यावो, बावलिया संसारा ।।३४५ ।

क्या ह्वै तेरे न्हाई धोंई,

आतम राँम न चीन्हाँ सोई ॥ टेक ॥

क्या घट उपरि मंजन कीयैं, भीतरि मैल अपारा ॥
राँम नाँम बिन नरक न छूटैं, जे धोवै सौ बारा ॥
का नट भेष भगवाँ बस्तर, भसम लगावै लोई ॥
ज्यूँ दादुर सुरसरी जल भीतरि हरि बिन मुकति न होई ॥
परिहरि काँम राँम कहि बौरे सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नाँव अभपददाता, कहै कबीरा कोरी ॥३४६॥

पाँणी थैं प्रकट भई चतुराई,

गुर प्रसादि परम निधि पाई ॥ टेक ॥

इक पाँणीं पाँणी कूँ धोवै एक पाँणी पाँणी कूँ मोहै ॥
पाणीं ऊँचा पाँणीं नाचाँ, ता पाँणीं का लीजै सींचा ॥
इक पांणी थैं प्यंड उपाया, दास कबीर राम गुण गाया ॥३४७॥

भजि गोब्यंद भूलि जिनि जाहु,

मनिषा जनम कौ एही लाहु ॥ टेक ॥

गुर सेवा करि भगति कमाई, जौ तैं मनिषा देही पाई ॥
या देही कू लौंचैं देबा, सो देही करि हरि कि सेवा ॥
जब लग जरा रोग नहीं आया, तब लग काल ग्रसै नहिं काया ॥
जब लग हींण पड़े नहीं बाणीं, तब लग भजि मन सारँगपाँणी ॥
अब नहीं भजसि भजसि कब भाई, आवैगा अंत भज्यौ [illegible] ॥
जे कछू करौ सोई तत सार, फिरि पछितावोगे बार न [illegible] ॥
सेवग सो जो लागे सेवा, तिनही पाया निरंजन देवा ॥
गुर मिलि जिनि के खुले कपाट, बहुरि न आवैं जोनी बाट ॥
यहु तेरा औसर यहु तेरि बार, घट ही भीतरि सोचि बिचारि ॥
कहै कबीर जीति भावैं हारि बहु बिधि कह्यौं पुकारि पुकारि ॥३४८॥

ऐसा ग्यान बिचारि रे मनाँ

हरि किन सुमिरै दुख भंजना ॥ टेक ॥

जब लग मैं में मेरी करैं, तब लग काज एक नहीं सरैं ॥
जब यहु मैं मेरी मिटि जाइ, तब हरि काज सँवारैं आइ ॥
जब स्यंघ रहै बन माहि, तब लग यहु बन फूलैं नाँहि ॥
उलटि स्याल स्यंघ कूँ खाइ, तब यहु फूलैं सब बनराइ ॥
जीत्या डूबै हारद्या तिरैं, गुर प्रसाद जीवत ही मरै ॥
दास कबीर कहै समझाइ, केवल राम रहौ ल्यौ लाइ ॥३४९॥

जागि रे जीव जागि रे ।
चोरन कौ डर बहुत कहत हैं, उठि उठि पहरैं लागि रे ॥ टेक ॥
ररा करि टोप ममाँ करि बखतर, ग्यान रतन करि खाग रे ।
ऐसैं जौ अजराइल मारै, मस्तकि आवै भाग रे ॥
ऐसी जागणी जे को जागै, तौ हरि देइ सुहाग रे ।
कहै कबीर जग्या ही चाहिये, क्या गृह क्या बैराग रे ॥
जागहु रे नर सोवहु कहा,
जम बटपारैं रूँधे पहा ॥ टेक ॥
जागि चेति कछू करौ उपाई, मोटा बैरी है जंमराई ॥
सेत काग आये बन माँहि, अजहू रे नर चेतै नाँहि ।
कहै कबीर तबै नर जागै, जंम का डंड मूँड मैं लागै ॥३५२॥
जाग्या रे नर नींद नसाई,
चित चेत्यो च्यंतामणि पाई ॥ टेक ॥
सोवत सोवत बहुत दिन बीते, जन जाग्या तसकर गये रीते ॥
जन जागे का ऐसहि नाँण, बिष से लागे वेद पुराँण ।
कहै कबीर अब सोवौ नाँहि, राँम रतन पाया घट माँहि ॥३५२॥
संतनि एक अहेरा लाधा,
मिर्गनि खेत सबनि का खाधा ॥ टेक ॥
या जंगल मैं पाँचौ मृगा, एई खेत सबनि का चरिगा ।
पारधीपनौं जे साधै कोई, अध खाधा सा राखै सोई ॥
कहै कबीर जो पंचौ मारै, आप तिरै और कूँ तारै ॥ ३५३॥
हरि कौ बिलोवनो बिलोइ मेरी माई,
ऐसैं बिलोइ जैंसे तत न जाई ॥ टेक ॥
तन करि मटकी मननि बिलोइ, ता मटकी मैं पवन समोइ ॥
इला प्यंगुला सुषमन नारी, बेगि बिलोइ ठाढ़ी छलिहारी ॥
कहै कबीर गुजरी बौराँनी, मटकी फूटी जोति समानी ॥३५४॥
आसण पवन कियै दिढ़ रहु रे,
मन का मैल छाड़ि दे बौरे ॥ टेक ॥
क्या सींगी मुद्रा चमकाये, क्या बिभूति सब अंगि लगाये ।
सो हिंदू सो मुसलमाँन. जिसका दुरस रहै ईमाँन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियाँन, काजी सो जानै रहिमाँन ।
कहै कबीर कछू आँन न कीजै, राँम नाँम जपि लाहा लीजै ॥३५५॥

ताथैं कहिये लोकोचार,
वेद कतेब कथैं व्यौहार ॥ टेक ॥
जारि बारि करि आवै देहा, मूवाँ पीछै प्रीति सनेहा ॥
जीवत पित्रहि मारहि डंगा, मूवाँ पित्र ले घालैं गंगा ॥
जीवत पित्र कूँ अन न ख्वावै, मूँवाँ पाछैं प्यंड भरावैं ॥
जीवत पित्र कूँ बोलैं अपराध, मूँवाँ पीछे देहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कउवा खाइ पित क्यूँ पावै ॥३५६॥

बाप राँम सुनि बीनती मोरी,
तुम्ह सूँ प्रगट लोगन सूँ चोरी ॥ टेक ॥
पहलै काँम मुगध मति कीया, ता भै कंपै मेरा जीया ॥
राँम राइ मेरा कह्या सुनीजै, पहलें बकसि अब लेखा लीजै ।
कहै कबीर बाप राँम राया, कबहूँ सरनि तुम्हारी आया ॥३५७॥

अजहूँ बीच कैसें दरसन तोरा,
बिन दरसन मन माँनैं, क्यूँ मोरा ॥ टेक ॥
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजाँनाँ, दुइ मैं दोस कहौ किन राँमाँ ॥
तुम्ह कहियत त्रिभवन पति राजा, मन बंछित सब पुरवन काजा ॥
कहै कबीर हरि दरस दिखावौ, हमहि बुलावौ कै तुम्ह चलि आवौ ॥३५८॥

क्यूँ लीजै गढ़ बंका भाई,
दोवर कोट अरु तेवड़ खाई ॥ टेक ॥
काँम किवाड़ दुख सुख दरवानी, पाप पुंनि दरवाजा ।
क्रोध प्रधान लोभ बड़ दूंदर, मन मैं बासी राजा ॥
स्वाद सनाह टोप ममिता का, कुबधि कमाँण चड़ाई ।
त्रिसना तीर रहे तन भीतरि, सुबधि हाथि नहीं आई ॥
प्रम पलीता सुरति नालि करि, गोला ग्याँन चलाया ।
ब्रह्म अग्नि ले दियाँ पलीता, एकैं चोट ढहाया ॥
सत संतोष लै लरनै लागे, तोरे दस दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की कृपा थैं, पकरयौ गढ़ कौ राजा ॥
भगवंत भीर सकति सुमिरण की, काटि काल की पासी ।
दास कबीर चढ़े गढ़ ऊपरि, राज दियौ अबिनासी ॥

रैंनि गई मति दिन भी जाइ,
भवर उड़े बन बैठे आइ ॥ टेक ॥
काँचै करवै रहै न पानी, हंस उड्या काया कुमिलाँनी ।

थरहर थरहर कंपै जीव, नाँ जाँनूं का करिहै पीव ॥
कऊवा उड़ावत मेरी बहियाँ पिराँनी, कहै कबीर मेरी कथा सिराँनीं ॥
॥ ३६० ॥

काहे कूँ भीति बनाऊँ टाटी,
का जाँनूं कहाँ परिहै माटी ॥ टेक ॥
काहे कूँ मंदिर महल चिणाँऊँ, मुँवाँ पीछै घड़ी एक रहण न पाऊँ ॥
काहे कूँ छाऊँ ऊँच ऊँचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुँइ लीजै ॥३६१॥

(राग बिलावल)

बार बार हरि का गुण गावै,
गुर गमि भेद सहर का पावै ॥ टेक ॥
आदित करै भगति आरंभ, काया मंदिर मनसा थंभ ॥
अखंड अहनिसि सुरष्या जाइ, अनहद बेन सहज मैं पाइ ॥
सोमवार ससि अमृत झरै, चाखत बेगि तपै निसतरै ॥
बाँणीं रोक्यां रहै दुवार, मन मतिवाला पीवनहार ॥
मंगलवार ल्यौ माँहीत, पंच लोक की छाड़ौ रीत ॥
घर छाँडै जिनि बाहिर जाइ, नहीं तर खरौ रिसावै राइ ॥
बुधवार करै बुधि प्रकास, हिरदा कवल मैं हरि का बास ॥
गुर गमि दोऊ एक समि करै, ऊरध पंकज थैं सूधा धरै ॥
ब्रिसपति बिषिया देइ बहाइ, तीनि देव एकै संगि लाइ ॥
तीनि नदी तहाँ त्रिकुटी माँहि, कुसमल धोवै अहनिसि न्हाँहि ॥
सुक्र सुधा ले इहि ब्रत चढ़ै, अह निसि आप आप सूँ लड़ै ॥
सुरषी पंच राखिये सबै, तौ दूजी द्रिष्टि न पैसै कबै ॥
थावर थिर करि घट मैं सोइ, जोति दीवटी मेल्है जोइ ॥
बाहरि भीतरि भया प्रकास, तहाँ भया सकल करम का नास ॥
जब लग घट मैं दूजो आँण, तब लग महलि न पावै जाँण ॥
रमिता राँम सू लागै रंग, कहैं कबीर ते निर्मल अंग ॥३६२॥

राँम भजै सो जाँनिये, जाके आतुर नाँहीं ।
सत संत संतोष लीयैं रहै, धीरज मन माँहीं ॥टेक॥
जन कौं काँम क्रोध ब्यापै नहीं, त्रिष्णाँ न जरावै ।
प्रफुलित आनंद मैं, गोब्यंद गुँण गावै ॥

जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषैं।
काल कलपनाँ मेटि करि, चरनूं चित राखै ॥
जन सम द्रिष्टी सीतल सदा, दुबिधा नहीं आनै ॥
कहै कबीर ता दास सूँ मेरा मन माँनै ॥ ३६३ ॥

माधौ सो न मिलै जासौं मिलि रहिये,
ता कारनि बरु बहु दुख सहिये ॥ टेक ॥
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ ॥
अगम अगोचर लखीं न जाइ, जहाँ का सहज फिरि तहाँ समाइ ॥
कहै कबीर झूठे अभिमान, सो हम सो तुम्ह एक समान ॥ ३६४ ॥

अहो मेरे गोब्यंद तुम्हारा जोर,
काजी बकिवा हस्ती तोर ॥ टेक ॥
बाँधि भुजा भलै करि डारयौं, हस्ती कोपि मूंड में मारयौं ॥
भाग्यौं हस्ती चीसाँ मारी, वा मूरति की मैं बलिहारी ॥
महावत तोकूँ मारौं साटी, इसहि मराँऊँ घालौं काटी ॥
हस्ती न तोरैं धरैं धियाँन, वाकैं हिरदैं बसैं भगवाँन ॥
कहा अपराध संत हौं कीन्हाँ, बाँधि पोट कुंजर कूँ दीन्हाँ ॥
कुंजर पोट बहु बंदन करैं, अजहूँ न सूझै काजी अंधरै ॥
तीनि बेर पतियारा लीन्हाँ, मन कठोर अजहूँ न पतीनाँ ॥
कहै कबीर हमारैं गोब्यंद, चौथे पद ले जन का ज्यंद ॥३६५॥

कुसल खेम अरु सही सलाँमति, ए दोइ काकौं दीन्हाँ रे।
आवत जाँत दुहूँधा लूटे, सर्ब तत हरि लीन्हाँ रे ॥ टेक ॥
माया मोह मद मैं पीया, मुगध कहै यहु मेरी रे।
दिवस चारि भलैं मन रंजैं, यहु नाहीं किस केरी रे ॥
सुर नर मुनि जन पीर अवलिया, मीराँ पैदा कीन्हा रे ॥
कोटिक भये कहाँ लूँ बरनूँ, सबनि पयानाँ दीन्हाँ रे।
धरती पवन अकास जाइगा, चंद जाइगा सूरा रे।
हम नाँहीं तुम्ह नाँहीं रे भाई, रहै राँम भरपूरा रे ॥
कुसलहि कुसल करत जग खीना; पड़े काल भौ पासी।
कहै कबीर सबैं जग बिनस्या, रहे राम अबिनासी ॥३६६॥

मन बनजारा जागि न सोई
लाहे कारनि मूल न खोई ॥ टेक ॥
लाहा देखि कहा गरबाँना, गरब न कीजै मूरखि अयाँनाँ।
जिन धन संच्या सो पछिताँनाँ, साथी चलि गये हम भी जाँनाँ ॥

निसि अँधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे ॥
किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला संगि न कोई ॥
ढरि गए मंदिर टूटे बंसा, सूके सरवर उड़ि गये हंसा ॥
पंच पदारथ भरिहै खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा ॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई, राँम नाँम बिन और न कोई ॥३६७॥

मन पतंग चेते नहीं अंजुरी समाँन ।
बिषिया लागि बिगूचिये, दाझिये निदाँन ॥ टेक ॥
काहे नैन अनदियै, सूझत नहीं आगि ।
जनम अमोलिक खोइयै, साँपनि संगि लागि ॥
कहै कबीर चित चंचला, गुर ग्याँन कह्यौ समझाइ ।
भगति हींन न जरई जरै, भावै तहाँ जाइ ॥३६८॥

स्वादि पतंग जरै जरि जाइ,
अनहद सौं मेरौ चित न रहाइ ॥ टेक ॥
माया कै मदि चेति न देख्या, दुबिध्या माँहि एक नहीं पेख्या ।
भेष अनेक किया बहु कीन्हाँ, अकल पुरिष एक नहीं चीन्हाँ ॥
केते एक मूये मरेहिगे केते, केतेक मुगध अजहूँ नहीं चेते ।
तंत मंत सब ओषद माया, केवल राम कबीर दिढाया ॥३६९॥

एक सुहागनि जगत पियारी,
सकल जीव जंत कौ नारी ॥ टेक ॥
खसम मरै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरै होवै ।
रखवाले का होइ बिनास, उतहि नरक इत भोग बिलास ॥
सूहागनि गलि सोहै हार, संतनि बिख बिलसै संसार ॥
पीछै लागी फिरै पचि हारी, संत की ठठकी फिरै बिचारी ॥
संत भजै वा पाछी पड़ै, गुर के सबदूँ मारयौ डरै ।
साषत कै यहु प्यंड पराइनि, हँमारी द्रिष्टि परै जैसै डाँइनि ॥
अब हम इसका पाया भेव, होइ कृपाल मिले गुरदेव ।
कहै कबीर इब बाहरि परी, संसारी कै अचलि टिरी ॥३७०॥

परोसनि माँगै संत हमारा,
पीव क्यूँ बौरी मिलहि उधारा ॥ टेक ॥
मासा माँगै रती न देऊँ, घटे मेरा प्रेम तौ कासनि लेऊँ ।
राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाऊँ सु आधा तोरा ॥
बन बन ढूँढौं नैन भरि जोऊँ, पीव न मिलै तौ बिलखि करि रोऊँ ।
कहै कबीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पियारा ॥३७१॥

राँम चरन जाकैं रिदै बसत है, ता जंन कौ मन क्यूँ डोलै ॥
मानौं आठ सिध्य नव निधि ताकैं हरषि हरषि जस बोलै ॥ टेक ॥
जहाँ जहाँ जाई तहाँ सच पावै, माया ताहि न झोलै ।
बारंबार बरजि विषिया तैं, लै नर जौं मन तोलै ॥
ऐसी जे उपजैं या जीय कैं, कुटिल गाँठि सब खोलै ।
कहै कबीर जब मन परचौ भयौ, रहै राँम कै बोलै ॥३७२॥

जंगल मैं का सोवनाँ, औघट है घाटा ।
स्यंघ बाघ गज प्रजलैं, अरु लंबी बाटा ॥ टेक ॥
निस बासुरि पेड़ा पड़ै, जमदांनी लूटै ।
सूर धीर साचै मतै, सोई जन छूटै ॥
चालि चालि मन माहरा, पुर पटण गहिये ।
मिलिये त्रिभुवन नाथ सूँ, निरभै होइ रहिये ॥
अमर नहीं संसार मैं, बिनसैं नरदेही ।
कहै कबीर वेसास सूँ, भजि राँम सनेही ॥३७३॥

(राग ललित)

राम ऐसो ही जाँनि जपौ नरहरी,
माधव मदसूदन बनवारी ॥ टेक ॥
अनुदिन ग्यान कथैं घरियार, धूवं धौलह रहै संसार ।
जैसैं नदी नाव करि संग, ऐसैं ही मात पिता सुत अंग ॥
सबहि नल दुल मलफ लकीर, जल बुदबुदा ऐसो आहि सरीर ।
जिभ्या राँम नाँम अभ्यास, कहै कबीर तजि गरभ बास ॥२७४॥

रसनाँ राँम गुन रसि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ॥ टेक ॥
निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरन सुधि बुधि मति पाई ।
बिष तजि राँम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ॥
ते सब तिरे राँम रस स्वादी, कहै कबीर बूड़े बकवादी ॥३७५॥

निबरक सुत ल्यौ कोरा,
राँम मोहि मारि, कलि बिष बोरा ॥ टेक ॥
उन देस जाइबा रे बाबू, देखिबो रे लोग किन किन खैबू लो ।
उड़ि कागा रे उन देस जाइबा, जासूँ मेरा मन चित लागा लो ॥
हाट ढूँढ़ि ले, पटनपुर ढूँढ़ि ले, नहीं गाँव कै गोरा लो ॥
जल बिन हंस निसह बिन रबू कबीर का स्वाँमी पाइ परिकैं मनैबू लो॥३७६॥

(राग वसंत)

सो जोगी जाकै सहज भाइ,

अकल प्रीति की भीख खाइ ॥ टेक ॥

सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध विषया न बाद।
मन मुद्रा जाकै गुर को ग्याँन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान ॥
मनहीं करन कौं करै सनाँन, गुर कौ सबद ले ले धरै धियाँन।
काया कासी खोजै बास, तहाँ जोति सरूप भयौ परकास ॥
ग्याँन मेषली सहज भाइ, वंक नालि कौ रस खाइ।
जोग मूल कौ देइ बंद, कहि कबीर थीर होइ कंद ॥३७७॥

मेरी हार हिरांनौं मैं लजाऊँ,

सास दुरासनि पीव डराऊँ ॥ टेक ॥

हार गुह्यौ मेरौ राँम ताग, बिचि बिचि मान्यक एक लाग ॥
रतन प्रवालै परम जोति, ता अंतरि लागे मोति।
पंच सखी मिलिहैं सुजाँन, चलहु त जइये त्रिवेणी न्हान ॥
न्हाइ धोइ कै तिलक दीन्ह, नाँ जानूँ हार किनहूँ लीन्ह ॥
हार हिराँनो जन बिमल कीन्ह, मेरौ आहि परोसनि हार लीन्ह।
तीनि लोक की जाँनै पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर ॥३७८॥

नहीं छाड़ौ बाबा राँम नाँम,

मोहिं और पढ़न सूँ कौन काम ॥ टेक ॥

प्रह्लाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीये बहुत बाल।
मोहि कहा पढ़ाव आल जाल, मेरौ पाटी मैं लिखि दे श्री गोपाल ॥
तब सेंनाँ मुरकाँ कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बँधायौ बेगि आइ।
तूँ राम कहन की छाड़ि बाँनि, बेगि छुड़ाऊँ मेरो कह्यौ माँनि ॥
मोहि कहा डरावै बार बार, जिनि जल थल गिर कौ कियौ प्रहार।
बाँधि मारि भावैं देह जारि, जे हूँ राँम छाड़ौं तौ गुरहि गार ॥
तब काढ़ि खड़ग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ।
खंभा मैं प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मारयो नख बिदारि ॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रकट कियौ भगति भेव।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद ऊबारयौ अनेक बार ॥३७९॥

हरि कौ नाउँ तत त्रिलोक सार,

लौलीन भये जे उतरे पार ॥ टेक ॥

इक जंगम इक जटाधार, इक अंगि विभूति करैं अपार ॥

इक मुनियर इक मनहूँ लींन, ऐसैं होत होत जग जात खीन ॥
इक आराधैं सकति सीव, इक पड़दा दे दे वधै जीव ।
इक कुलदेव्याँ कौं जपहि जाप, त्रिभवनपति भूले त्रिविध ताप ॥
अंनहि छाँड़ि इक पीवहि दूध, हरि न मिलै बिन हिरदै सूध ।
कहै कबीर ऐसैं बिचारि, राम बिना को उतरे पार ॥ ३८० ॥

हरि बोलि सूवा बार बार,
तेरी ढिग मीनाँ कछू करि पुकार ॥ टेक ॥
अंजन मंजन तजि बिकार, सतगुरु समझायौ तत सार ॥
साध संगति मिली करि बसंत, भौ बंद न छूटै जुग जुगंत ।
कहै कबीर मन भया अनंद, अनंत कला भेटे गोब्यंद ॥३८१॥

बनमाली जांनैं बन की आदि,
राँम नाँम बिना जनम बादि ॥ टेक ॥
फूल जु फूले रुति बसंत, जामैं मोहि रहे सब जीव जंत ॥
फूलनि मैं जैसैं रहै बास, यूँ घटि घटि गोबिंद है निवास ।
कहै कबीर मनि भया अनंद, जगजीवन मिलियौ परमानंद ॥३८२॥

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज,
मूल घटै सिरि बधै व्याज ॥ टेक ॥
नाइक एक बनिजारे पाँच, बैल पचीस कौ संग साथ ।
नव बहियाँ दस गौनि आहि, कसनि बहत्तरि लागै ताहि ॥
सात सूत मिलि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ संग लीन्ह ।
तीन जगति करत रारि, चल्यौ है बनिज वा बनज झारि ॥
बनिज खुटानौं पूँजी टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि ।
कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि समाँनूँ रही लादि ॥३८३॥

माधौ दारन सुख सह्यौ न जाइ,
मेरौ चपल बुधि तातैं कहा बसाइ ॥ टेक ॥
तन मन भीतरि बसै मदन चोर, जिनि ग्याँन रतन हरि लीन्ह मोर ।
मैं अनाथ प्रभू कहूँ काहि, अनेक बिगूचैं मैं को आहि ॥
सनक सनंदन सिव सुकादि, आपण कवलापति भये ब्रह्मादि ।
जोगी जंगम जती जटाधार, अपनैं औंसर सब गये हैं हार ॥
कहै कबीर रहु संग साथ, अभिअंतरि हरि सूँ कहौ बात ।
मन ग्याँन जाँनि कै करि बिचार, राँम रमत भौ तिरिबौ पार ॥३८४॥

तू करी डर क्यूँ न करे गुहारि,

तूँ बिन पंचाननि श्री मुरारी ।। टेक ।।

तन भीतरि बसै मदन चोर, तिनि सरबस लीनौं छोर मोर।
माँगै देइ न बिनै माँन, तकि मारै रिदा में काँम बाँन ।।
मैं किहि गुहराँऊँ आप लागि, तू करी डर बड़े बड़े गये हैं भागि ।।
ब्रह्मा बिष्णु अरु सुर मयंक, किहि किहि नहीं लावा कलंक ।।
जप तप संजम सुंनि ध्यान, बंदि परे सब सहित ग्याँन ।।
कहि कबीर उबरे द्वै तीनि, जा परि गोबिंद कृपा कीन्ह ।।३८५।।

ऐसे देखि चरित मन मोह्यौ मोर,

ताथैं निस बासुरि गुन रमौं तोर ।। टेक ।।

इक पढ़हिं पाठ इक भ्रमें उदास इक नगन निरंतर रहै निवास ।।
इक जोग जुगुति तन हूँहि खीन, ऐसे राँम नाँम संगि रहै न लीन ।।
इक हूँहिं दीन एक देहि दाँन, इक करैं कलापी सुरा पाँन ।।
इक तंत मंत ओषध बाँन, इक सकल सिध राखैं अपाँन ।।
इक तीर्थ ब्रत करि काया जीति, ऐसैं राँम नाँम सूँ करैं न प्रीति ।।
इक धोम धोटि तन हूँहि स्यान, यूँ मुकति नहीं बिन राँम नाँम ।।
सत गुर तत कह्यौ बिचार, मूल गह्यौ अनभै बिसतार ।।
जुरा मरण थैं भये धीर, राँम कृपा भई कहि कबीर ।। ३८६ ।।

सब मदिमाते कोई न जाग,

ताथे संग ही चोर घर मुसन लाग ।।

पंडित माते पढ़ि पुराँन, जोगी माते धरि धियाँन ।।
संन्यासी माते अहंमेव, तपा जु माते तप के भेव ।।
जागे सुक ऊधव अकूर, हणवंत जागे ले लंगूर ।।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नाँमाँ जैदेव ।।
ए अभिमान सब मन के काँम, ए अभिमाँन नहीं रही ठाम ।।
आतमाँ राम कौं मन बिश्राम, कहि कबीर भजि राँम नाँम ।।३८७।।

चलि चलि रे भँवरा कवल पास,

भवरी बोलें अति उदास ।। टेक ।।

तैं अनेक पुहुप कौं लियौ भोग, सुख न भयौ तब बढ्यो है रोग ।।
हौं जु कहत तोसूँ बार बार, मैं सब बन सोध्यौ डार डार ।।
दिनाँ चारि के सुरंग फूल, तिनहि देखि कहा रह्यौ है भूल ।।
या बनासपती मैं लागैगी आगि, अब तूँ जैहौ कहाँ भागि ।।

पुहुप पुराँने भये सूक तब भवरहि लागी अधिक भूख ।।
उड़्यो न जाइ बल गयो है छूटि, तब भवरी रूँना सीस कूटि ।।
दह दिसि जोवैं मधुप राइ, तब भवरी ले चली सिर चढाइ ।।
कहै कवीर मन कौ सुभाव, राँम भगति बिन जम को डाव ।। ८८ ।।

आवध्र राँम सबै करम करिहूँ,
सहज समाधि न जम थैं डरिहूँ ।। टेक ।।
कुँभरा ह्वै करि बासन धरिहूँ, धोबी ह्वै मल धोऊँ ।
चमरा ह्वै करि बासन रँगों, अघौरी जाति पाँति कुल खोऊँ ।।
तेली ह्वै तन कोल्हूँ करिहौं, पाप पुंनि दोऊ पेरूँ ।
पंच बैल जब सूध चलाऊँ, राम जेवरिया जोरूँ ।।
क्षत्री ह्वै करि खड़ग सँभालूँ, जोग जुगति दोउ साधूँ ।।
नउवा ह्वै करि मन कूँ मूँडूँ, बाढ़ी ह्वै कर्म बाढ़ूँ ।।
अवधू ह्वै करि यहु तन धूतौं, बधिक ह्वै मन मारूँ ।।
बनिजारा ह्वै तन कूँ बनिजूँ, जूवारी ह्वै जम हारूँ ।।
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करउँ बाड़ारूँ ।।
कहि कबीर भवसागर तरिहूँ आप तिरू बप तारू ।। ३८९ ।।

(राग माली गौड़ी)

पंडिता मन रंजिता, भगति हेत ल्यौ लाइ लाइ रे ।।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे ।। टेक ।।
दाँम छै पणि काँम नाहीं, ग्याँन छै पणि धंध रे ।।
श्रवण छै पणि सुरत नाँहीं, नैन छै पणि अंध रे ।।
जाके नाभि पदम सूँ उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे ।।
कहै कबीर हरि भगति बांछू जगत गुर गोब्यंद रे ।।३९०।।

बिष्णु ध्याँन सनान करि रे, बाहरि अंग न धोई रे ।।
साच बिन सीझसि नहीं, काँई ग्याँन दृष्टैं जोइ रे ।।
जंबाल माँहैं जीव राखै, सुधि नहीं सरीर रे ।
अभिअंतरि भेद नहीं, काँई बाहरि न्हावै नीर रे ।।
निहकर्म नदी ग्याँन जल, सुंनि मंडल माँहि रे ।
ओभूत जोगी आतमाँ, काँई पेड़ै संजमि न्हाहि रे ।।
इला प्यंगुला सुषमनाँ, पछिम गंगा बालि रे ।।
कहै कबीर कुसमल झड़ै, काँई माँहि लौ अंग पषालि रे ।।३९१।।

भजि नारदादि सुकादि वंदित, चरन पंकज भाँमिनी ।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर देव देव सिरोवनी ॥टेक॥
बुधि नाभि चंदन चरिचिता, तन रिदा मंदिर भीतरा।
राँम राजसि नैन बाँनी, सुजान सुंदर सुंदरा ॥
बहु पाप परवत छेदनाँ, भौ ताप दुरिति निवारणाँ ।
कहै कबीर गोव्यंद भजि, परमाँनंद वंदित कारणाँ ॥३६२॥

(राग कल्याँण)

ऐसैं मन लाइ लै राँम रसनाँ,
कपट भगति कीजै कौंन गुणाँ ॥ टेक ॥
ज्यूँ मृग नादैं बेध्यौ जाइ, प्यंड परे वाकौ ध्याँन न जाइ।
ज्यूँ जल मींन हेत करि जाँनि, प्राँन तजै बिसरै नहीं बाँनि ॥
भ्रिंगी कीट रहै ल्यौ लाइ, ह्वै लौलीन भ्रिंग ह्वै जाइ।
राँम नाँम निज अमृत सार, सुमिरि सुमिरि जन उतरे पार ॥
कहैं कबीर दासनि को दास, अब नहीं छाड़ौं हरि के चरन निवास ॥३६३॥

(राग सारंग)

यहु ठग ठगत सकल जग डोलै,
गवन करै तब मुषह न बोलै ॥
तूँ मेरो पुरिषा हौं तेरी नारी, तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी ।
बालपनाँ के मीत हमारे, हमहि लाडि कत चले हो निनारे ॥
हम सूँ प्रीति न करि री बौरी, तुमसे केते लागे ढौरी।
हम काहू सँगि गए न आये, तुम्ह से गढ़ हम बहुत बसाये ॥
माटी की देही पवन सरीरा, ता ठग सूँ जन डरै कबीरा ॥३६४॥
धंनि सो घरी महूरत्य दिनाँ,
जब ग्रिह आये हरि के जनाँ ॥ टेक ॥
दरसन देखत यहु फल भया, नैनाँ पटल दूरि ह्वै गया ।
सब्द, सुनत संसा सब छूटा, श्रवन कपाट बजर था तूटा ॥
परसत घाट फेरि करि घड़या, काया कर्म सकल झड़ि पड़्या ।
कहैं कबीर संत भल भाया, सकस सिरोमनि घट मैं पाया ॥३६५॥

(राग मलार)

जतन बिन मृगनि खेत उजारे ।
टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे ॥ टेक ॥
अपने अपने रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे ।
अति अभिमान वदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे ॥
बुधि मेरी किरषी, गुर मेरौ बिझुका, अखिर दोइ रखवारे ।
कहै कबीर अब खान न देहूँ, बरियाँ भली सँभारे ॥३९६॥

हरि गुन सुमरि रे नर प्राणी ।
जतन करत पतन ह्वै जैहै, भावै जाँणम जाँणी ॥टेक॥
छीलर नीर रहै धूँ कैसैं, को सुपिनैं सच पावै ।
सूकित पाँन परत तरवर थैं, उलटि न तरवरि आवै ॥
जल थल जीव डहके इन माया, कोई जन उबर न पावै ।
राँम अधार कहत हैं जुगि जुगि, दास कबीरा गावैं ॥३९७॥

(राग धनाश्री)

जपि जपि रे जीयरा गोव्यंदो, हित चित परमाँनंदो रे ।
बिरही जन कौ बाल हौ, सब सुख आँनंदकंदो रे ॥ टेक ॥
धन धन झीखत धन गयौ, सो धन मिल्यौं न आये रे ।
ज्यूँ बन फूली मालती, जन्म अबिरथा जाये रे ॥
प्राँणी प्रीति न कीजिये, इहि झूठे संसारी रै ।
धूँवाँ केरा धौलहर, जात न लागै बारी रे ॥
माटी केरा पूतला, काहै गरब कराये रे ।
दिवस चारि कौ पेखनौं, फिरि माटी मिलि जाये रे ॥
काँमीं राँम न भावई, भावैं बिषै बिकारी रे ।
लोह नाव पाहन भरी, बूड़त नाँहीं बारी रे ॥
नाँ मन मूवा न मारि सक्या, नाँ हरि भजि उतर्या पारो रे ।
कबीरा कंचन गहि रह्यौ, काँच गहै संसारो रे ॥३९८॥

न कछु रे न कछू राँम बिनाँ ।
सरीर धरे की रहै परमगति, साध संगति रहनाँ ॥ टेक ॥
मंदिर रचत मास दस लागे, बिनसत एक छिनाँ ।
झूठे सुख के कारनि प्राँनीं, परपंच करत घनाँ ॥

तात मात सुत लोग कुटुंब मैं, फूल्यो फिरत मनाँ ।
कहैं कबीर राँम भजि बौरे, छाँड़ि सकल भ्रमनाँ ॥३६६॥

कहा नर गरबसि थोरी बात ।
मन दस नाज, टका दस गँठिया, टेढ़ौ टेढ़ौ जात ॥ टेक ॥
कहा लै आयौ यहु धन कोऊ कहा कोऊ लै जात ।
दिवस चारि की है पतिसाही, ज्यूँ बनि हरियल पात ॥
राजा भयौ गाँव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात ॥
रावन होत लंका को छत्रपति, पल मैं गई बिहात ॥
माता पिता लोक सुत बनिता, अंत न चले सँगात ।
कहै कबीर राम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ॥४००॥

नर पछिताहुगे अंधा ।
चेति देखि नर जमपुरि जैहै, क्यूँ बिसरौ गोब्यंदा ॥ टेक ॥
गरभ कुंडिनल जब तूँ बसता, उरध ध्याँन ल्यौ लाया ।
उरध ध्याँन मृत मंडलि आया नरहरि नाँव भुलाया ॥
बाल बिनोद छहूँ रस भीनाँ छिन छिन बिन मोह बियापै ।
बिष अंमृत पहिचाँनन लागौ, पाँच भाँति रस चाखै ॥
तरन तेज पर तिय मुख जोवै, सर अपसर नहीं जानैं ।
अति उदमादि महामद मातौ, पाप पुंनि न पिछानैं ॥
प्यंडर केस कुसुम भये धौला, सेन पलटि गई बाँनीं ।
गया क्रोध मन भया जु पावस, काँम पियास मंदाँनीं ॥
तूटी गाँठि दया धरम उपज्या, काया कवल कुमिलाँनां ।
मरती बेर बिसूरन लागौ, फिरि पीछैं पछिताँनां ॥
कहै कबीर सुनहुँ रे संतौ, धन माया कछू संगि न गया ।
आई तलब गोपाल राइ की, धरती सैंन भया ॥४०१॥

लोका मति के भोरा रे ।
जो कासी तन तजै कबीर, तौ राँमहि कहा निहोरा रे ॥ टेक ॥
तब हमें वैसें अब हम ऐसें, इहै जनम का लाहा ॥
ज्यूँ जल मैं जल पैसि न निकसै, यूँ ढुरि मिलै जुलाहा ॥
राँम भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा ॥
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहु रे संतो भ्रमि परे जिनि कोई ।
जस कासी तस मगहर ऊसर हिरदैं राँम सति होई ॥४०२॥

ऐसी आरती त्रिभुवन तारै,

तेज पुंज तहाँ प्राँन उतारै ॥ टेक ॥

पाती पंच पहुप करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा ।

तन मन सीस समरपन कीन्हाँ प्रकट जोति तहाँ आतम लीनाँ ॥

दीपक ग्यान सबद धुनि घंटा पर पुरिख तहाँ देव अनंता ।

परम प्रकाश सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा ॥

(३) रमैंणी

[राग सूहौ]

तू सकल गहगरा, सफ सफा दिलदार दीदार ॥
तेरी कुदरति किनहूँ न जानी, पीर मुरीद काजी मुसलमानी ।
देवी देव सुर नर गण गंध्रप, ब्रह्मा देव महेसुर ॥
तेरी कुदरति तिनहूँ न जाँनी ॥टेक॥
काजी सो जो काया बिचारै, तेल दीप मैं बाती जारै ।
तेल दीप मैं बाती रहै, जोति चीन्हि जे काजी कहै ॥
मुलनाँ बंग देइ सुर जाँनी, आप मुसला बैठा ताँनी ॥
आपुन मैं जे करै निवाजा, सो मुलनाँ सरबत्तरि गाजा ॥
सेष सहज मैं महल उठावा, चंद सूर बिचि तारी लावा ॥
अर्ध उर्ध बिचि आनि उतारा, सोई सेष तिहूँ लोक पियारा ॥
जंगम जोग बिचारै जहूँवाँ, जीव सीव करि एकै ठऊवां ॥
चित चेतनि करि पूजा लावा, तेतौ जंगम नाँउँ कहावा ॥
जोगी भसम करै भौ मारी, सहज गहै बिचार बिचारी ॥
अनभै घट परचा सू बोलै, सो जोगी निहचल कदे न डोले ॥
जैंन जीव का करहु उबारा, कौंण जीव का करहु उधारा ॥
कहाँ बसै चौरासी का देव, लही मुकति जे जाँनौ भेव ॥
भगता तिरण मतै संसारी, तिरण तत ते लेहु बिचारी ॥
प्रीति जाँनि राँम जे कहै, दास नाँउ सो भगता लहै ॥
पंडित चारि वेद गुंण गावा, आदि अंति करि पूत कहावा ॥
उतपति परलै कहौ बिचारी, संसा घालौ सबै निवारी ॥
अरधक उरधक ये संन्यासी, ते सब लागि रहैं अबिनासी ॥
अजरावर कौं डिढ करि गहै, सो संन्यासी उम्मन रहै ॥
जिहि धर चाल रची ब्रह्मंडा, पृथमीं मारि करी नव खंडा ॥
अविगत पुरिस की गति लखी न जाई, दास कबीर अगह रहे ल्यौं लाई ॥१॥

(१) ख प्रति में इसके आगे यह रमैणी है—

[ग्रंथबावनी]

बावन आखिर लोकत्री, सब कुछ इनही माँहि ॥
ये सब षिरि षिरि जाहिगे, सो आखिर इनमैं नाँहि ॥

(सतपदी रमैंणी)

कहन सुनन कौं जिहिं जग कीन्हा, जग भुलांन सो किनहुँ न चीन्हा ॥
सत रज तम थैं कीन्हीं माया, आपण मांझै आप छिपाया ॥

तुरक सरीअत जनिये, हिंदू बेद पुरान ॥
मन समझन कै कारनै, कछु एक पढ़िये ग्यान ॥

जहाँ बोल तहाँ आखिर आवा, जहाँ अबोल तहाँ मन न लगावा ॥
बोल अबोल मंझि है सोई, जे कुछि है ताहि लखै न कोई ॥
ओ अंकार आदि मैं जाना, लिखि करि मेटै ताहि न माना ॥
ओ ऊकार करै जस कोई, तस लिखि मरेणाँ न होई ॥
ककाँ कवल किरणि मैं पावा, अरि ससि बिगास सपेट नहीं आवा ॥
अस जे जहाँ कुसुम रस पावा, तौ अकह कहा कहि का समझावा ॥
खखा इहै खोरि मनि आवा, खोरहि छाँडि चहूँ दिस धावा ॥
खसमहिं जानि षिमा करि रहै, तौ हो दून षेव अखै पद लहै ॥
गगा गुर के बचन पिछाना, दूसर बात न धरिये काना ॥
सोई बिहंगम कबहुँ न जाई, अगम गहै गहि गगन रहाई ॥
घघा घटि निमसै सोई, घट फाटा घट कबहुँ न होई ॥
ता घट माँहि घाट जो पावा, सुघटि छाड़ि औघट कत आवा ॥

नना निरखि सनेह करि, निरवालै संदेह ।
नाहीं देखि न भाजिये, प्रेम सयानप येह ॥

चचा चरित चित्र है भारी, तजि बिचित्र चेतहुं चितकारी ॥
चित्र बिचित्र रहै औडेरा, तजि बिचित्र चित राखि चितेरा ॥
छछा इहै छत्रपति पासा, तिहि छाक न रहै छाड़ि करि आसा ॥
रे मन तूँ छिन छिन समझाया, तहाँ छाड़ि कत आप बधाया ॥

जजा जे जानै तौ दुरमति हारी, करि बासि काया गाँव ।
रिण रोक्या भाजै नहीं, तौ सूरण थारो नाँव ॥

झझा उरझि सुरझि नहीं जाना, रहि मुखि झझखि झझखि परवाना ॥
कत झषिझषि औरनि समझावा, झगरौ कीये झगरिबौ पावा ॥

नना निकटि जु घटि रहै, दूरि कहाँ तजि आइ ।
जा कारणि जग ढूंढ़ियो, नेड़ैं पायौ ताहि ॥

टटा निकट घाट है माहीं, खोलि कपाट महील जब जाहीं ॥
रहै लपटि जहि घटि परचौ आई, देखि अटल टलि कतहुँ न जाई ॥
ठठा ठौंर दूरि ठग नीरा, नीठि नीठि मन कीया धीरा ॥

ते तौ आहि अनंद सरूपा, गुन पल्लव बिस्तार अनूपा ॥
साखा तत थैं कुसम गियाँनाँ, फल सो आछा राम का नाँमाँ ॥

सदा अचेत चेत जिव पंखी, हरि तरवर करि बास।
झूठ जगि जिनि भूलसी जियरे, कहन सुनन की आस ॥

जिहि ठगि ठगि सकल जग खावा, सो ठग ठग्यो ठौर मन आवा ॥
डडा डर उपजै डर जाई, डरही मैं डर रह्यो समाई ॥
जो डर डरै तो फिर डर लागै, निडर होइ तो डरि डर भागै ॥
ढढा ढिग कत ढूंढै आना, ढूंढत ढूंढत गये पराँना ॥
चढ़ि सुमेर ढूंढि जग आवा, जिमि गढ़ गढ़चा सुगढ़ मैं पावा ॥
णणारि णरूँ तौ नर नाहीं करै, ना फुनि नवै न संचरै ॥
धनि जनम ताहीं कौ गिणाँ, मेरे एक तजि जाहि घणाँ ॥
तता अतिर तिस्यौ नहीं गाई, तन त्रिभुवन में रह्यौ समाई ॥
जे त्रिभुवन तन मोहि समावै, तो ततै तन मिल्या सचु पावै ॥
थथा अथाह थाह नहीं आवा, वो अथाह यहु थिर न रहावा ॥
थोरै थलि थानै आरंभै, तौ बिनहीं थंभै मंदिर थंभै ॥
ददा देखि जुरे बिनसन हार, जस न देखि तस राखि बिचार ॥
दसवैं द्वारि जब कुंजी दीजै, तब दयालु को दरसन कीजै ॥
धधा अरधै उरध न बेरा, अरधै उरधै मंझि बसेरा ॥
अरधै त्यागि उरध जब आवा, तब उरधै छाँड़ि अरध कत धावा ॥
नना निस दिन निरखत जाई, निरखत नैन रहे रतबाई ॥
निरखत निरखत जब जाइ पावा, तब लै निरखै निरख मिलावा ॥
पपा अपार पार नहीं पावा, परम जोति सौं परचो आवा ॥
पाँचौ इंद्री निग्रह करै, तब पाप पुंनि दोऊ न संचरै ॥
फफा बिन फूलाँ फलै होई, ता फल फंक लहै जो कोई ॥
दूंणी न पड़ै फूंकै बिचारै, ताकी फूंक सबै तन फारै ॥
बबा बंदहिं बंदै मिलावा, बंदहि बंद न बिछुरन पावा ॥
जे बंदा बंदि गहि रहै, तो बंदगि होइ सबै बंद लहै ॥
भभा भेदै भेद नहीं पावा, अरभै भाँनि ऐसो आवा ॥
जो बाहरि सो भीतरि जाना, भयौ भेद भूपति पहिचाना ॥

ममाँ मन सौं काज है, मनमानाँ सिधि होइ ॥
मनहीं मन सौ कहै कबीर, मन सौं मिल्याँ न कोइ ॥

ममाँ मूल गह्याँ मन माना, मरमी होइ सूं मरमही जाना ॥
मति कोई मनसौं मिलता बिलमावै, मगन भया तैं सोगति पावै ॥

सूक बिरख यहु जगत उपाया, समझि न परै बिषम तेरी माया ॥
साखा तीनि पत्र जुग चारी, फल दोइ पापै पुंनि अधिकारी ॥
स्वाद अनेक कथ्या नहीं जाँहीं, किया चरित सो इन मैं नाहीं ॥

तेतौ आहि निनार निरंजना, आदि अनादि न आँन ॥
कहन सुनन कौ कीन्ह जग, आपै आप भुलाँन ॥

जिनि नटवै नटसारीं साजी, जो खेलै सो दीसे बाजी ॥
मो बपरा थैं जोगपति ढीठो, सिव बिरंचि नारद नहीं दीठी ॥
आदि अंति जो लीन भये हैं, सहजैं जाँनि संतोखि रहे हैं ॥

जजा सुतन जीवतही जरावैं, जोबन जारि जुगुति सो पावै ॥
अंसंजरि वुजरि जरि बरिहै, तब जाइ जोति उजारा लहै ॥
ररा सरस निरस करि जानैं, निरस होइ सुरस करि मानैं ॥
यहु रस बिसरैं सो रस होई, सो रस रसिक लहै जे कोई ॥

लला लहौ तो भेद है, कहूँ तौ कौ उपगार ॥
बटक बीज मैं रमि रह्या, ताका तीन लोक बिस्तार ॥
ववा वोइहि जाणिये, इहि जाण्याँ वो होइ ॥
वो अस यहु जबहीं मिल्या, तब मिलत न जाणै कोइ ॥

ससा सो नीका करि सोधै, घट परचा की बात निरोधै ॥
घट परचो जे उपजै भाव, मिले ताहि त्रिभुवनपति राव ॥
षषा खोजि परे जे कोई, जे खोजै सो बहुरे न होइ ॥
षोजि बूझि जे करै बिचार, तौ भौ जल तिरत न लागे बार ॥
शशा शोई शेज नू बारे, शोई शाव शंदेह निवारे ॥
अति सुख बिशरे परम सुख पावै, शो अस्त्री सो कंत कहावै ॥
हहा होइ होत नहीं जानैं, जब जब होइ तबै मन मानैं ॥
ससा उनमन से मन लावै, अनत न जाइ परम सुख पावै ॥
अरु जे तहाँ प्रेम ल्यौ लावै, तो डालह लहैं लैंहि चरन समावैं ॥
षषा षिरत षपत नहीं चेते, षपत षपत गये जुग केते ॥
अब जुग जानि जोरि मन रहै, तौ जहाँ थैं बिछरयो सो थिर रहै ॥
बावन अषिर जोरै आनि, एकौ आषिर सक्या न जानि ॥
सति का शब्द कबीरा कहै, पूछो जाइ कहा मन रहै ॥
पंडित लोगन कौ बौहार, ग्यानवंत कौं तन बिचारि ॥
जाकै हिरदै जैसी होई, कहे कबीर लहैगा सोई ॥ २ ॥

सहजै राँम नाँम ल्यौ लाई, राँम नाँम कहि भगति दिढाई।
राँम नाँम जाका मन माँनाँ, तिन तौ निज सरूप पहिचाँनाँ ॥

निज सरूप निरंजना, निराकार अपरंपार अपार।
राँम नाँम ल्यौ लाइस जियरे, जिनि भूलै बिस्तार ॥

करि बिसतार जग धंधै लाया, अंत काया थैं पुरिष उपाया ॥
जिहि जैसी मनसा तिहि तैसा भावा, ताकूँ तैसा कीन्ह उपावा ॥
तेतौ माया मोह भुलाँनाँ, खसम राँम सो किनहूँ न जाँनाँ ॥
जिनि जाँन्या ते निरमल अंगा, नहीं जाँन्या ते भये भुजंगा ॥
ता मुखि बिष आवै बिष जाई, ते बिष ही बिष मैं रहे समाई ॥
माता जगत भूत सुधि नाँहीं भ्रमि भूले नर आवैं जाहीं ॥
जानि बूझि चेते नहीं अंधा, करम जठर करम के फंधा ॥

करम का बाँधा जीयरा, अह निसि आवै जाइ ॥
मनसा देही पाइ करि, हरि बिसरै तौ फिर पीछैं पछिताइ ॥

तौ करि त्राहि चेति जा अंधा, तजि पर कीरति भजि चरन गोब्यंदा ॥
उदर कूप तजौ ग्रभ बासा, रे जीव राँम नाँम अभ्यासा ॥
जगि जीवन जैसे लहरि तरंगा, खिन सुख कूँ भूलसि बहु संगा ॥
भगति कौं हीन जीवन कछू नाँहीं, उतपति परलै बहुरि समाहीं ॥
भगति हीन अस जीवनाँ, जन्म मरन बहु काल ॥
आश्रम अनेक करसि रे जियरा, राँम बिना कोइ न करैं प्रतिपाल ॥
सोई उपाव करि यहु दुख जाई, ए सब परहरि बिसैं सगाई ॥
माया मोह जरैं जग आगी, ता संगि जरसि कवन रस लागी ॥
त्राहि त्राहि करि हरी पुकारा, साधु संगति मिलि करहु बिचारा ॥
रे रे जीवन नहीं बिश्राँमाँ, सब दुख खंडन राँम को नाँमाँ ॥
राँम नाँम संसार मैं सारा, राँम नाँम भौ तारन हारा ॥

सुम्रित बेद सबै सुनैं, नहीं आवैं कृत काज।
नहीं जैसैं कुंडिल बनित मुख, मुख सोभित बिन राज ॥

अब गहि राँम नाँम अबिनासी, हरि तजि जिनि कतहूँ कैं जासी ॥
जहाँ जाइ तहाँ तहाँ पतंगा, अब जिनि जरसि समझि बिष संगा ॥
चोखा राँम नाँम मनि लीन्हा, भिंग्री कीट भ्यंग नहीं कीन्हाँ ॥
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरबे का करहु बिचारा ॥
मनि भावै अति लहरि बिकारा, नहीं गमि सूझै वार न पारा ॥

भौसागर अथाह जल, तामैं बोहिथ राँम अधार।
कहै कबीर हम हरि सरन, तब गोपद खुर बिस्तार ॥२॥

(बड़ी अष्टपदी रमैंणी)

एक बिनाँनीं रच्या बिनाँन, सब अयाँन जो आपैं जाँन ।।
सत रज तम थैं कीन्हीं माया, चारि खानि बिस्तार उपाया ।।
पंच तत ले कीन्ह बंधानं, पाप पुंनि माँन अभिमानं ।।
अहंकार कीन्हें माया मोहू, संपति बिपति दीन्हीं सब काहू ।।
भले रे पोच अकुल कुलवंता, गुणी निरगुणीं धंन नीधनवंता ।।
भूख पियास अनहित हित कीन्हाँ, हेत मोर तोर करि लीन्हाँ ।।
पच स्वाद ले कीन्हाँ बंधू, बंधे करम जा आहि अबंधू ।।
अचर जीव जंत जे आहीं, संकट सोच बियापैं ताहीं ।।
निंद्या अस्तुति माँन अभिमाँना, इनि झूठैं जीव हत्या गियाँना ।।
बहु बिधि करि संसार भुलावा, झूठैं दोजगि साच लुकावा ।।

माया मोह धन जोबनाँ, इनि बंधे सब लोइ ।
झूठै झूठ बियापिया कबीर, अलख न लखई कोइ ।।

झूठनि झूठ साँच करि जानाँ, झूठनि मैं सब साँच लुकानाँ ।
धंध बंध कीन्ह बहुतेरा, क्रम बिवर्जित रहै न नेरा ।।
षट दरसन आश्रम षट कीन्हाँ, षट रस खाटि काम रस लीन्हाँ।।
चारि वेद छह सास्त्र बखानैं, बिद्या अनंत कथैं को जाँनैं ।।
तप तीरथ कीन्हें ब्रत पूजा, धरम नेम दान पुन्य दूजा ।।
औंर अगम कन्हें ब्यौहारा, नहीं गमि सूझैं वार न पारा ।।
लीला करि करि भेख फिरावा, ओट बहुत कछु कहत न आवा ।।
गहन ब्यंद कछू नहीं सूझै, आपन गोप भयौ आगम बूझै ।।
भूलि परचौ जीव अधिक डराई, रजनी अंध कूप ह्वै आई ।।
माया मोह उनवैं भरपूरी, दादुर दाँमिनि पवनाँ पूरी ।।
तरिपैं बरिषै अखंड धारा, रैंनि भाँमनी भया अंधियारा ।।
तिहि बियोग तजि भए अनाथा, परे निकुंज न पावै पंथा ।।
वेद न आहि कहूँ को मानै, जानि बूझि मैं भया अयानै ।।
नट बहु रूप खेलै सब जाँनैं, कला केर गुन ठाकुर माँने ।।
ओ खेले सब ही घट माँहीं, दूसर कै लेखै कछु नाहीं ।।
जाके गुन सोई पै जाँनैं, औंर को जानै, पार अयानै ।।
भले रे पोच औसर जब आवा, करि सनमाँन पूरि जम पाव ।।
दान पुन्य हम दिहूँ निरासा, कब लग रहूँ नटारंभ काछा ।।
फिरत फिरत सब चरन तुराँनैं, हरि चरित अगम कथै को जानैं ।
गण गंध्रप मुनि अंत न पावा, रह्यो अलख जग धंधै लावा ।।

इहि बाजी सिव बिरंचि भुलाँनाँ, और बपुरा को क्यंचित जानाँ ।।
त्राहि त्राहि हम कीन्ह पुकारा, राखि राखि साईं इहि बारा ।।
कोटि ब्रह्मंड गहि दीन्ह फिराई, फल कर कीट जनम बहुताई ।।
ईस्वर जोग खरा जब लीन्हाँ, टरचो ध्यान तप खंड न कीन्हाँ ।।
सिध साधिका उनथै कहु कोई, मन चित अस्थिर कहुँ कैसै होई ।।
लीला अगम कथै को पारा, बसहु समीप कि रहौ निनारा ।।

खग खोज पीछैं नहीं, तूँ तत अपरंपार ।
बिन परचै का जाँनियैं, सब झूठे अहंकार ।।

अलख निरंजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई ।।
सुंनि असथूल रूप नहीं रेखा, द्रिष्टि अद्रिष्टि छिप्यौ नहीं पेखा ।।
बरन अबरन कथ्यौ नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्यौ समाई ।।
आदि अंत ताहि नहीं मधे, कथ्यौ न जाई आहि अकथे ।।
अपरंपार उपजै नहीं बिनसै, जुगति न जाँनियै कथिये कैसै ।।

जस कथिये तत होत नहीं, जस है तैसा सोइ ।
कहत सुनत सुख उपजै, अरु परमारथ होइ ।।

जाँनसि नहीं कस कथसि अयाँनाँ, हम निरगुन तुम्ह सरगुन जाँनाँ ।।
मति करि हींन कवन गुन आँहीं, लालचि लागि आसिरै रहाई ।।
गुंन अरु ग्याँन दोऊ हम हीनाँ, जैसी कुछ बुधि बिचार तस कीन्हाँ ।।
हम मसकीन कछू जुगति न आवै, ते तुम्ह दरवौ तौ पूरि जन पावै ।।
तुम्हरे चरन कवल मन राता, गुन निरगुन के तुम्ह निज दाता ।।
जहुवाँ प्रगटि बजावहु जैसा, जस अनभै कथिया तिनि तैसा ।।
बाजै जंत्र नाद धुनि होई, जे बजावै सो और कोई ।।
बाजी नाचै कौतिग देखा, जो नचावै सो किनहूँ न पेखा ।।

आप आप थै जानियैं, है पर नाहीं सोइ ।
कबीर सुपिनै केर धंन ज्यूँ, जागत हाथि न होइ ।।

जिनि यहु सुपिनाँ फुर करि जाँनाँ, और सब दुखयादि न आँनाँ ।।
ग्याँन हीन चेत नहीं सूता, मैं जाया बिष हार भै भूता ।।
पारधी बाँन रहै सर साँधै, बिषम बाँन मारै बिष बाँधै ।।
काल अहेड़ी संझ सकारा, सावज ससा सकल संसारा ।।
दावानल अति जरै बिकारा, माया मोह रोकि ले जारा ।।
पवन सहाइ लोभ अति भइया, जम चरचा चहुँ दिसि फिरि गइया ।।
जम के चर चहुँ दिसि फिरि लागे; हंस पंखेरुवा अब कहाँ जाइबे ।।
केस गहै कर निस दिन रहई, जब धरि ऐंचे तब धरि चहई ।।

कठिन पासि कछू चलै न उपाई, जंम दुवारि सीझै सब जाई ।।
सोई त्रास सुनि राँम न गावै, मृगत्रिष्णाँ झूठी दिन धावै ।।
मृत काल किनहूँ नहीं देखा, दुख कौं सुख करि सबही लेखा ।।
सुख करि मूल न चीन्हसि अभागी, चीन्है बिना रहै दुख लागी ।।
नींब काट रस नींब पियारा; यूँ बिष कूँ अमृत कहै संसारा ।।
बिष अंमृत एकै करि साँनाँ, जिनि चीन्ह्याँ तिनहीं सुख माँनाँ ।।
अछित राज दिन दिनहि सिराई, अंमृत परहरि करि बिष खाई ।।
जाँनि अजाँनि जिन्है बिष खावा, परे लहरि पुकारैं धावा ।।
बिष के खाँये का गुँन होई, जा बेद न जानैं परि सोई ।।
मुरछि मुरछि जीव जरिहै आसा, काँजी अलप बहुखीर बिनासा ।।
तिल सुख कारनि दुख अस मेरू, चोरासी लख लीया फेरू ।।
अलप सुख दुख आहि अनंता, मन मैंगल भूल्यौं मैंमंता ।।
दीपक जोति रहै इक संगा, नैन नेह माँनूँ परै पतंगा ।।
सुख बिश्राँम किनहूँ नहीं पावा, परहरि साच झूठ दिन धावा ।।
लालच लागे जनम सिरावा, अति काल दिन आइ तुरावा ।।
जब लग है यहु निज तन सोई, तब लग चेति न देखै कोई ।।
जब निज चलि करि किया पयाँनाँ, भयौ अकाज तब फिर पछिताँनाँ ।।

मृगत्रिष्णाँ दिन दिन ऐसी, अब मोहि कछू न सोहाइ ।
अनेक जतन करि टारिये, करम पासि नहीं जाइ ।।

रे रे मन बुधिवंत भंडारा, आप आप ही करहु बिचारा ।।
कवन सयाँना कौंन बौराई, किहि दुख पइये किहि दुख जाई ।।
कवन सार को आहि असारा, को अनहित को आहि पियारा ।।
कवन साच कवन है झूठा, कवन करू को लागै मीठा ।।
किहि जरिये किहि करिये अनंदा, कवन मुकति को गल के फंदा ।।

रे रे मन मोंहि ब्यौरि कहि, हौं तत पूछौं तोहि ।।
संसै सूल सबै भई, समझाई कहि मोहि ।।

सुनि हंसा मैं कहूँ बिचारी, त्रिजुग जोनि सबै अंधियारी ।।
मनिषा जन्म उत्तिम जौ पावा, जाँनूँ राम तौ सयाँन कहावा ।।
नहीं चेतै तौ जनम गँमावा, परचौ बिहान तब फिरि पछतावा ।।
सुख करि मूल भगति जौ जाँनै, और सबै दुख या दिन आँनै ।।
अंमृत केवल राँम पियारा, और सबै बिष के भंडारा ।।
हरि आहि जौ रमियै राँमाँ, और सबै बिसमा के काँमाँ ।।
सार आहि संगति निरबाँनाँ, और सबै असार करि जाँनाँ ।।

अनहित आहि सकल संसारा, हित करि जांनियै रांम पियारा ॥
साच सोई जे थिरह रहाई, उपजै बिनसै झूठ ह्वै जाई ॥
मींठा सो जो सहजैं पावा, अति कलेस थैं करू कहावा ॥
नाँ जरियै ना कीजै मैं मेरा, तहाँ अनंद जहाँ राम निहोरा ॥
मुकति सोज आपा पर जाँनै, सो पद कहाँ जु भरमि भुलानैं ॥
प्राँननाथ जग जीवनाँ, दुरलभ रांम पियार ।
सुत सरीर धन प्रग्रह कबीर, जीये रे तर्वर पंख बसियार ॥
रे रे जीय अपनाँ दुख न सँभारा, जिहि दुख व्याप्या सब संसारा ॥
मायाँ मोह भूले सब लोई, क्यंचित लाभ माँनिक दीयौ खोई ॥
मैं मेरी करि बहुत बिगूला, जननी उदर जन्म का सूला ॥
बहुतें रूप भेष बहु कीन्हाँ, जुरा मरन क्रोध तन खीनाँ ॥
उपजै बिनसै जोंनि फिराई, सुख कर मूल न पावै चाहा ॥
दुख संताप कलेस बहु पावै, सो न मिलै जे जरत बुझावै ॥
जिहि हित जीव राखिहै भाई, सो अनहित है जाइ बिलाई ॥
मोर तोर करि जरे अपारा, मृगतष्णा झूठी संसारा ॥
माया मोह झूठ रह्यौ लागी, का भयौ इहाँ का ह्वै है आगी ॥
कछु कछु चेति देखि जीव अबहीं, मनिषा जनम न पावै कबहीं ॥
सारि आहि जे संग पियारा, जब चेतैं तब ही उजियारा ॥
त्रिजुग जोनि जे आहि अचेता, मनिषा जनम भयौ चित चेता ॥
आतमाँ मुरछि मुरछि जरि जाई, पिछले दुख कहता न सिराई ॥
सोई त्रास जे जाँनैं हंसा, तौ अजहूँ न जीव करै संतोसा ॥
भौसागर अति वार न पारा, ता तिरिबे का करहु बिचारा ॥
जा जल की आदि अंति नहीं जानियें, ताकौ डर काहे न मानियें ॥
को बोहिथ को खेवट आही, जिहि तिरिये सो लीजै चाही ॥
समझि बिचारि जीव जब देखा, यहु संसार सुपन करि लेखा ॥
भई बुधि कछू ग्याँन निहारा, आप आप ही किया बिचारा ॥
आपण मैं जे रह्यौ समाई, नेड दूरि कथ्यौ नहीं जाई ॥
ताके चीन्हैं परचौ पावा, भई समझि तासूँ मन लावा ॥
भाव भगति हित बोहिया, सतगर खेवनहार ।
अलप उदिक तब जाँणिये, जब गोपदखुर बिस्तार ॥ ३ ॥

(दुपदी रमैंणी)

भरा दयाल बिषहर जरि जागा, गहगहान प्रेम बहु लागा ॥
भया अनंद जीव भये उल्हासा, मिले रांम मनि पूगी आसा ॥

मास असाढ़ रबि धरनि जरावै, जरत जरत जल आइ बुझावै ।।
रुति सुभाइ जिमीं सब जागी, अंमृत धार होइ झर लागी ।।
जिमीं माँहि उठी हरियाई, बिरहनि पीव मिले जन जाई ।।
मनिकाँ मनि के भये उछाहा, कारनि कौन बिसारी नाहा ।।
खेल तुम्हारा मरन भया मोरा, चौरासी लख कीन्हाँ फेरा ।।
सेवग सत जे होइ अनिआई, गुन अवगुन सब तुम्हि समाई ।।
अपने औगुन कहूँ न पारा, इहै अभाग जे तुम्ह न सँभारा ।।
दरवो नहीं काँई तुम्ह नाहा, तुम्ह बिछुरे मैं बहु दुख चाहा ।।
मेघ न बरिखै जाँहि उदासा, तऊ न सारँग सागर आसा ।।
जलहर मरयौ ताहि नहीं भावै, कै मरि जाइ कै उहै पियावै ।।
मिलहु राँम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुरया मैं सकल निरासा ।।
मैं रनिरासी जब निध्य पाई, राँम नाँम जीव जाग्या जाई ।।
नलिनीं कैं ज्यूँ नीर अधारा, खिन बिछुरयाँ थैं रवि प्रजारा ।।
राँम बिनाँ जीव बहुत दुख पावै, मन पतंग जगि अधिक जरावै ।।
माघ मास रुति कवलि तुसारा, भयौ बसंत तब बाग सँभारा ।।
अपनै रंगि सब कोइ राता, मधुकर बार लेहि मैमंता ।।
बन कोकिला नाद गहगहाँना, रुति बसंत सब कै मनि मानाँ ।।
बिरहन्य रजनी जुग प्रति भइया, पिव पिव मिलें कलप टलि गइया ।।
आतमाँ चेति समझि जीव जाई, बाजी झूठ राँम निधि पाई ।।
भया दयाल निति बाजहि बाजा, सहज राँम नाँम मन राजा ।।

जरत जरत जल पाइया, सुख सागर कर मूल ।।
गुर प्रसादि कबीर कहि, भागी संसै सूल ।।

राँम नाँम जिन पाया सारा, अबिरथा झूठ सकल संसारा ।।
हरि उतंग मैं जानि पतंगा, जंबकु केहरि कैं ज्यूँ संगा ।।
क्यंचिति ह्वै सुपनै निधि पाई, नहीं सोभा कौं धरी लुकाई ।।
हिरदै न समाइ जाँनियै नहीं पारा, लागै लोभ न और हकारा ।।
सुमिरत हूँ अपनैं उनमानाँ, क्यंचित जोग राँम मैं जानाँ ।।
मुखाँ साध का जानियैं असाधा, क्यचित जोग राँम मैं लाधा ।।
कुबिज होई अंमृत फल बंछ्या, पहुँचा तब मन पूगी इंछ्या ।।
नियर थैं दूरि दूरि थैं नियरा, रामचरित न जानियै जियरा ।।
सीत थैं अगिन फुनि होई, रबि थैं ससि ससि थैं रबि सोई ।।
सीत थैं अगनि परजई, थल थैं निधि निधि थैं थल करई ।।
बज्र थैं तिण खिण भीतरि होई, तिण थैं कुलिस करे फुनि सोई ।।
गिरबर छार छार गिरि होई, अविगति गति जानैं नहीं कोई ।।

जिहि दुरमति डोल्यौ संसारा, परे असूझि वार नहिं पारा ॥
बिख अंमृत एक करि लीन्हाँ, जिनि चीन्हा सुख तिहकूं हरि दीन्हां ॥
सुख दुख जिनि चीन्हा नहीं जाँनाँ, ग्रासे काल सोग रुति माँनाँ ॥
होइ पतंग दीपक मैं परई, झूठै स्वादि लागि जीव जरई ॥
कर गहि दीपक परहि ज कूपा, बहु अचिरज हम देखि अनूपा ॥
ग्यानहीन ओछी मति बाधा, मुखाँ साध करतूति असाधा ॥
दरसन समि कछू साध न होई, गुर समान पूजिये सिध सोई ॥
भेष कहा जे बुधि बिमूढ़ा बिन परचे जग बूडनि बूड़ा ॥
जदपि रबि कहिये सुर आही, झूठे रवि लीन्हा सुर चाही ॥
कबहूँ हुतासन होइ जरावै, कबहुँ अखंड धार बरिषावै ॥
कबहुँ सीत काल करि राजा, तिहूँ प्रकार बहुत दुख देखा ॥
ताकूँ सेवि मूढ सुख पावै, दौरे लाभ कूँ मूल गवावै ॥
अछित राज दिने दिन होई, दिवस सिराइ जनम गये खोई ॥
मृत काल किनहूँ नही देखा, माया माह धन अगम अलेखा ॥
झूठैं झूठ रह्यौ उरझाई, साचा अलख जग लख्या न जाई ॥
साचैं नियरैं झूठैं दूरी, बिष कूँ कहै सजीवन मूरी ॥
कथ्यौ न जाइ नियरैं अरु दूरी, सकल अतीत रह्या घट पूरी ॥
जहाँ देखौं तहां राम समाँनाँ, तुम्ह बिन ठौर औंर नहिं आँनाँ ॥
जदपि रह्या सकल घट पूरी, भाव बिनाँ अभिअंतरि दूरी ॥
लोभ पाप दोऊ जरैं निरासा, झूठैं झूठि लागि रही आसा ॥
जहुँवाँ ह्वै निज प्रगट बजावा, सुख संतोष तहाँ हम पावा ॥
नित उठि जस कीन्ह परकासा, पावक रहै जैंसे काष्ट निवासा ॥
बिना जुगति कैंसे मथिया जाई, काष्ठैं पावक रह्या समाई ॥
कष्टै कष्ट अग्नि पर जरई, जारैं दार अग्नि समि करई ॥
ज्यूँ राम कहै ते राँम होई, दुख कलेस घालै सब खोई ॥
जन्म के कलि बिष जाँहि बिलाई, भरम करम का कछु न बसाई ॥
भरम करम दोऊ बरतैं लोई, इनका चरित न जाँनै कोई ॥
इन दोऊ संसार भुलावा, इनके लागैं ग्याँन गँवावा ॥
इनकौ मरम पै सोई बिचारी, सदा अनंद लै लीन मुरारी ॥
ग्याँन दृष्टि निज पेखे जोई, इनका चरित जाँनै पै सोई ॥
ज्यूँ रजनी रज देखत अँधियारी, डसे भुवंगम बिन उजियारी ॥
तारे अगिनत गुनहि अपारा, तऊ कछू नही होत अधारा ॥
झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिना भुवंगम डसी दुनियाँई ॥
झूठे झूठ लागि रही आसा, जेठ मास जैसे कुरंग पियासा ॥

इक त्रिषावंत दह दिसि फिर आवे, झूठै लागा नीर न पावे ॥
इक त्रिषावंत अरु जाइ जराई, झूठी आस लागि मरि जाई ॥
नींझर नीर जाँनि परहरिया, करम के बाँधे लालच करिया ॥
कहै मोर कछू आहि न वाही, धरम करम दोऊ मति गवाई ॥
धरम करम दोऊ मति परहरिया, झूठे नाँऊ साच ले धरिया ॥
रजनी अंत भई रवि परकासा, धरम करम धूँ केर बिनासा ॥
रवि प्रकास तारे गुन खीनाँ, आचार ब्यौहार सब भये मलीनाँ ॥
बिष के दाधे बिष नहीं भावै, जरत जरत सुखसागर पावै ॥
अनिल झूठे दिन धावै आसा, अंध दुरगंध सहै दुख त्रासा ॥
इक त्रिषावंत दूसरे रबि तपई, दह दिसि ज्वाला चहूँदिसि जरई ॥
करि सनमुखि जब ग्याँन बिचारी, सनमुखि परिया अगनि मँझारी ॥
गछत गछत तब आगै आवा, बित उनमाँन ढिबुआ इक पावा ॥
सीतल सरीर तन रह्या समाई, तहाँ छाड़ि कत दाझै जाई ॥
यूँ मन बारुनि भया हमारा, दाधा दुख कलेस संसारा ॥
जरत फिरे चौरासी लेखा, सुख कर मूल कितहूँ नहीं देखा ॥
जाके छाड़े भये अनाथा, भूलि परे नहीं पावै पंथा ॥
अछै अभि अंतरि नियरै दूरी, बिन चीन्ह्या क्यूँ पाइये मूरी ॥
जा दिन हंस बहुत दुख पावा, जरत जरत गुरि राम मिलावा ॥
मिल्या राँम रह्या सहजि समाई, खिन बिछुर्‌या जीव उरझै जाई ॥
जा मिलियाँ तैं कीजै बधाई, परमांनद रैनि दिन गाई ॥
सखी सहेली लीन्ह बुलाई, रुति परमानंद भेटिये जाई ॥
चली सखी जहुँवा निज राँमाँ, भये उछाह छाड़े सब काँमाँ ॥
जानूँ कि मोरै सरस बसंता, मैं बलि जाऊँ तोरि भगवंता ॥
भगति हेत गावै लैलीनाँ, ज्यूँ बन नाद कोकिला कीन्हाँ ॥
बाजै संख सबद धुनि बेनाँ, तन मन चित हरि गोबिंद लीनाँ ॥
चल अचल पाँइन पंगुरनी, मधुकरि ज्यूँ लेहि अघरनी ॥
सावज सींह रहे सब माँची, चंद अरु सूर रहै रथ खाँची ॥
गण गंध्रप मुनि जीवै देवा, आरति करि करि बिनवै सेवा ॥
वासि गयंद्र ब्रह्मा करैं आसा, हँम क्यूँ चित दुर्लभ राम दासा ॥
भगति हेतु राँम गुन गावै, सुर नर मुनि दुर्लभ पद पावै ॥
पुनिम बिमल ससि मात बसंता, दरसन जोति मिले भगवंता ॥
चंदन बिलनी बिरहिनि धारा, यूँ पूजिये प्राँनपति राँम पियारा ॥
भाव भगति पूजा अरु पाती, आतमराँम मिले बहु भाँती ॥

राँम राँम राँम रुचि माँनै, सदा अनंद राँम ल्यौ जाँनै ॥
पाया सुख सागर कर मूला, जो सुख नहीं कहूँ समतूला ॥
सुख समाधि सुख भया हमारा, मिल्या न वेगर होइ ॥
जिहि लाधा सो जाँनिहै, राम कबीर और न जानै कोइ॥

(अष्टपदी रमैंणी)

केऊ केऊ तीरथ व्रत लपटानाँ, केऊ केऊ केवल राँम निज जाँनाँ ॥
अजरा अमर एक अस्थाँनाँ, ताका मरम काहू बिरलै जानाँ ॥
अबरन जोति सकल उजियारा, द्रिष्टि समाँन दास निस्तारा ॥
जो नहीं उपज्या धरनि सरीरा, ताकै पथि न सींच्या नीरा ॥
जा नहीं लागे सूरजि के बाँनाँ, सो मोहि आँनि देहु को दाँनाँ ॥
जब नहीं होते पवन नहीं पानी, तब नहीं होती सिष्टि उपाँनी ॥
जब नहीं होते प्यंड न बासा, तब नहीं होते धरनी अकासा ॥
जब नहीं होते गरभ न मूला, तब नहीं होते कली न फूला ॥
जब नहीं होते सबद न स्वादं, तब नहीं होते बिद्या न वादं ॥
जब नहीं होते गुरू न चेला, तब गम अगमै पंथ अकेला ॥
अवगति की गति क्या कहूँ, जिसकर गाँव न नाँव ।
गुन बिहूँन का पेखिये, काकर धरिये नाँव ॥
आदम आदि सुधि नहीं पाई, माँ माँ हवा कहाँ थैं आई ॥
जब नहीं होते राँम खुदाई, साखा मूल आदि नहीं भाई ॥
जब नहीं होते तुरक न हिंदू, माका उदर पिता का ब्यंदू ॥
जब नहीं होते गाइ कसाई, तब बिसमला किनि फुरमाई ॥
भूले फिरैं दीन ह्वै धाँवै, ता साहिब का पंथ न पावै ॥
संजोगैं करि गुँण धरचा, बिजोगैं गुँण जोइ ॥
जिभ्या स्वारथि आपणै कीजै बहुत उपाइ ॥
जिनि कलमाँ कलि माँहि पठावा, कुदरत खोजि तिनहूँ नहीं पावा ॥
कर्म करीम भये कर्तूता, वेद कुरान भये दोऊ रीता ॥
कृतम सो जु गरभ अवतरिया, कृतम सो जु नाव जस धरिया ॥
कृतम सुनित्य और जनेऊ, हिंदू तुरक न जानै भेऊ ॥
मन मुसले की जुगति न जाँनै, मति भूलै द्वै दीन बखानै ॥
पाणी पवन संयोग करि, कीया है उतपाति ।
सुंनि मैं सबद समाइगा, तब कासनि कहिये जाति ॥

तुरकी धरम बहुत हम खोजा, बहु बाजगार करैं ए बोधा ॥
गाफिल गरब करैं अधिकाई, स्वारथ अरथि बधैं ए गाई ॥
जाकौ दूध धाइ करि पीजै, ता माता कौ बध क्यूं कीजै ॥
लहुरै थकै दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो ॥
बेअकली अकलि न जाँनहीं, भूले फिरैं ए लोइ ॥
दिल दरिया दीदार बिन, भिस्त कहाँ थैं होइ ॥
पंडित भूले पढ़ि गुन्य बेदा, आप न पांवैं नाँनाँ भेदा ॥
संध्या तरपन अरु षट करमाँ, लागि रहे इनकैं आशरमाँ ॥
गायत्री जुग चारि पढ़ाई, पूछौ जाइ कुमति किनि पाई ॥
सब में राँम रहै ल्यौ सींचा, इन थैं और कहौ को नीचा ॥
अति गुन गरब करै अधिकाई, अधिकैं गरबि न होइ भलाई ॥
जाकौ ठाकुर गरब प्रहारी, सो क्यूं सकई गरब सँहारी ॥
कुल अभिमाँन बिचार तजि, खोजौ पद निरबाँन ॥
अंकुर बीज नसाइगा, तब मिलै बिदेही थान ॥
खत्री करै खत्रिया धरमो, तिनकूं होय सवाया करमो ॥
जीवहि मारि जीव प्रतिपारैं, देखत जनम आपनौं हारैं ॥
पंच सुभाव जु मेटै काया, सब तजि करम भजैं राँम राया ॥
खत्री सों जु कुटुंब सूं सूझैं, पंचू मेटि एक कूं बूझैं ॥
जो आवध गुर ग्यान लखावा, गहि करवाल धूप धरि धावा ॥
हेला करैं निसाँनै घाऊ, जूझ परै तहाँ मनमथ राऊ ॥
मनमथ मरै न जीवई, जीवण मरण न होइ ॥
सुंनि सनेही राँम बिन, गये अपनपौ खोइ ॥
अरु भूले षट दरसन भाई, पाखंड भेष रहे लपटाई ॥
जैन बोध अरु साकत सैंना, चारवाक चतुरंग बिहूँना ॥
जैन जीव की सुधि न जानैं, पाती तोरि देहुरैं आँनै ॥
अरु पिथमीं का रोम उपारैं, देखत जीव कोटि संहारैं ॥
मनमथ करम करै असरारा, कलपत बिंद धसै तिहि द्वारा ॥
ताकी हत्या होइ अदभूता, षट दरसन मैं जैन बिगूता ॥
ग्यान अमर पद बाहिरा, नेड़ा ही तैं दूरि ॥
जिनि जान्याँ तिनि निकटि है, राँम रह्या सकल भरपूरि ॥
आपन करता भये कुलाला, बहु बिधि सिष्टि रची दर हाला ॥
बिधनाँ कुंभ कीये द्वै थाँना, प्रतिबिंबता माँहि समाँनाँ ॥

बहुत जतन करि बाँनक बाँनाँ, सौं मिलाय जीव तहाँ ठाँना।
जठर अगनि दी कीं परजाली, ता मैं आप करै प्रतिपाली॥
भींतर थै जब बाहिर आवा, सिव सकती द्वै नाँव धरावा॥
भूलै भरमि परै जिनि कोई, हिंदू तुरक झूठ कुल दोई॥
घर का सुत जे होइ अयाँनाँ, ताके संगि क्यूं जाइ सयाँनाँ॥
साची बात कहै जे वासूँ, सो फिरि कहै दिवाँनाँ तासूँ॥
गोप भिन्न है एकै दूधा, कासूँ कहिए बाँम्हन सूधा॥

जिनि यहु चित्र बनाइया, सो साचा सतधार॥
कहै कबीर ते जन भले, जे चित्रवत लेहि बिचार॥५॥

(बारहपदी रमैंणी)

पहली मन में सुमिरौं सोई, ता सम तुलि अवर नहीं कोई॥
कोई न पूजै वाँसूँ प्राँनाँ, आदि अंति वो किनहूँ न जाँनाँ॥
रूप सरूप न आवै बोला, हरू गरू कछू जाइ न तोला॥
भूख न त्रिषा धूप नहीं छाँही, सुख दुख रहित रहै सब माँही॥

अविगत अपरंपार ब्रह्म, ग्याँन रूप सब ठाँम॥
बहु बिचार करि देखिया, कोई न सारिख राँम॥

जो त्रिभुवन पति ओहै ऐसा, ताका रूप कहौ धौं कैसा॥
सेवग जन सेवा कै ताँई, बहुत भाँति करि सेवि गुसाँई॥
तैसी सेवा चाहौ लाई, जा सेवा बिन रह्या न जाई॥
सेव करंताँ जो दुख भाई, सो दुख सुख बरि गिनहु सवाई॥
सेव करंताँ सो सुख पावा, तिन्य सुख दुख दोऊ बिसरावा॥

सेवग सेव भुलानियाँ, पंथ कुपंथ न जान।
सेवक सो सेवा करै, जिहि सेवा भल माँन॥

जिहि जग की तस की तस के ही, आपै आप आथिहै एही॥
कोई न लखई वाका भेऊ, भेऊ होइ तौ पावै भेऊ॥
बावैं न दाँहिनैं आगैं न पीछू, अरध उरध रूप नहीं कीछू॥
माय न बाप आव नहीं जावा, नाँ वहु जण्याँ न को वहि जावा॥
वो है तैसा वोहीं जानैं, ओहीं आहि आहि नहीं आँनैं॥

नैंनाँ बैंन अगोचरीं श्रवनाँ करनीं सार।
बोलन कै सुख कारनैं, कहिये सिरजनहार॥

सिरजनहार नाँउ धूँ तेरा, भौसागर तिरिबे कूँ भेरा॥

जे यहु भेरा राँम न करता, तौ आपैं आप आवेंटि जग मरता ॥
राँम गुसाँई मिहर जु कीन्हाँ, भेरा साजि संत कौं दीन्हाँ ॥
दुख खंडणाँ मही मंडणा, भगति मुकुति बिश्राँम ।
बिधि करि भेरा साजिया, धरचा राँम का नाम ॥
जिनि यह भेरा दिढ़ करि गहिया, गये पार तिन्हौं सुख लहिया ॥
दुमनाँ ह्वै जिनि चित्त डुलावा, करि छिटके थैं थाह न पावा ॥
इक डूबे अरु रहे उबारा, ते जगि जरे न राखणहारा ॥
राखन की कछु जुगति न कीन्हीं, राखणहार न पाया चीन्हीं ॥
जिनि चीन्हा ते निरमल अंगा, जे अचीन्ह ते भये पतंगा ॥
राँम नाँम ल्यौ लाइ करि, चित चेतन ह्वै जागि ।
कहै कबीर ते ऊबरे, जे रहे रांम ल्यौं लागि ॥
अरचित अविगत है निरधारा, जाँण्याँ जाइ न वार न पारा ॥
लोक वेद थैं अछै नियारा, छाड़ि रह्यौ सबही संसारा ॥
जसकर गाँउ न ठाँउ न खेंरा, कैसें गुन बरनूँ मैं तेरा ॥
नहीं तहां रूप रेख गुन बाँनां, ऐसा साहिब है अकुलाँनाँ ॥
नहीं सो ज्वांन न बिरध नहीं बारा, आपैं आप आपनपौ तारा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, जिन कौ लावै भंग ॥
सेवौ तन मन लाइ करि, राम रह्या, सरबंग ॥
नहीं सो दूरि नहीं सो नियरा, नहीं सो तात नहीं सो सियरा ॥
पुरिष न नारि करै नहीं कीरा, धाँम न घाँम न ब्यापै पीरा ॥
नदी न नाव धरनि नाहीं धीरा, नहीं सो कांच नहीं सो हीरा ॥
कहै कबीर बिचारि करि, तासूँ लावो हेत ।
बरन बिबरजत ह्वै रह्या, नां सो स्यांम न सेत ॥
नां वो वारा ब्याह बराता, पीत पितंबर स्याँम न राता ॥
तीरथ ब्रत न आवै जाता, मन नहीं मोनि बचन नहीं बाता ॥
नाद न बिंद गरँथ नहीं गाथा, पवन न पाँणीं संग न साथा ॥
कहै कबीर बिचार करि, ताकै हाथि न नाँहि ।
सो साहिब किनि सेविये, जाके धूप न छाँह ॥
ता साहिब कै लागौ साथा, सुख दुख मेटि रह्यौ अनाथा ॥
ना दसरथ घरि औतरि आवा, नाँ लंका का राव संतावा ॥
देवै कूख न औतरि आवा, ना जसवै ले गोद खिलावा ॥
ना वो ग्वालन कै संग फिरिया, गोबरधन ले न कर धरिया ॥

बाँवन होय नहीं बलि छलिया, धरनी बेद लेन उधरिया ॥
गंडक सालिकराँम न कोला, मछ कछ ह्वै जलहि न डोला ॥
बद्री बैस्य ध्याँन नहीं लावा, परसराँम ह्वै खत्री न संतावा ॥
द्वारामती सरीर न छाड़ा, जगन्नाथ ले प्यंड न गाड़ा ॥

कहै कबीर बिचार करि ये ऊले व्योहार ।
याहीं थै जे अगम है, सो बरति रह्या संसारि ॥

नाँ तिस सबद व स्वाद न सोहा, नाँ तिहि मात पिता नहीं मोहा ॥
नाँ तिहि सास ससुर नहीं सारा, नाँ तिहि रोज न रोवनहारा ॥
नाँ तिहि सूतिग पातिग जातिग, नाँ तिहि माइ न देब कथा पिक ॥
नाँ तिहि ब्रिध बधावा बाजै, नाँ तिहि गीत नाद नहीं साजै ॥
नाँ तिहि जाति पाँत्य कुल लीका, नाँ तिहि छोति पवित्र नहीं सींचा ॥

कहै कबीर बिचारि करि, ओ है पद निरबाँन ।
सति ले मन मैं राखिये, जहाँ न दूजी आँन ॥

नाँ सो आवै ना सो जाई, ताकै बंध पिता नहीं माई ॥
चार बिचार कछु नहीं वाकैं, उनमनि लागि रहौं जें ताकै ॥
को है आदि कवन का कहिये, कवन रहनि वाका ह्वै रहिये ॥

कहै कबीर बिचारि करि, जिनि को खोजै दूरि ।
ध्यान धरौं मन सुध करि, राँम रह्या भरपूरि ॥

नाद बिंद रंक इक खेला, आपै गुरू आप हीं चेला ॥
आपै मंत्र आपैं मंत्रेला, आपै पूजै आप पूजेला ॥
आपै गावै आप बजावै, अपनाँ कीया आप हीं पावै ॥
आपै धूप दीप आरती, अपनीं आप लगावै जाती ॥

कहै कबीर बिचारि करि, झूठा लोहीं चाँम ।
जो या देही रहित हैं, सो है रमिता राँम ॥

(चौपदी रमैंणी)

ऊंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला ॥
हम तुम्ह मां हैं एकै लोहू, एकै प्रान जीवन है मोहू ॥
एकहीं बास रहै दस मासा, सूतग पातग एकै आसा ॥
एकहीं जननीं जन्याँ संसारा, कौंन ग्यान थैं भये निनारा ॥

ग्याँन न पायो बावरे, धरी अविद्या मैंड ।
सतगुर मिल्या न मुक्ति फल ताथैं खाई बैंड ।।
बालक ह्वै भग द्वारे आया, भग भुगतान कूँ पुरिष कहावा ।।
ग्याँन न सुमिरचो निरगुण सारा, विष थैं बिरचि न किया बिचारा ।।

साध न मिटी जनम की, मरन तुरानौं आइ ।
मन क्रम बचन न हरि भज्या, अंकुर बीज नसाइ ।।
तिण चरि सुरही उदिक जु पीया, द्वार दूध बछ कूँ दीया ।।
बछा चूखत उपजी न दया, बछा बाँधि बिछोही मया ।।
ताका दूध आप दुहि पीया, ग्यान बिचार कछू नहीं कीया ।।
जे कुछ लोगनि सोई किया, माला मंत्र बादि ही लीया ।।
पीया दूध रुध्र ह्वै आया, मूई गाइ तब दोष लगाया ।।
बाकस ले चमराँ कूं दीन्हीं, तुचा रँगाइ करौती कीन्हीं ।।
ले रुकरौती बैठे संगा, ये देखी पीछे के रंगा ।।
तिहि रुकरौती पाँणी पीया, बहु कुछ पाँड़े अचिरज कीया ।।

अचिरज कीया लोक मैं, पीया सुहागल नीर ।
इंद्री स्वारथि सब किया, बंध्या भरम सरीर ।।
एकै पवन एक ही पाँणीं, करी रसोई न्यारी जाँनीं ।।
माटी सूँ माटी ले पोती, लागी कहौ कहाँ थूँ छोती ।।
धरती लीपि पवित्र कीन्हीं, छोति उपाय लोक बिचि दीन्हीं ।।
याका हम सूँ कहौ बिचारा, क्यूँ भव तिरिहौ इहि आचारा ।।
ए पाँखंड जीव के भरमाँ, माँनि अमाँनि जीव के करमाँ ।।
करि आचार जु ब्रह्म संतावा, नाँव बिनाँ संतोष न पावा ।।
सालिगराँम सिला करि पूजा, तुलसी तोडि भया नर दूजा ।।
ठाकुर ले पाटै पौढ़ावा, भोग लगाइ अरु आपै खावा ।।
साँच सील का चौका दीजै, भाव भगति कीजै सेवा कीजै ।।
भाव भगति की सेवा माँनैं, सतगुर प्रकट कहै नहीं छाँनैं ।।
अनभै उपजि न मन ठहराई, परकीरति मिलि मन न समाई ।।
जब लग भाव भगति नहीं करिहौ, तब लग भवसागर क्यूँ तिरिहौ ।।

भाव भगति बिसवास बिन, कटै न संसै सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुकति नहीं रे मूल ।।

परिशिष्ट

अर्थात्

श्रीग्रंथसाहब के दिए हुए पदों में से कबीरदास के
उन पदों का संग्रह जो इस ग्रंथावली
में नहीं आए हैं।

---

(१) साखी

आठ जाम चौसठि घरी तुम निरखत रहै जीव ।
नीचे लोइन क्यों करौ सब घट देखौं पीउ ॥ १ ॥
ऊँच भवन कनक कामिनी सिखरि धजा फहराइ ।
ताते भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥ २ ॥
अंबर घनहरु छाइया बरषि भरे सर ताल ।
चातक ज्यों तरसत रहै तिनकौ कौन हवाल ॥ ३ ॥
अल्लह की कर बंदगी जिह सिमरत दुख जाइ ।
दिल महि साँई परगटै बुझै बलंती लाइ ॥ ४ ॥
अवरह कौ उपदेस ते मुख मैं परिहै रेतु ।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु ॥ ५ ॥
कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेसु ।
हम राखे गुरु आपने उन कीनो आदेसु ॥ ६ ॥
आखी केरे माटुके पल पल गई बिहाइ ।
मनु जंजाल न छाड़ई जम दिया दमामा आइ ॥ ७ ॥
आसा करियै राम की अवरै आस निरास ।
नरक परहि ते मानई जो हरिनाम उदास ॥ ८ ॥
कबीर इहु तनु जाइगा सकहु त लेहु बहोरि ।
नागे पाँवहु ते गये जिनके लाख करोरि ॥ ९ ॥
कबीर इहि तनु जाइगा कवनै मारग लाइ ।
कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ॥ १० ॥
एक घड़ी आधी घड़ी आधी हूँ ते आध ।
भगतन सेटी गोसटे जो कीने सो लाभ ॥ ११ ॥
एक मरंते दुइ मुये दोइ मरंतेहि चारि ।
चारि मरंतहि छंहि मुये चारि पुरुष दुइ नारि ॥ १२ ॥
ऐसा एक आधु जो जीवत मृतक होइ ।
निरभै होइ कै गुन रवै जत पेखौ ~~तत~~ सोइ ॥ १३ ॥
कबीर ऐसा को नहीं इह तन देवै फूकि ।
अंधा लोगु न जानई रह्यौ कबीरा कूकि ॥ १४ ॥
ऐसा जंतु इक देखिया जैसी देखी लाख ।
दीसै चंचलु बहु गुना मति हीना नापाक ॥ १५ ॥

कबीर ऐसा बीजु कोइ बारह मास फलंत।
सीतल छाया गहिर फल पंखी केल करंत ॥१६॥
ऐसा सतगुर जे मिलै तुट्ठा करे पसाउ।
मुकति दुआरा मोकला सहजे आवौ जाउ ॥१७॥
कबीर ऐसी होइ परी मन को भावतु कीन।
मरने तै क्या डरपना जब हाथ सिघौरा लीन ॥१८॥
कंचन के कुंडल बने ऊपर लाख जड़ाउ।
दीसहि दाधे कान ज्यों जिन मन नाहीं नाउ ॥१९॥
कबीर कसौटी राम की झूठा टिका न कोइ।
राम कसौटी सो सहै जो मरि जीवा होइ ॥२०॥
कबीर कस्तूरी भया भवर भये सब दास।
ज्यों ज्यों भगति कबीर की त्यों त्यों राम निवास ॥२१॥
कागद केरी ओबरी मसु के कर्म कपाट।
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट ॥२२॥
काम परे हरि सिमिरिये ऐसा सिमरो नित्त।
अमरपुरा बासा करहु हरि गया बहोरै वित्त ॥२३॥
काया कजली बन भया मन कुंजर मयमंतु।
अंक सुग्यान रतन है खेवट बिरला संतु ॥२४॥
काया काची कारवी काची केवल धातु।
साबतु रख हित राम तनु माहि त बिगड़ी बात ॥२५॥
कारन बपुरा क्या करै जो राम न करै सहाइ।
जिहि जिहि डाली पग धरौं सोई मुरि मुरि जाइ ॥२६॥
कबीर कारन सो भयो जो कीनो करतार। -
तिसु बिनु दूसर को नहीं एकै सिरजनुहार ॥२७॥
कालि करंता अबहि करु अब करता सुइ ताल।
पाछै कछू न होइगा जो सिर पर आवै काल ॥२८॥
कीचड़ आटा गिरि परया किछू न आयो हाथ।
पीसत पीसत चाबिया सोई निबह्या साथ ॥२९॥
कबीर कूकरु भौकता कुरंग पिछैं उठि धाइ।
कर्मी सति गुर पाइया जिन हौ लिया छड़ाइ ॥३०॥
कबीर कोठी काठ की दह दिसि लागी आगि।
पंडित पंडित जल मुवे मूरख उबरे भागि ॥३१॥

कोठे मंडप हेतु करि काहे मरहु सँवारि ।
कारज साढ़े तीन हथ घनी त पौने चारि ॥ ३२ ॥
कौड़ी कौड़ी जोरि कै जोरे लाख करोरि ।
चलती बार न कछू मिल्यो लई लँगोटी छोरि ॥ ३३ ॥
खिंथा जलि कोयला भई खापर फूटम फूट ।
जोगी बपुड़ा खेलियो आसनि रही बिभूति ॥ ३४ ॥
कूकर खाना खीचरी जामै अंमृत लोन ।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कौन ॥ ३५ ॥
गंगा तीर जु घर करहि पीवहि निर्मल नीर ।
बिनु हरि भगति न मुकति होइ यों कहि रमे कबीर ॥ ३६ ॥
कबीर राति होवहि कारिआ कारे ऊभे जंतु ।
लै फाहे उठि धावते सिजानि मारे भगवंतु ॥ ३७ ॥
कबीर गरबु न कीजियै चाम लपेटे हाड़ ।
हैवर ऊपर छत्र तर ते फुन धरती गाड़ ॥ ३८ ॥
कबीर गरबु न कीजियै ऊँचा देखि अवासु ।
आजु कालि भुइँ लेटना ऊपरि जामै घासु ॥ ३९ ॥
कबीर गरबु न कीजियै रंकु न हसियै कोइ ।
अजहु सु नाउ समुद्र महि क्या जानै क्या होइ ॥ ४० ॥
कबीर गरबु न कीजियै देही देखि सुरंग ।
आजु कालि तजि जाहुगे ज्यों काँचुरी भुअंग ॥ ४१ ॥
गहगच परयो कुटंब कै कंठै रहि गयो राम ।
आइ परे धर्म राइ के बीचहि धूमा धाम ॥ ४२ ॥
कबीर गागर जल भरी आजु कालि जैहै फूटि ।
गुरु जु न चेतहि आपुनो अधमाझली जाहिगे लूटि ॥ ४३ ॥
गुरु लागा तब जानिये मिटै मोह तन ताप ।
हरख सोग दाझै नहीं तब हरि आपहि आप ॥ ४४ ॥
कबीर चाली भीड़ते सति गुरु लिये छुड़ाइ ।
परा पूरबली भावनी परगति होई आइ ॥ ४५ ॥
चकई जौ निसि बीछुरै आइ मिलै परभाति ।
जो नर बिछुरे राम स्यों ना दिन मिले न राति ॥ ४६ ॥
चतुराई नहिं अति घनी हरि जपि हिरदै माहि ।
सूरी ऊपरि खेलना गिरै त ठाहुर नाहि ॥ ४७ ॥
चरन कमल की मौज को कहि कैसे उनमान ।
कहिबे को सोभा नहीं देखा ही परवान ॥ ४८ ॥

कबीर चावल कारने तुमको मुहली लाइ।
संग कुसंगी बैसते तब पूछै धर्मराइ ॥ ४६ ॥
चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारैं।
जैसे बच रहि कुंज मन माया ममता रे ॥ ५० ॥
चोट सहेली सेल की लागत लेइ उसास।
चोट सहारे सबद की तासु गुरू मैं दास ॥ ५१ ॥
जग कागज की कोठरी अंध परे तिस माँहि।
हौं बलिहारी तिन्न की पैसु जू नीकसि जाहि ॥ ५२ ॥
जग बाँध्यो जिह जेवरी तिह मत बँधहु कबीर।
जैहहि आटा लोन ज्यों सोन समान शरीर ॥ ५३ ॥
जग मैं चेत्यो जानि कै जग मैं रह्यो समाइ।
जिनि हरि नाम न चेतियो बादहि जनमे आइ ॥ ५४ ॥
कबीर जहँ जहँ हौं फिरचो कौतक ठाओ ठाँइ।
इक राम सनेही बाहरा ऊजरु मेरे भाँइ ॥ ५५ ॥
कबीर जाको खोजते पायो सोई ठौर।
सोई फिरि के तू भया जाको कहता और ॥ ५६ ॥
जाति जुलाहा क्या करे हिरदै बसै गुपाल।
कबीर रमइया कंठ मिलु चूकहि सब जंजाल ॥ ५७ ॥
कबीर जा दिन ही मुआ पाछै भया अनंद।
मोहि मिल्यो प्रभु आपना संगी भजहि गोबिंद ॥ ५८ ॥
जिह दर आवत जातहू हटकै नाही कोइ।
सो दरु कैसे छोड़िये जौ दरु ऐसा होइ ॥ ५६ ॥
जीया जो मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु।
दफतर दई जब काढिहै होइगा कौन हवालु ॥ ६० ॥
कबीर जेते पाप किये राखे तलै दुराइ।
परगट भये निदान सब पूछै धर्मराइ ॥ ६१ ॥
जैसी उपजी पेड़ ते जौ तैसी निबहै ओड़ि।
हारा किसका बापुरा पुजहि न रतन करोड़ि ॥ ६२ ॥
जौ मैं चितवौ ना करै क्या मेरे चितवे होइ।
अपना चितव्या हरि करै जो मारै चित न होइ ॥ ६३ ॥
जोर किया सो जुलुम है लेइ जवाब खुदाइ।
दफतर लेखा नीकसै मार मुहै मुह खाइ ॥ ६४ ॥
जो हम जंत्र बजावते टूटि गई सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै चले बजावनहार । ६५ ॥

जौं गृह कर हित धर्म करु नाहिं त करु बैराग ।
बैरागी बंधन करै ताकौ बड़ौ अभागु ॥६६॥

जौं तुहि साध पिरम्भ की सीस काटि करि गोइ ।
खेलत खेलत हाल करि जौ किछु होइ त होइ ॥६७॥

जौं तुहि साध पिरम्म की पाके सेती खेलु ।
काची सरसो पेलि कै ना खलि भई न तेलु ॥६८॥

कबीर झंखु न झंखियै तुम्हरौ कह्यौ न होइ ।
कर्म करीम जु करि रहे मेटि न साकै कोइ ॥६९॥

टालै टोलै दिन गयो व्याज बढंतो जाइ ।
नाँ हरि भज्या ना खत फट्यो काल पहूँचो आइ ॥७०॥

ठाकुर पूजहि मोल ले मन हठ तीरथ जाहि ।
देखा देखी स्वाँग धरि भूले भटका खाहि ॥७१॥

कबीर डगमग क्या करहि कहा डुलावहि जीउ ।
सब सुख की नाइ को राम नाम रस पीउ ॥७२॥

डूबहिगो रे बापुरे बहु लोगन की कानि ।
परोसी के जो हुआ तू अपने भी जानि ॥७३॥

डूबा था पै उब्बर्यो गुन की लहरि झबक्कि ।
जब देख्यो बड़ा जरजरा तब उतरि पर्यो हौं फरक्कि ॥७४॥

तरवर रूपी रामु है फल रूपी बैरागु ।
छाया रूपी साधु है जिन तजिया बादु बिबादु ॥७५॥

कबीर तासौं प्रीति करि जाको ठाकुर राम ।
पंडित राजे भूपती आवहि कौने काम ॥७६॥

तूँ तूँ करता तूँ हुआ मूझ में रही न हूँ ।
जब आपा पर का मिटि गया जित देखौं तित तूँ ॥७७॥

थूनी पाई थिति भई सति गुरु बंधी धीर ।
कबीर हीरा बनजिया मानसरोवर तीर ॥७८॥

कबीर थोडे जल माछली झीवर मेल्यौ जाल ।
इहटौ घनै न छूटिसहि फिरि करि समुद सम्हालि ॥७९॥

कबीर देखि कै किह कहौ कहें न को पतिआइ ।
हरि जैसा तैसा उही रहौ हरखि गुन गाइ ॥८०॥

देखि देखि जग ढूँढिया कहूँ न पाया ठौर ।
जिन हरि का नाम न चेतिया कहा भुलाने और ॥८१॥

कबीर धरती साध की तरकस बैसहि गाहि ।
धरती भार न ब्यापई उनकौ लाहू लाहि ॥८३॥

कबीर नयनी काठ की क्या दिखलावहि लोइ।
हिरदै राम न चेतही इह नयनी क्या होइ ॥८३॥
जा घर साध न सेवियहि हरि की सेवा नाहि।
ते घर मरहट सारखे भूत बसहि तिन माहि ॥८४॥
ना मोहि छानि न छापरी ना मोहि घर नहीं गाउँ।
मति हरि पूछे कौन हैं मेरे जाति न नाँउ ॥८५॥
निर्मल बूँद अकास की लीनी भूमि मिलाइ।
अनिक सियाने पच गये ना निरवारी जाइ ॥८६॥
नृपनारी क्यों निंदियै क्यों हरिचेरी को मान।
ओह माँगु सवारै बिषै को ओह सिमरै हरिनाम ॥८७॥
नैंन निहारी तुझको स्रवन सुनहु तुव नाउ।
बैन उचारहु तुव नाम जो चरन कमल रिद ठाउ ॥८८॥
परदेसी कै घाघरै चहु दिसि लागी आगि।
खिंथा जल कुइला भई तागे आँच न लागि ॥८९॥
परभाते तारे खिसहि त्यों इहु खिसै सरीरु।
पै दुइ अक्खर ना खिसहि त्यों गहि रह्यो कबीरु ॥९०॥
पाटन ते ऊजरु भला राम भगत जिह ठाइ।
राम सनेही बाहरा जमपुर मेरे भाइ ॥९१॥
पापी भगति न पावई हरि पूजा न सुहाइ।
माखी चंदन परहरै जहँ बिगंध तहँ जाइ ॥९२॥
कबीर पारस चंदनै तिन है एक सुगंध।
तिहि मिलि तेउ ऊतम भए लोह काठ निरगंध ॥९३॥
पालि समुद सरवर भरा पी न सकै कोइ नीरु।
भाग बड़े ते पाइयो तू भरि भरि पीउ कबीर ॥९४॥
कबीर प्रीति इकस्यो किए आगंद बद्धा जाइ।
भावैं लाँवे केस कर भावै घररि मुड़ाइ ॥९५॥
कबीर फल लागे फलनि पाकन लागै आँव।
जाइ पहूँचै खसम को जो बीचि न खाई काँव ॥९६॥
बाम्हन गुरु है जगत का भगतन का गुरु नाहि।
उरझि उरझि कै पच मुआ चारहु बेदहु माहि ॥९७॥
कबीर बेड़ा जरजरा फूटे छेक हजार।
हरुये हरुये तिरि गये डूबे जिनि सिर भार ॥९८॥
भली भई जो भौ परचा दिसा गई सब भूलि।
ओरा गरि पानी भया जाइ मिल्यौ ढलि कूलि ॥९९॥

कबीर भली मधूकरी नाना विधि को नाज।
दावा काहू को नहीं बड़ा देस बड़ राजु ॥१००॥
भाँग माछुली सुरापान जो जो प्रानी खाहि।
तीरथ बरत नेम किये ते सबै रसातल जांहि ॥१०१॥
भार पराई सिर धरैं चलियो चाहै बाट।
अपने भारहि ना डरैं आगैं औघट घाट ॥१०२॥
कबीर मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर।
पाछै लागो हरि फिरहि कहत कबीर कबीर ॥१०३॥
कबीर मन पंखी भयो उड़ि उड़ि दह दिसि जाइ।
जो जैसी संगति मिलै सो तैसौ फल खाइ ॥१०४॥
कबीर मन मूड्या नहीं केस मुड़ाये काइ।
जो किछु किया सो मन किया मुंडामुंड अजाइ ॥१०५॥
मया तजी तौ क्या भया जौ मानु तज्या नहीं जाइ।
मान मुनी मुनिवर गले मानु सबै कौ खाइ ॥१०६॥
कबीर महदी करि घालिया आपु पिसाइ पिसाइ।
तैसेई बात न पूछियै कबहु न लाई पाइ ॥१०७॥
माई मूढ़हु तिहि गुरू जाते भरम न जाइ।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दिये बहाइ ॥१०८॥
माटी के हम पूतरे मानस राख्यो नाउ।
चारि दिवस के पाहुने बड़ बड़ रूंधहि ठाउ ॥१०९॥
मानस जनम दुर्लभ है होइ न बारै बारि।
जौ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागैं डारि ॥११०॥
कबीर माया डोलनी पवन झकोलनहारु।
संतहु माखन खाइया छाछि पियै ससारु ॥१११॥
कबीर माया डोलनी पवन बहै हिवधार।
जिन बिलोया तिन पाइया अवर बिलोवनहार ॥११२॥
कबीर माया चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि।
एकु कबीरा ना मुसै जिन कीनी बारह बाटि ॥११३॥
मारी मरौ कुसंग की केले निकटि जु बेरि।
उह झूलै उह चीरिये साकत संगु न हेरि ॥११४॥
मारे बहुत पुकारिया पीर पुकारै और।
लागी चोट मरम्म की रह्यो कबीरा ठौर ॥११५॥
मुकति दुआरा संकुरा राई दसएँ भाइ।
मन तौ मैगल होइ रह्यो निकस्यो क्यों कै जाइ ॥११६॥

मुल्ला मुनारे क्या चढ़हि साँई न बहरा होइ।
जाँ कारन बाँग देहि दिल ही भीतरि जोइ ॥११७॥

मुहि मरने का चाउ है मरौं तौ हरि के द्वार।
मत हरि पूछै को है परा हमारै बार ॥११८॥

कबीर मेरी जाति कौ सब कोइ हँसनेहारु।
बलिहारी इस जातिकौ जिह जपियो सिरजनहारु ॥ ११९॥

कबीर मेरी बुद्धि को जमु न करै तिसकार।
जिन यह जमुआ सिरजिया सु जपिया परवदिगार ॥१२०॥

कबीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु।
आदि जगादि सगस भगत ताकौ सख बिश्राम ॥१२१॥

जम का ठेंगा बुरा हैं ओह नहिं सहिया जा।
एक जु साधु मोहि मिलो तिन लीया अंचल लाइ ॥१२२॥

कबीर यह चेतानी मत सह सारहि जाइ।
पाछै भोग जु भोगवै तिनकी गुड़ लै खाइ ॥१२३॥

रस को गाढ़ो चूसिये गुन को मरिये रोइ।
अवगुन धारै मानसै भलो न कहिये कोइ ॥१२४॥

कबीर राम न चेतिये जरा पहूँच्यौ आइ।
लागी-मंदर द्वारि ते अब क्या काढ़्थो जाइ ॥१२५॥

कबीर राम न चेतियो फिरिया लालच माहि।
पाप करंता मरि गया औध पुजी खिन माहि ॥१२६॥

कबीर राम न छोड़िये तन धन जाइ त जाउ।
चरन कमल चित बोधिया रामहि नाम समाउ ॥१२७॥

कबीर राम न ध्याइयो मोटी लागी खोरि।
काया हाड़ी काठ की ना ओह चढ़ै बहोरि ॥१२८॥

राम कहना महि भेंदु है तामहि एकु बिचारु।
सोइ राम सबै कहहिं सोई कौतुकहारु ॥१२९॥

कबीर राम मैं राम कहु कहिबे माहि बिबेक।
एक अनेकै मिलि गया एक समाना एक ॥१३०॥

रामरतन मुख कोथरी पारख आगै भोलि।
कोइ आइ मिलैगो गाहकी लेगी महँगे मोलि ॥१३१॥

लागी प्रीति सुजान स्यों वरजै लोगु अजानु।
तास्यो टूटी क्यो बनै जाके जीय परानु ॥१३२॥

बाँसु बढ़ाई बूड़िया यों मत डूबहु कोइ।
चंदन कै निकटें बसे बाँसु सुगंध न होइ ॥१३३॥

कबीर बिकारह चितवते झूठे करते आस।
मनोरथ कोइ न पूरियो चाले ऊठि निरास॥ १३४॥

बिरहु भुअंगम मन बसै मत्तु न मानै कोइ।
राम बियोगी ना जियै जियै त बौरा होइ॥१३५॥

बैदु कहै हौं ही भला दारू मेरै बस्सि।
इह तौ बस्तु गोपाल की जब भावै ले खस्सि॥१३६॥

बैष्णव की कूकरि भली साकत की बुरी माइ।
ओह सुनहि हर नाम जस उह पाप बिसाहन जाइ॥१३७॥

बैष्णव हुआ त क्या भया माला मेली चारि।
बाहर कंचनवा रहा भीतरि भरी भंगारि॥१३८॥

कबीर संसा दूरि करु कागद हेरु बिहाउ।
बावन अक्खर सोधि कै हरि चरनों चित लाउ॥१३९॥

संगति करियै साध की अंति करै निर्बाहु।
साकत संगु न कीजिये जाते होइ बिनाहु॥१४०॥

कबीर संगत साध की दिन दिन दूना हेतु।
साकत कारी काँबरी धोए होइ न सेतु॥१४१॥

संत की गैल न छाँड़ियै मारगि लागा जाउ।
पेखत ही पुन्नीत होइ भेटत जपियै नाउ॥१४२॥

संतन की झुरिया भली भठि कुसत्ती गाँउ।
आगि लगै तिह धौलहरि जिह नाहीं हरि को नाँउ॥१४३॥

संत मुये क्या रोइयै जो अपने गृह जाय।
रोवहु साकत बापुरो जु हाटै हाट बिकाय॥१४४॥

कबीर सति गुरु सूरमे बाह्या बान जु एकु।
लागत की भुइ गिरि परचा परा कलेजे छेकु॥१४५॥

कबीर सब जग हौं फिरचो माँदलु कंध चढ़ाइ।
कोई काहू को नहीं सब देखी ठोक बजाइ॥१४६॥

कबीर सब ते हम बुरे हम तजि भलो सब कोइ।
जिन ऐसा करि बूझिया मीतु हमारा सोइ॥१४७॥

कबीर समुंद न छोडियै जौ अति खारो होइ।
पोखरि पोखरि ढूंढते भली न कहियै कोइ॥१४८॥

कबीर मेवा कौ दुइ भले एक संतु इकु रामु।
राम जु दाता मुकति को संतु जपावै नामु॥१४९॥

साँचा सति गुरु मैं मिल्या सबद जु बाह्या एकु।
लागत ही भुइ मिलि गया परचा कलेजे छेकु॥१५०॥

कबीर साकत ऐसा है जैसी लसन की खानि ।
कोने बैठे खाइयै परगट होइ निदान ॥१५१॥
साकत संगु न कीजियैं दूर्हि जइये भागि ।
बासन कारा परसियैं तउ कछु लागै दागु ॥१५२॥
साँचा सतिगुरु क्या करै जो सिक्खा माही चूक ।
अंधे एक न लागई ज्यों बासु बजाइयै फूंकि ॥१५३॥
साधू की संगति रहौ जौ की भूसी खाउ ।
होनहार सो होइहै साकत संगि न जाउ ॥१५४॥
साधु को मिलने जाइये साथु न लीजैं कोइ ।
पाछे पाउँ न दीजियौ आगै होइ सो होइ ॥१५५॥
साधू संग परापति लिखिया होइ लिलाट ।
मुक्ति पदारथ पाइयै ठाकन अवघट घाट ॥१५६॥
सारी सिरजनहार की जाने नाहीं कोइ ।
कै जानै आपन धनी कैं दासु दिवानी होइ ॥१५७॥
सिखि साखा बहुते किये केसी किधो न मीतु ।
चले थे हरि मिलन को बीचैं अटको चीतु ॥१५८॥
सुपने हू बरड़ाइकै जिह मुख निकसै राम ।
ताके पा की पानही मेरे तन को चाम ॥१५९॥
सुरग नरक ते मैं रह्यो सति गुरु के परसादि ।
चरन कमल की मौज महि रहौ अंति अरु आदि ॥१६०॥
कबीर सूख न एह जुग करहि जु बहुतैं मीत ।
जो चित राखहि एक स्यों ते सुख पावहि नीत ॥१६१॥
कबीर सूरज चाँद कै उदय भई सब देह ।
गुरु गोबिंद के बिन मिले पलटि भई सब खेह ॥१६२॥
कबीर सोई कुल भलो जा कुल हरि को दासु ।
जिह कुल दासु न ऊपजे सो कुल ढाकु पलासु ॥१६३॥
कबीर सोई मारिये जिहि मूये सुख होइ ।
भलो भलो सब कोइ कहै बुरो न मानै कोइ ॥१६४॥
कबीर सोइ मुख धन्नि है जा मुख कहिये राम ।
देही किसकी बापुरी पवित्र होइगो ग्राम ॥१६५॥
हंस उड़चौ तनु गाड़िगो सोझाई सैनाह ।
अजहूँ जीउ न छाड़ई रंकाँई नैनाह ॥१६६॥
हज काबे हौं जाइया आगे मिल्या खुदाइ ।
साँई मुझस्यो लर परचा तुझैं किन फुरमाई गाइ ॥१६७॥

हरदी पीर तनु हरे चून चिन्ह न रहाइ ।
बलिहारी इहि प्रीति कौ जिह जाति बरन कुल जाइ ॥१६८॥

हरि का सिमरन छाड़िकै पाल्यो बहुत कुटुंबु ।
धंधा करता रहि गया भाई रहा न बंधु ॥१६९॥

हरि का सिमरन छाड़िकै राति जगावन जाइ ।
सर्पनि होइकै औतरे जाये अपने खाइ ॥१७०॥

हरि का सिमरन छाड़िकै अहोई राखे नारि ।
गदही होइ कै औतरै भारु सहै मन चारि ॥१७१॥

हरि का सिमरन जो करै सो सुखिया संसारि ।
इत उत कतहु न डोलई जस राखै सिरजनहारि ॥१७२॥

हाड़ जरे ज्यों लाकरी केस जरे ज्यों घासु ।
सब जग जरता देखिकै भयो कबीर उदासु ॥१७३॥

है गै बाहन सघन धन छत्रपती की नारि ।
तासु पटंतर ना पुजै हरि जन की पनहारि ॥१७४॥

है गै बाहन सघन धन लाख धजा फहराइ ।
या सुख तैं भिक्खा भली जौ हरि सिमरत दिन जाइ ॥१७५॥

जहाँ ज्ञान तहँ धर्म है जहाँ झूठ तहँ पाप ।
जहाँ लाभ तहँ काल है जहाँ खिमा तहँ आप ॥१७६॥

कबीरा तुही कबीरु तू तेरो नाउ कबीर ।
राम रतन तब पाइयै जो पहिले तजहि सरीर ॥१७७॥

कबीरा धूर सकेल कै पुरिया बाँधी देह ।
दिवस चारि को पेखना अंत खेह की खेह ॥१७८॥

कबीरा हमरा कोइ नहीं हम किसहू के नाहि ।
जिन यहु रचन रचाइया तितहीं माँहि समाहिं ॥१७९॥

कोई लरका बेचई लरकी बेचै कोइ ।
साँझा करे कबीर स्यों हरि सँग बनज करेइ ॥१८०॥

जहँ अनभौ तहँ भै नहीं जहँ भौ तहँ हरि नाहि ।
कह्यौ कबीर बिचारिकै संत सुनहु मन माँहि ॥१८१॥

जोरी किये जुलुम है कहता नाउ हलाल ।
दफतर लेखा माडिये तब होइगो कौन हवाल ॥१८२॥

ढूँढत डोले अंध गति अरु चीनत नाहीं अंत ।
कहि नामा क्यों पाइयै बिन भगतई भगवंत ॥१८३॥

नीचे लोइन कर रहौ जे साजन घट माँहि ।
सब रस खेलो पीय सौं किसी लखावौ नाहि ॥१८४॥

बूड़ा वंस कबीर का उपज्यो पूत कमाल ।
हरि का सिमरन छाड़िकै घर ले आया माल ॥१८५॥
गारग मोतीं वीथरे अंधा निकर्यो आइ ।
जोति बिना जगदीस की जगत उलंघे जाइ ॥१८६॥
राम पदारथ पाइ कै कबिरा गाँठि न खोल ।
नहीं पहन नहीं पारखू नहीं गाहक नहीं मोल ॥१८७॥
सेख सबूरी बाहरा क्या हज कावै जाइ ॥
जाका दिल सावत नहीं ताको कहाँ खुदाइ ॥१८८॥
सुनु सखी पिउ महि जिउ बसै जिउ महि बसै कि पीउ ।
जीव पीउ बूझौ नहीं घट महि जीउ कि पीउ ॥१८९॥
हरि है खाँडू रे तुमहि बिखरी हाथों चुनी न जाइ ।
कहि कबीर गुरु भली बूझाई चीटीं होइ के खाइ ॥१९०॥
गगन दमामा बाजिया पर्यो निसानैं घाउ ।
खेतु जु मार्यो सूरमा जब जूझन को दाउ ॥१९१॥
सूरा सो पहिचानियैं जु लरै दीन के हेत ।
पुरजा पुरजा कटि मरै कबहुँ न छाड़ै खेत ॥१९२॥

(२) पदावली

अंतरि मैल जे तीरथ न्हावै तिसु बैकुंठ न जाना ।
लोक पतीणे कछू न होवै नाहीं राम अयाना ।
पूजहु राम एकु हीं देवा साचा नावण गुरु की सेवा ।
जल कै मज्जन जे गति होवै नितनित मेंडुक न्हावहि ॥
जैसे मेंडुक तैसे ओइ नर फिरि फिरि जोनी आवहि ।
मनहु कठोर मरै बानारस नरक न बाँच्या जाई ॥
हरि का संत मरै हाँड़वैत सगली सैन तराई ॥
दिन सुरैनि बेद नहीं सासतर तहाँ बसै निरकारा ।
कहि कबीर नर तिसहि धियावहु बावरिया संसारा ॥१॥

अधकार सुख कबहि न सोइहै । राजा रंक दोऊ मिलि रोइहै ॥
जो पै रसना राम न कहिबो । उपजत बिनसत रोवत रहिबो ॥
जस देखिय तरवर की छाया । प्रान गये कछु बाकी माया ॥
जस जंती महि जीव समाना । मुये मर्म को काकर जाना ॥
हंसा सरवर काल सरीर । राम रसाइन पीउ रे कबीर ॥२॥

अग्नि न दहै पवन नहीं गमनै तसकर नेरि न आवै ।
राम नाम धन करि संचौनी सो धन कतही न जावै ।।
हमारा धन माधव गोविंद धरनधर इहै सार धन कहियै ।
जो सुख प्रभु गोविंद की सेवा सो सुख राज न लहियै ।।
इसु धन कारण सिव सनकादिक खोजत भये उदासी ।
मन मकुंद जिह्वा नारायण परै न जम की फाँसी ।।
निज धन ज्ञान भगति गुरु दीनी तासु सुमति मन लागी ।
जलत अंग थंभि मन धावत भरम बंधन भौ भागी ।।
कहै कबीर मदन के माते हिरदै देखु बिचारी ।
तुम घर लाख कोटि अस्व हस्ती हम घर एक मुरारी ।। ३ ।।
अचरज एक सुनहु रे पंडिया अब किछु कहन न जाई ।
सुर नर गन गंध्रब जिन मोहे त्रिभुवन मेखलि लाई ।।
राजा राम अनहद किंगुरी बाजै जाकी दृष्टि नाद लव लागै ।
भाठी गगन सिडिया अरु चुंडिया कनक कलस इक पाया ।।
तिस महि धार चुए अति निर्मल रस महि रस न चुआया ।
एक जु बात अनूप बनी है पवन पियाला साजिया ।।
तीन भवन महि एको जोगी कहहु कवन है राजा ।
ऐसे ज्ञान प्रगटचा पुरुषोत्तम कहु कबीर रँगराता ।।
और दुनी सब भरमि भुलानी मन राम रसाइन माता ।। ५ ।।
अनभौ कि नैन देखिया बैरागी अड़े ।
बिनु भय अनभौ होइ बणाँ हंबै ।
सहुह दूरि देखैं ताभौ पावै बैरागी अड़े ।
हुकमै बूझै न निर्भऊ होइ न बणा हंबै ।।
हरि पाखंड न कीजई बैरागी अड़े ।
पाखंडि रता सब लोक बणाँ हंबै ।
तृष्णा पास न छोड़ई बैरागी अड़े ।
ममता जाल्या पिंड बणाँ हंबैं ।।
चिंता जाल तन जालिया बैरागी अड़े ।
जे मन मिरतक होइ बणा हंबै ।।
सत गुरु बिन बैराग न होवई बैरागी अड़े ।
जे लोचै सब कोई बणाँ हंबै ।
कर्म होवै सतगुरु मिलै बैरागी अड़े ।
सहजे पावै सोइ बणा हंबै ।।

कहु कबीर इक बैरागी अड़े ।
मौंको भव जल पारि उतारि बड़ ह्वै ॥ ५ ॥

अब मौंको भये राजा राम सहाई । जनम मरन कटि परम गति पाई ॥
साधू संगति दियो रलाइ । पंच दूत ते लियो छड़ाइ ॥
अमृत नाम जपौ जप रसना । अमोल दास करि लीनो अपना ॥
सति गुरु कीनों पर उपकारु । काढ़ि लीन सागर संसारु ॥
चरन कमल स्यों लागी प्रीति । गोबिंद बसै निता नित चीति ॥
माया तपति बुझ्या अग्यारु । मन संतोष नाम आधारु ॥
जल थल पूरि रहे प्रभु स्वामी । जत पेखौ तत अंतर्यामी ॥
अपनी भगति आपही दृढ़ाई । पूरब लिखतु गिल्या मेरे भाई ॥
जिसु कृपा करै तिसु पूरन साज । कबीर को स्वामी गरीब निवाज ॥६॥

अब मोहि जलत राम जल पाइया । राम उदक तन जलत बुझाइया ॥
मन मारन कारन बन जाइयै । सो जल बिन भगवंत न पाइयै ॥
जेहि पावक सुर नर है जारे । राम उदक जन जलत उबारे ॥
भवसागर सुखसागर माहीं । पीव रहे जल निखूटत नाहीं ॥
कहि कबीर भजु सारिंगपानी । राम उदक मेरी तिषा बुझानी ॥७॥

अमल सिरानो लेखा देना । आये कठिन दूत जम लेना ॥
क्या तै खटिया कहा गवाया । चलहु सिताब दिवान बुलाया ॥
चलु दरहाल दिवान बुलाया । हरि फुर्मान दरगह का आया ॥
करौ अरदास गाव किछु बाकी । लेउ निबेर आज की राती ॥
किछु भी खर्च तुम्हारा सारौ । सुबह निवाज सराइ गुजारौ ॥
साधु संग जाकौ हरि रँग लागा । धन धन सो जन पुरुष सभागा ॥
ईत ऊत जन सदा सुहेले । जन्म पदारथ जीति अमोले ॥
जागत सोया जन्म गँवाया । माल धन जोरया भया पराया ॥
कहु कबीर तेई नर भूले । खसम बिसारि माटी संग रूले ॥८॥

अल्लह एकु मसीति बसतु है अवर मुलकु किसु केरा ।
हिंदू मूरति नाम निवासी दुहमति तत्तु न हेरा ॥
अल्लह राम जीउ तेरी नाई । तू करीमह राम तिसाई ॥
दक्खन देस हरी का बासा पच्छिम अलह मुकामा ॥
दिल महि खोजि दिलै दिल खोजहु एही ठौर मुकामा ।
ब्रह्मन ज्ञान करहि चौबीसा काजी महरम जाना ॥
ग्यारह मास पास कै राखे एकै माहि निधाना ।
कहा उड़ीसे मज्जन कियाँ क्या मसीत सिर नायें ॥

दिल महि कपट निवाज गुजारै क्या हज काबै जायें ।
एते औरत मरदा साजै ये सब रूप तुमारे ॥
कबीर पूँगरा राम अलह का सब गुरु पीर हमारे ।
कहत कबीर सुनहु नर नरवैं परहु एक की सरना ॥
केवल नाम जपहु रे प्रानी तबही निहचैं तरना ॥ ९ ॥

अवतरि आइ कहा तुम कीना । राम को नाम न कबहूँ लीना ॥
राम न जपहु कवन भनि लागे । मरि जैबे कौ क्या करहु अभागे ॥
दुख सुख करिकै कुटंब जिवाया । मरती बार इकसर दुख पाया ॥
कंठ गहन तब कर न पुकारा । कहि कबीर आगे ते न सभारा ॥१०॥

अबर मूये क्या सोग करीजै । तौ कीजै जो आपन जीजै ॥
मैं न मरौं मरिबो संसारा । अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा ॥
या देही परमल महकंदा । ता सुख बिसरे परमानंदा ॥
कुअटा एकु पंच पनिहारी । टूटी लाजु भरै मतिहारी ॥
कहु कबीर इकु बुद्धि बिचारी । ना ऊ कुअटा ना पनिहारी ॥११॥

अव्वल अल्लह नूर उपाया कुदरस के सब बंदे ॥
एक नूर ते सब जन उपज्या कौन भले को मंदे ॥
लोगा भरमि न भूलहु भाई ।

खालिकु खलक खलक महि खालिकु पूर रह्यो सब ठाईं ।
माटी एक अनेक भाँति करि साजी साजनहारे ॥
ना कछु पोच माटी के भाँडे ना कछु पोच कुँभारे ॥
सब महि सच्चा एको सोई तिसका किया सब किछु होई ॥
हुकम पछानै सु एको जानै बंदा कहियै सोई ॥
अल्लह अलख न जाई लखिया गुरु गुड़ दीना मीठा ॥
कहि कबीर मेरी संका नासी सर्व निरंजन डीठा ॥१२॥

अस्थावर जंगम कीट पतंगा । अनेक जनम कीये बहुरंगा ॥
ऐसे घर हम बहुत बसाये । जब हम राम गर्भ होइ आये ॥
जोगी जपी तपी ब्रह्मचारी । कबहु राजा छत्रपति कबहु भेखारी ॥
साकत मरहिं संत जन जीवहि । राम रसायन रसना पीवहि ॥
कहु कबीर प्रभु किरपा कीजै । हारि परै अब पूरा दीजै ॥१३॥

अहि निसि नाम एक जौ जागै । केतक सिद्ध भये लव लागै ॥
साधक सिद्ध सकल मुनि हारे । एकै नाम कलपतरु तारे ॥
जो हरि हरे सु होहि न आना । कहि कबीर राम नाम पछाना ॥१४॥

आकास गगन पाताल गगन है चहु दिसि गगन रहाइले ।
आनँद मूल सदा पुरुषोत्तम घट बिनसै गगन न जाइलै ।
मोहि बैराग भयो इह जीउ आइ कहाँ गयो ॥
पंच तत्व मिलि काया कीनो तत्व कहा ते कीन रे ॥
कर्मबद्ध तुम जीउ कहत हौ कर्महि किन जीउ दीन रे ॥
हरि महि तनु है तनु महि हरि है सर्व निरंतर सोइ रे ॥
कहि कबीर राम नाम न छोड़ौ सहजे होइ सु होइ रे ॥१५॥

अगम दुर्गम गढ़ रचियो बास । जामहि जोति करै परगास ॥
बिजली चमकै होइ अनंद । जिह पोड़े प्रभु बाल गुबिंद ॥
इहु जीउ राम नाम लव लागै । जरा मरन छूटै भ्रम भागै ॥
अवरन बरन स्यों मन ही प्रीति । हौं महि गायत गावहि गीति ॥
अनहद सबद होत झनकार । जिह पौड़े प्रभु श्रीगोपाल ॥
खंडल मंडल मंडल मंडा । त्रिय अस्थान तीनि तिय खंडा ॥
अगम अगोचर रह्या अभ्यंत । पार न पावै को धरनीधर मंत ॥
कदली पुहुप धूप परगास । रज पंकज महि लियो निवास ॥
द्वादस दल अभ्यंतर मंत । जहँ पौड़ै श्रीकवलाकंत ॥
अरध उरध मुख लागो कास । सुन्न मँडल महि करि परगास ॥
ऊहाँ सूरज नाहीं चंद । आदि निरंजन करै अनंद ॥
सो ब्रह्मंडि पिंड सो जानु । मानसरोवर करि स्नानु ॥
सोहं सो जाकहुँ है जाप । जाको लिपत न होइ पुन्न अरु पाप ॥
अबरन बरन घाम नहिं छाम । अबरन पाइयै गुरु की साम ॥
टारी न टरै आवै न जाइ । सुन्न सहज महि रह्या समाइ ॥
मन मद्धे जाने जे कोइ । जो बोलै सो आपै होइ ॥
जोति मंत्रि मनि अस्थिर करै । कहि कबीर सो प्रानी तरै ॥१६॥

आपे पावक आपे पवना । जारै खसम त राखै कवना ॥
राम जपतु तनु जरि किन जाइ । राम नाम चित रह्या समाइ ॥
काको जरै काहि होइ हानि । नटवर खेलै सारिंगपानि ॥
कहु कबीर अक्खर दुइ भाखि । होइगा खसम त लेइगा राखि ॥१७॥

आस पास घन तुरसी का बिरवा माँझ बनारस गाऊँ रे ॥
वाका सरूप देखि मोहीं ग्वारिन मोको छाडि न आउ न जाहु रे ॥
तोहि चरन मन लागो । सारिंगधर सो मिलै जो बड़ भागी ॥
वृंदावन मन हरन मनोहर कृष्ण चरावत गाऊँ रे ॥
जाका ठाकुर तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊँ रे ॥१८॥

इंद्रलोक सिवलोकैं जैबो । ओछे तप कर बाहरि ऐबो ।।
क्या माँगों किछु थिरु नाहीं । राम नाम राखु मन माहीं ।।
सोभा राज बिभव बडि पाई । अंत न काहू संग सहाई ।।
पुत्र कलत्र लक्ष्मी माया । इनते कछू कौने सुख पाया ।।
कहत कबीर अवर नहिं कामा । हमरे मन धन राम को नामा ।।१९।।
इक तु पतरि भरि उरकट कुरकट इक तु पतरि भरि पानी ।।
आस पास पंच जोगिया बैठे बीच नकटि देरानी ।।
नकटी को ठनगन बाडाडूं किनहि बिबेकी काटी तूं ।।
सकल माहि नकटी का बासा सकल मारिऔं हेरी ।।
सकलिआ की हौं बहिन भानजी जिनहि बरी तिसु चेरी ।।
हमरो भर्त्ता बड़ो बिबेकी आपे संत कहावै ।।
ओहु हमारे माथे काइमु औंर हमरै निकट न आवै ।।
नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै डारी ।।
कहु कबीर संतन की बैरनि तीनि लोक की प्यारी ।।२०।।
इन माया जगदीस गुसाईं तुमरे चरन बिसारे ।।
किंचत प्रीति न उपजै जन को जन कहा करे बेचारे ।।
धृग तन धृग धन धृग इह माया धृग धृग मति बुधि फन्नी ।।
इस माया कौं दृढ़ करि राखहु बाँधे आप बचन्नी ।।
क्या खेती क्या लेवा देवा परपंच झूठ गुमाना ।।
कहि कबीर ते अंत बिगूते आया काल निदाना ।।२१।।
इसु तन मन मध्ये मदन चोर । जिन ज्ञानरतन हरि लीन मोर ।।
मैं अनाथ प्रभु कहौं काहि । को कौन बिगूतो मैं को आहि ।।
माधव दारुन दुख सह्यौ न जाइ । मेरो चपल बुद्धि स्यों कहा बसाइ ।।
सनक सनंदन सिव सुकादि । नाभि कमल जाने ब्रह्मादि ।।
कविजन जोगी जटाधारि । सब आपन औसर चले सारि ।।
तू अथाह मोहि थाह नाहिं । प्रभु दीनानाथ दुख कहौं काहि ।।
मेरो जनम मरन दुख आथि धीर । सुखसागर गुन रव कबीर ।।२२।।
इहु धन मेरो हरि को नाउ । गाँठि न बाँधौ बेचि न खाँउ ।।
नाँउ मेरे खेती नाँउ मेरी बारी । भगति करौं जन सरन तुम्हारी ।।
नाँउ मेरे माया नाँउ मेरे पूँजी । तुमहि छोड़ि जानौ नहि दूजी ।।
नाँउ मेरे बंधिय नाँउ मेरे भाई । नाँउ मेरे संगी अंति होई सहाई ।।
माया महि जिसु रखै उदास । कहि कबीर हौं ताको दास ।।२३।।

उदक समुंद सलल की साख्या नदी तरंग समावहिंगे ॥
सुन्नहि सुन्न मिल्या समदर्सी पवन रूप होइ जावहिंगे ॥
बहुरि हम काहि आवहिगे ।
आवन जाना हुक्म तिसै का हुक्मै बुज्झि समावहिंगे ॥
जब चूकै पंच धातु की रचना ऐते भर्म चुकावहिंगे ॥
दर्सन छोड़ भए समदर्सी एको नाम धियावहिंग ॥
जित हम लाए तितही लागे तैसे करम कमावहिंगे ॥
हरि जी कृपा करै जौ अपनी तौ गुरु के सबद कमावहिंगे ॥
जीवत मरहु मरहु फुनि जीवहु पुनरपि जन्म न होई ॥
कह कबीर जो नाम समाने सुन्न रह्याँ लव सोई ॥ २४ ॥
उपजै निपजै निपजिस भाई । नयनहु देखत इह जग जाई ॥
लाज न मरहु कहौ घर मेरा । अंत की बार नहीं कछु तेरा ॥
अनेक जतन कर काया पाली । मरती बार अगनि संग जाली ॥
चोवा चंदन मर्दन अंगा । सो तनु जले काठ के संगा ॥
कहु कबीर सुनहु रे गुनिया । बिनसैगो रूप देखैं सब दुनिया ॥ २५ ॥
उलटत पवन चक्र षट भेदै सुरति सुन्न अनुरागी ॥
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोज बैरागी ॥
मेरो मन मनही उलटि समाना ।
गुरु परसादि अकल भई अवरै नातरु था बेगाना ॥
निबरैं दूरि दूरि फनि निबरैं जिन जैसा करि मान्या ।
अलउती का जैसे भया बरेडा जिन पिया तिन जान्या ॥
तेरी निर्गुण कथा काहि स्यों कहिये ऐसा कोई बिबेकी ॥
कहु कबीर निज दिया पलीता तिनतैं सीझल देखी ॥ २६ ॥
उलटि जात कुल दोऊ बिसारी । सुन्न सहजि महि बुनत हमारी ॥
हमरा झगरा रहा न कोऊ । पंडित मुल्ला छाड़ै दोऊ ॥
बुनि बुनि आप आप पहिरावौं । जह नहीं आप तहाँ ह्वै गावौं ॥
पंडित मुल्ला जो लिखि दिया । छाड़ि चले हम कछू न लिया ॥
रिदै खलासु निरिखि ले मीरा । आपु खोजि खोजि मिलै कबीरा ॥२७॥
उस्तुति निंदा दोऊ बिबरजित तजहू मानु अभिमान ॥
लोहा कंचन सम करि जानहि ते मूरति भगवान ॥
तेरा जन एक आध कोई ।
काम क्रोध लोभ मोह बिबरजित हरिपद चीन्है सोई ॥
रजगुण तमगुण सतगुण कहियै इह तेरी सब माया ॥
चौथे पद को जो नर चीन्है तिनहि परम पद पाया ।

तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ॥
त्रिस्ना अरु माया भ्रम चूका चितवत आतमरामा ॥
जिह मदिर दीपक परिगास्या अंधकार तह नासा ॥
निरभौ पूरि रहे भ्रम भागा कहि कबीर जनदासा ॥२८॥
ऋद्धि सिद्ध जाकौ फुरी तब काहु स्यों क्या काज ॥
तेरे कहिने कौ गति क्या कहौं मैं बोलत ही बड़ लाज ॥
राम जह पाया राम ते भवहि न बारे बार ॥
झूठा जग डहकै घना दिन दुइ बर्तन की आज ॥
राम उदक जिह जन पिया तिह बहुरि न भई पियासा ॥
गुरु प्रसादि जिहि बुझिया आसा ते भया निरासा ॥
सब सचुन दरि आइया जौ आतम भया उदास ॥
राम नाम रस चाखिया हरि नामा हरि तारि ॥
कहु कबीर कंचन भया भ्रम गया समुद्रै पारि ॥२९॥
एक कोट पंचसिक दारा पंचे माँगहि हाला ।
जिमि नाही मैं किसी की बोई ऐसा देव दुखाला ॥
हरि के लोगा मोकौ नीति डसै पटवारी ।
ऊपर-भुजा करि मैं गुरुपहि पुकारा तिन ही लिया उबारी ॥
नव डाडी दस मुंसफ धावहि रइयति बसन न देही ।
डोरी पूरी मापहि नाही बहु बिष्टाला लेही ॥
बहतरि घर इक पुरुष समाया उन दीया नाम लिखाई ।
धर्मराय का दफ्तर सोध्या बाकी रिज मन काई ।।
संता कौ मति कोई निदहु संत राम है एको ।
कहु कबीर मैं सो गुरु पाया जाका नाउ बिबेको ॥३०॥
एक जोति एका मिली किबा होइ न होइ ।
जितु घटना मन उपजै फूटि मरै जन सोइ ॥
सावल सुंदर रामय्या मेरा मन लागा तोहि ।
साधु मिलै सिधि पाइयै कियेहु योग कि भोग ॥
दुहु मिलि कारज ऊपजै राम नाम संयोग ।
लोग जानै इहु गीता है इहु तौ ब्रह्म बिचार ॥
ज्यो कासी उपदेस होइ मानस मरती बार ।
कोई गावै कोई सुनै हरि नामा चितु लाइ ।
कहु कबीर संसा नहीं अंत परम गति पाइ ॥३१॥

एक स्वान कै घर गावरण, जननी जानत सुत बड़ा होत है।
इतना कुन जानै जि दिन दिन अवध घटत है॥
मोर मोर करि अधिक लाडु धरि पेखत ही जमराउ हँसै।
ऐसा तै जगु भरम भुलाया। कैसे बूझै जब मोह्या है माया॥
कहत कबीर छोड़ि विषया रस इतु संगति निहचौ मरना।
रमय्या जपहु प्राणी अनत जीवण बाणी इन बिधि भवसागर तरना।
जाँति सुभावै ता लागे भाउ। मर्म भुलावा बिचहु जाइ।
उपजै सहज ज्ञान मति जागै। गुरु प्रसाद अंतर लव लागै॥
इतु संगति नाहीं मरणा। हुकुम पछाणि ता खसमै मिलणा॥३२॥
ऐसो अचरज देख्यौ कबीर। दधि कै भोलै बिरोलै नीर॥
हरी अंगूरी गदहा चरैं। नित उठि हासैं हीगै मरै॥
माता भैसा अम्मुहा जाइ। कुदि कुदि चरै रसातल पाइ॥
कहु कबीर परगट भई खेंड़। ले ले कौ चूघे नित भेड़॥
राम रमत मति परगटि आई। कहु कबीर गुरु सोझी पाई॥३३॥

ऐसो इहु संसार पेखना रहन न कोऊ पैहै रै।
सूधे सूधे रेंगि चलहु तुम नतर कुधका दिवैहै रे॥
बारे बूढ़े तरुने भैया सबहू जम लै जैहैं रे।
मानस बपुरा मूसा कीनो मींच बिलैया खैहै रे॥
धनवंता अरु निर्धन मनई ताकी कछू न कानी रे।
राजा परजा सम करि मारै ऐसो काल बढ़ानी रे॥
हरि के सेवक जो हरि भाये तिनकी कथा निरारी रे।
आवहि न जाहि न कबहूँ मरतो पारब्रह्म संगारी रे॥
पुत्र कलत्र लच्छमी माया ईहै तजहु जिय जानी रे।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलिहै सारंगपानी रे॥३४॥

ओई जू दीसहि अंबरि तारे। किन ओइ चीते चीतन हारे।
कहु रे पंडित अंबर कास्यो लागा। बूझै बूझनहार सभागा॥
सूरज चंद्र करहि उजियारा। सब महि पसरया ब्रह्म पसारया॥
कहु कबीर जानैगा सोई। हिरदै राम मुखि रामै होई॥३५॥
कंचन स्यो पाइयै नहीं तोलि। मन दे राम लिया है मोलि॥
अब मोहि राम अपना करि जान्या। सहज सुभाइ मेरा मन मान्या॥
ब्रह्मै कथि कथि अंत न पाया। राम भगति बैठे घर आया॥
कहु कबीर चंचल मति त्यागी। केवल राम भक्ति निज भागी॥३६॥

कत नहीं ठौर मूल कत लावौ । खोजत तनु महि ठौर न पावौ ।।
लागी होइ सो जानै पीर । राम भगत अनियाले तीर ।।
एक भाइ देखौ सब नारी । क्या जाना सह कौन पियारी ।
कहु कबीर जाके मस्तक भाग । सब परिहरि ताको मिले सुहाग ।।३७।।

करवतु भला न करवट तेरी । लागु गले सुन बिनती मेरी ।।
हौं बारी मुख फेरि पियारे । करवट दे मोको काहे को मारे ।।
जौ तन चीरहि अंग न मोरौं । पिंड परै तौ प्रीति न तोरौं ।।
हम तुम बीच भयो नहीं कोई । तुमहि सुकंत नारि हम सोई ।।
कहत कबीर सुनहु रे होई । अब तुमरी परतीति न होई ।।३८।।

कहा स्वान को सिमृति सुनाये । कहा साकत पहि हरि गुन गाये ।।
राम राम राम रमे रमि रहियै । साकत स्यों भूलि नहिं कहियै ।।
कौआ कहा कपूर चराये । कह बिसियर को दूध पिआये ।।
सत संगति मिलि बिबेक बुधि होई । पारस परस लोहा कंचन सोई ।।
साकत स्वान सब करै कहाया । जो धुरि लिख्या सु करम कमाया ।।
अमिरत लै लै नीम सिचाई । कहत कबीर वाको सहज न जाई ।।३९।।

काम क्रोध तृस्ना के लीने गति नहि एकै जानी ।।
फूटी आँखैं कछू सूझै बूड़ि मुये बिनु पानी ।।
चलत कत टेढ़े टेढ़े टेढ़े ।
असिथ चर्म बिष्टा के मूंदे दुरगंधहि के बेढ़े ।।
राम न जपहु कौन भ्रम भूले तुमते काल न दूरे ।
अनेक जतन करि इह तन राखहु रहै अवस्था पूरे ।।
आपन कीया कछू न होवै क्या को करै परानी ।
जाति सुभावै सति गुरु भेंटै एको नाम बखानी ।।
बलुवा के धरुआ मैं बसते फुलवत देह अयाने ।
कहु कबीर जिह राम न चेत्यो बूड़े बहुत सयाने ।।४०।।

काया कलालनि लादनि मेलै गुरु का सबद गुड़ कीनु रे ।
त्रिस्ना काल क्रोध मद मतसर काटि काटि कसु दीनु रे ।।
कोई हेरै संत सहज सुख अंतरि जाको जप तप देउ दलाली रे ।
एक बूंद भरि तन मन देवो जो मद देइ कलाली रे ।।
भुवन चतुरदस भाठी कीनी ब्रह्म अगिन तन जारी रे ।
मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे ।।
तीरथ बरत नेम सचि संजम रवि ससि गहनै देउ ।
सुरति पियास सुधारस अमृत एहु महारसु पेउ रे ।।

निरझर धार चुश्री अति निर्मल इह रस मनुश्रा रातो रे ।
कहि कबीर सगले मद छूछे इहै महारस साचो रे ॥४१॥
कालबूत की हस्तनी मन बौरा रे चलत रच्यो जगदीस ।
काम सुजाइ गज बसि परे मन बौरा रे अंकसु सहियो सीस ॥
बिषय बाचु हरि राचु समझु मन बौरा रे ।
निर्भय होइ न हरि भजे मन बौरा रे गह्यो न राम जहाज ॥
मर्कट मुष्टी अनाज की बन बौरा रे लीनी हाथ पसारि ।
छूटन को संसा परचा मन बौरा रे नाच्यो घर घर बारि ॥
ज्यों नलनी सुअटा गह्यो मन बौरा रे माथा इहु ब्योहारु ।
जैसा रंग कसुँम का मन बौरा रे त्यों पसरचो पासारु ॥
न्हावन को तीरथ घने मन बौरा रे पूजन को बहु देव ।
कहु कबीर छूटत नहीं मन बौरा रे छूट न हरि की सेव ॥४२॥
काहू दीने पाट पटंबर काहू पलघ निवारा ।
काहू गरी गोदरी नाहीं काहू खान परारा ॥
अहि रखं बादु न कीजै रे मन सुकृत करि करि लीजै रे मन ।
कुमरै एक जु माटी गूँधी बहु बिधि बानी लाई ॥
काहू कहि मोती मुकताहल काहू ब्याधि लगाई ।
सूमहि धन राखन कौ दीया मुगध कहै धन मेरा ॥
जम का दंड मुंड महि लागे खिन महि करै निबेरा ।
हरि जन ऊतम भगत सदावै आज्ञा मन सुख पाई ॥
जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा मंत्र बसाई ।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु मेरी मेरी झूठी ॥
चिरगट फारि चटारा लै गयो तरी तागरी छूटी ॥४३॥
किनही बनज्या काँसा तांबा किनही लोंग सुपारी ।
संतहु बनज्या नाम गोबिंद का ऐसी खेप हमारी ।
हरि के नाम के ब्यापारी ।
हीरा हाथ चढ़्या निर्मोलक छूटि गई संसारी ॥
साँचे लाए तो सच लागे साँचे के ब्योपारी ।
साँची बस्तु के भार चलाए पहुँचे जाइ भंडारी ॥
आपहि रतन जवाहर मानिक आपै है पासारी ।
आपै ह्वै दस दिसि आप चलावै निहचल है ब्यापारी ॥
मन करि बैल सुरति करि पैडा ज्ञान गोनि भरी डारी ।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु निबही खेप हमारी ॥४४॥

कियो सिंगार मिलन के ताईं। हरि न मिले जगजीवन गुसाईं।
हरि मेरो पितर हौं हरि की बहुरिया। राम बड़े मैं तनक लहुरिया।।
धनि पिय एकै संग बसेरा। सेज एक पै मिलन दुहेरा।।
धन्न सुहागनि जो पिय भावै। कहि कबीर फिर जनमि आवै।।४५।।
कूटन सोइ जु मन को कूटै। मन कूटै तौ जम तै छूटै।।
कुटि कुटि मन कसवही लावे। सो कूटनि मुकति बहु पावै।।
कूटन किसै कहहु संसार। सकल बोलन के माहि बिचार।।
नाचन सोइ जु मन स्यौ नाचे। झूठ न पतियै परचै साचै।।
इसु मन आगे पूरै ताल। इसु नाचन के मन रखवाल।।
बाजारी सो बजारहि सोधै। पाँच पलीतह को परबोधै।।
नव नायक की भगतिप छाने। सो बाजारी हम गुरु माने।।
तस्कर सोइ जिता तित करै। इंद्री कै जतनि नाम ऊंचरै।।
कहु कबीर हम ऐसे लक्खन। धन्न गुरुदेव अतिरूप बिचक्खन।।४६।।
कोऊ हरि समान नहीं राजा।

ए भूपति सब दिवस चारि के झूठे करत दिवाजा।
तेरो जन होइ सोइ कत डोलै तीनि भवन पर छाजा।।
हात पसारि सकै को जन कौ बोलि सकै न अंदाजा।।
चेति अचेति मूढ़ मन मेरे बाजे अनहद बाजा।।
कहि कबीर संसा भ्रम चूको ध्रुव प्रह्लाद निवाजा।।४७।।

कोटि सूर जाके परगास। कोटि महादेव अरु कबिलास।।
दुर्गा कोटि जाकै मर्दन करै। ब्रह्मा कोटि बेद उच्चरै।।
जौ जाँनौ तौ केवल राम। आन देव स्यो नाहीं काम।।
कोटि चंद्र में करहि चराक। सुर तेतीसौ जेवहि पाक।।
नवग्रह कोटि ठाढ़े दरबार। धर्म कोटि जाके प्रतिहार।।
पवन कोटि चौबारे फिरहि। बासक कोटि सेज बिस्तरहिं।।
समुंद कोटि जाके पनिहार। रोमावलि कोटि अठारहि भार।।
कोटि कुबेर भरहिं भंडार। कोटिक लखमी करै सिंगार।।
कोटिक पाप पुन्य बहु हिराहि। इंद्र कोटि जाके सेवा कराहि।।
छप्पन कोटि जाके प्रतिहार। नगरी नगरी खियत अपार।।
लट छूटी बरतै बिकराल। कोटि कला खेलै गोपाल।।
कोटि जग जाकै दरबार। गंधर्व कोटहि करहि जयकार।।
बिद्या कोटि सबै गुन कहै। ताऊ पारब्रह्म का अंत न लहै।।
बावन कोटि जाकै रोमावली। रावन सैना जह ते छली।।

सहस कोटि बहु कहत पुरान। दुर्योधन का मथिया मान ॥
कंद्रप कोटि जाकै लवै न धरहि। अंतर अंतर मनसा हरहि ॥
कहि कबीर सुनि सारँगपान। देहि अभयपद मानी दास ॥४८॥

कोरी को काहु भरम न जाना। सब जग आन तनायो ताना ॥
जब तुम सुनि ले बेद पुराना। तब हम इतनकु पसरयो ताना।
धरनि अकास की करगह बनाई। चंद सुरज दुइ साथ चलाई॥
पाई जोरि बात इक कीनी तह ताती मन मानी॥
जोलाहे घर अपना चीन्हा घट ही राम पिछाना॥
कहत कबीर कारगह तोरी। सूतै सूत मिलाये कोरी॥४९॥
भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमष इहु मन लाया ॥
गोबिंद हम ऐसे अपराधी।
जिन प्रभु जीउ पिंड था दीया तिसकी भाव भगति नहिं साधी॥
परधन परतन परतिय निंदा पर अपवाद न छूटै॥
आवागमन होत है फुनि फुनि इहु परसंग न छूटै॥
जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमष न कीनो मैं फेरा ॥
लंपट चोर धूत मतवारे तिन सँगि सदा बसेरा।
दया धर्म अो गुरु की सेवा ए सुपनंतरि नाहीं।
दीन दयाल कृपाल दमोदर भगति बछल भैहारी ॥
कहत कबीर भीर जनि राखहु हरि सेवा करौं तुमारी ॥५०॥
कौन तो पूत पिता को काको। कौन मेरे को देइ संतापो ॥
हरि ठग जग को ठगौरी लाई। हरि के बियोग कैसे जियों मेरी माई ॥
कौन को पुरुष कौन की नारी। या तत लेहु सरीर बिचारी ॥
कहि कबीर ठग स्यों मन मान्या। गई ठगौरी ठग पहिचान्या ॥५१॥
क्या जप, क्या तप क्या ब्रत पूजा। जाके रिदै भाव है दूजा ॥
रे जन मन माधव स्यों लाइयै। चतुराई न चतुर्भज पाइयै ॥
परिहरि लोभ अरु लोकाचार। परिहरि काम क्रोध अहंकार ॥
कर्म करत बद्धे अहंमेव। मिल पाथर की करही सेव ॥
कहु कबीर भगत कर पाया। भोलै भाइ मिलै रघुराया ॥५२॥
क्या पढ़िये क्या गुनियै। क्या वेद पुराना सुनियै ॥
पढ़े सुनै क्या होई। जौ सहज न मिलियो सोई ॥
हरि का नाम न जपसि गँवारा। क्या सोचहि बारंबारा ॥

अँधियारे दीपक चहियै। इक वस्तु अगोचर लहियै ॥
वस्तु अगोचर पाई। घट दीपक रह्या समाई ॥
कहि कबीर अब जान्या। जब जान्या तौ मन मान्या ॥
मन माने लोग न पतीजै। न पतीजै तौ क्या कीजै ॥५३॥
खसम मरे तौ नारी न रोवै। उस रखवारा औरो होवै ॥
रखवारे का होइ बिनास। आगै नरक इहा भोग बिलास ॥
एक सुहागिन जगत पियारी। सगले जीव जंत की नारी ॥
सोहागिन गल सोहै हार। संत को विष बिगसै संसार ॥
करि सिंगार बहै पखियारी। संत की ठिठकी फिरै बिचारी ॥
संत भागि ओह पाछै परै। गुरु परसादी मारहु डरै ॥
साकत की ओह पिंड पराइणि। हमको दृष्टि परै त्रखि डाइणि ॥
हम तिसका बहु जान्या भेव। जबहु कृपाल मिले गुरु देव ॥
कहु कबीर अब बाहर परी। संसारै कै अंचल लरी ॥५४॥
गंग गुसाइन गहिर गँभीर। जंजीर बाँधि करि खरे कबीर ॥
मन न डिगै तन काहे को डराइ। चरन कमल चित रह्यो समाइ ॥
गंगा की लहरि मेरी टूटी जंजीर। मृगछाला पर बैठे कबीर ॥
कहि कबीर कोऊ संग न साथ। जल थल राखन है रघुनाथ ॥५५॥
गंगा के संग सलिता बिगरी। सो सलिता गंगा होइ निबरी ॥
बिगरयो कबीरा राम दुहाई। साचु भयो अन कतहि न जाई ॥
चंदन कै संगि तरवर बिगरयो। सो तरवर चंदन ह्वै निबर्यो ॥
पारस के सँग ताँबा बिगर्यो। सो ताँबा कंचन ह्वै निबर्यो ॥
संतन संग कबीरा बिगर्यो। सो कबीर राम ह्वै निबर्यो ॥५६॥
गगन नगरि इक बूँद न बर्षै नाद कहा जु समाना ॥
पारब्रह्म परमेसर माधव परम हंस ले सिधाना ॥
बाबा बोलते ते कहा गये देही कै संगि रहते ॥
सुरति माहि जो निरते करते कथा वार्ता कहते ॥
बजावनहारी कहाँ गयी जिन इहु मंदर कीना ॥
साखी सबद सुरति नहीं उपजै खिंच तेज सब लीना ॥
स्रवननि बिकल भये संगि तेरे इंद्री का बल थाका ॥
चरन रहे कर ढरक परे हैं मुखहु न निकसै बाता ॥
थाके पंचदूत सब तस्कर आप आपणै भ्रमते ॥
थाका मन कुंजर उर थाका तेज सूत धरि रमते ॥

मिरतक भये दसै बंद छूटे मित्र भाई सब छोरे।
कहत कबीरा जो हरि ध्यावै जीवन बंधन बोरे ॥५७॥

गगन रसाल चुए मेरी भाठी। संचि महारस तन भया काठी॥
वाकौं कहिये सहज मतवारा। पीवत राम रस ज्ञान विचारा॥
सहज कलानिनि जौ मिलि आई। आनंदि माते अनदिन जाई॥
चीन्हत चीत निरंजन लाया। कहु कबीर तौ अनभव पाया ॥५८॥

गज नव गज दस गज इक्कीस पुरी आये कत नाई।
साठ सूत नव खंड बहत्तर पाटु लगो अधिकाई॥
गई बुनावन माहो। घर छोड़यो जाइ जुलाहो।
गजी न मिनियैं तोलि न तुलियै पाँच न सेर अढ़ाई।
जौं जरि पाचन बेगि न पावै झगरू करै घर आई॥
दिन की बैंठ खसम की बरकस इह बेला कत आई।
छूटे कुंडे भींगै पुरिया चल्यौ जुलाहो रिसाई॥
छोछी नली तंतु नहीं निकसै नतरु रही उरझाही।
छोड़ि पसारई हारहु बपुरी कहु कबीर समुझाही ॥५९॥

गज साढे तैं तै धोतिया तिहरे पाइनि तग्गा।
गली जिना जपमालिया लौंटे हत्थिनि बग्गा॥
ओइ हरिके संतन आखि यदि बानारसि के ठग्गा।
ऐसे संत न मोकौ भावहि डाला स्यों पेड़ा गटकावहि॥
बासन माजि चरावहि ऊपर काठी धोइ जलावहि।
बसुधा खोदि करहि दुइ चूल्हे सारे माणस खावहि॥
ओई पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि।
सदा सदा फिरहि अभिमानी सकल कुटुंब डुबावहि॥
जित को लाया तितही लागा तैसे करम कमावै।
कहु कबीर जिसु सति गुरु भेटे पुनरपि जनमि न आवै ॥६०॥

गर्भ बास महि कुल नहि जाती। ब्रह्म बिंद ते सब उतपाती।
कहु रे पंडित बामन कब क होये। बामन कहि कहि जनम मति खोये॥
जौ तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया। तौ आन बाट काहे नहीं आया॥
तुम कत ब्राह्मण हम कत शूद। हम कत लोहू तुम कत दूध॥
कहु कबीर जो ब्रह्म बिचारै। सो ब्राह्मण कहियत है हमारे ॥६१॥

गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि महुंवा भाठी मन धारा।
सुषमन नारी सहज समानी पीवै पीवन हारा॥

अवधू मेरा मन मतवारा ।

उन्मद चढ़ा रस चाख्या त्रिभुवन भया उजियारा ॥
दुइ पुर जोरि रसाई भाठी पीउ महारस भारी ।
काम क्रोध दुइ किये जलेता छूटि गई संसारी ॥
प्रगट प्रगास ज्ञान गम्मित सति गुरु ते सुधि पाई ।
दास कबीर तासु मदमाता उचकि न कबहूँ जाई ॥६२॥
गुरु चरण लागि हम बिनवत पूछत कह जीव पाया ॥
कौन काज जग उपजै बिनसै कहहु मोहि समझाया ॥
देव करहु दया मोहि मारग लावहु जित भवबंधन टूटै ।
जनम मरण दुख फेड़ कर्म सुख जीव जनम ते छूटै ॥
माया फाँस बंधन हीं फारै अरु मन सुन्नि न लूके ।
आपा पद निर्वाण न चीन्ह्या इन विधि अभिउ न चूके ॥
कहीं न उपजै उपजी जाणे भाव प्रभाव बिहूण ।
उदय अस्त की मन बुधि नासी तो सदा सहजि लवलीण ॥
ज्यों प्रतिबिंब बिंब कौ मिलिहैं उदक कुंभ बिगराना ।
कहु कबीर ऐसा गुण भ्रम भागा तौ मन सुन्न समाना ॥६३॥

गुरु सेवा ते भगति कमाई । तब इह मानस देही पाई ।
इस देही को सिमरहि देव । सो देही भुज हरि की सेव ॥
भजहु गुबिंद भूल मत जाहु । मानस जनम की रही चाहु ॥
जब लग जरा रोग नहीं आया । जब लग काल ग्रसी नहिं काया ।
जब लग बिकल भई नहीं वानी । भजि लेहि रे मन सारंगपानी ॥
अब न भजसि भजसि कब भाई । आवैं अंत न भजिया जाई ॥
जो किछु करहि सोई अवि सारू । फिर पछताहु न पावहु पारू ।
सो सेवक जो लाया सेव । तिनही पाये निरंजन देव ॥
गुरु मिलि ताके खुले कपाट । बहुरि न आवै योनी बाट ॥
इही तेरा अवसर इह तेरी वार । घट भीतर तू देख बिचारि ॥
कहत कबीर जीति कै हारि । बहुविधि कह्यो पुकारि पुकारि ॥६४॥

गृह तजि बन खंड जाइयै चुनि खाइयै कंदा ।
अजहु बिकार न छोडई पापी मन मंदा ॥
क्यों छूटों कैसे तरौं भवनिधि जल भारी ।
राखु राखु मेरे बीठुला, जन सरनि तुमारी ॥
विषम बिषय बासना तजिय न जाई ।
अनिक यत्न करि राखियै फिरि लपटाई ॥

जरा जीवन जोबन गया कछु कीया न नीका।
इह जीया निर्मोल को कौड़ी लगि मीका ॥
कहु कबीर मेरे माधवा तू सर्वव्यापी।
तुम सम सरि नाहीं दयाल मो सम सरि पापी ॥६५॥
गृह शोभा जाकै रे नाहि। आवत पहिया खूदे जाहि ॥
वाकै अंतरि नहीं संतोष। बिन सोहागिन लागै कोष ॥
धन सोहागनि महा पबीत। तपे तपीसर डालै चीत ॥
सोहागनि किरपन की पूती। सेवक तजि जग तस्यो सूती ॥
साधू कै ठाढ़ी दरबारि। सरनि तेरी मोके निस्तारि।
सोहागनि है अति सुंदरी। पगनेवर छनक छन हरी ॥
जौ लग प्रान तऊ लग संगे। नाहिन चली बेगि उठि नंगे।
सोहागनि भवन त्रै लीया। दस अष्टपुराणतीरथ रसकीया ॥
ब्रह्मा विष्णु महेसर बेधे। बड़ भूपति राजै हैं छेधे ॥
सोहागनि उर पारि न पारि। पाँच नारद कै संग बिधबारि ॥
पांच नारद के मिठवे फूटे। कहु कबीर गुरु किरपा छूटे ॥६६॥
चंद सूरज दुइ जोति सरूप। जीता अंतरि ब्रह्म अनूप ॥
करु रे ज्ञानी ब्रह्म बिचारु। जोति अंतरि धरि आप सारु ॥
हीरा देखि हीरै करो आदेस। कहै कबीर निरंजन अलेखु ॥६७॥
चरन कमल जाके रिदै बसै सो जन क्यौं डोलै देव।
मानौं सब सुख नवनिधि ताके सहजि जस बोलै देव ॥
तब इह मति जौ सब महि पेखै कुटिल गाँठि जब खोलै देव ॥
बारंबार माया ते अटकै लै नरु जो मन तोलै देव ॥
जहँ उह जाइ तहीं सुख पावै माया तासु न झोलै देव ॥
कहि कबीर मेरा मन मान्या राम प्रीति को ओलै देव ॥६८॥
हरि बिन बैल बिराने ह्वैहै।
चार पाव दुइ सिंग गुंग मुख तब कैसे गुन गैहै ॥
ऊठत बैठत ठैगा परिहैं तब कत मूड लुकैहै ॥
फाटे नाक न टूटै का धन कोदौ कौ भूस खैहैं।
सारो दिन डोलत बन महिया अजहु न पेट अघैहै ॥
जन भगतन को कही न मानी कीयो अपनो पैहैं।
दुख सुख करत महा भ्रम बूड़ौ अनिक योनि भरमैहै ॥
रतन जनम खोयो प्रभु बिसरयो इह अवसर कत पैहै ॥

भ्रमत फिरत तेलक के कपि ज्यों गति बिनु रैन बिहैहै ॥
कहत कबीर राम नाम बिन मुंड धुनै पछितैहै ॥६९॥
चारि दिन अपनी नौबति चले बजाइ ।
इतनकु खटिया गठिया मठिया संगि न कछु लै जाइ ॥
देहरी बैठी मेहरी रोवै हारे लौं संग माइ ॥
मरहट लगि सब लोग कटुंब मिलि हंस इकेला जाइ ॥
वै सुत वै बित वैं पुर पाटन बहुरि न देखै आई ॥
कहत कबीर राम को न सिमरहु जन्म अकारथ जाई ॥७०॥
चोवा चंदन मर्दन अंगा । सो तन जलै काठ के संगा ॥
इसु तन धन की कौन बड़ाई । धरनि परै उरबारि न जाई ॥
रात जि सोवहि दिन करहि काम । इक खिन लेहि न हरि को नाम ॥
हाथि त डोर मुख खायो तंबोर । मरती बार कसि बांध्यो चोर ॥
गुरु मति रहि रसि हरि गुन गावै । रामै राम रमत सुख पावै ॥
किरपा करि के नाम दृढ़ाई । हरि हरि बास सुगंध बसाई ॥
कहत कबीर चेते रे अंधा । सत्य राम झूठ सब धंधा ॥७१॥
जग जीवत ऐसा सूपनौं, जैसा जीव सुपन समान ।
साचु करि हम गाँठ दीनी छोड़ि परम निधान ॥
बाबा माया मोह हितु कीन जिन ज्ञान रतन हरि लीन ।
नयन देखि पतंग उरझै पसु न देखै आगि ॥
काल फास न मुगध चेतै कनिक कामिनि लागि ॥
करि बिचारि बिकार परिहरि तरन तारेन सोइ ॥
कहि कबीर जग जीवन ऐसा दुतिया नहीं कोइ ॥७२॥
जन्म मरन का भ्रम गया गोविंद लिव लागी ।
जीवन सुन्नि समानिया गुरु साखी जागी ॥
कासी ते धुनी उपजै धुनि कांसी जाई ।
कासी फूटी पंडिता धुनि कहाँ समाई ॥
त्रिकुटी संधि मैं पेखिया घटहू घट जागी ।
ऐसी बुद्धि समाचरी घट माहि तियागी ॥
आप आप जे जागिया तेज तेज समाना ।
कहु कबीर अब जानिया गोविंद मन माना ॥७३॥
जब जरियै तब होइ भसम तन रहै किरम दल खाई ॥
काची गागरि नीर परतु है या तन की इहै बड़ाई ।

काहे भया फिरतौ फूला फूला ।
जब दस मास उरध मुख रहता सो दिन कैसे भूला ।
ज्यों मधु मक्खी त्यों सठोरि रसु जोरि जोरि धन कीया ॥
मरती बार लेहु लेहु करिये भूत रहन क्यों दीया ।
देहुरी लौं वरी नारि संग भई आगै सजन सुहेला ।
मरघट लौं सब लगे कुटुंब भयो आगै हंस अकेला ॥
कहत कबीर सुनहु रे प्रानी परे काल ग्रस कूआ ।
झूठी माया आप बँधाया ज्यों नलनी भ्रमि सूआ ॥७४॥
जब लग तेल दीवै मुख बाती तब सूझै सब कोई ।
तेल जलै बाती ठहरानी सूना मंदर होई ॥
रे बौरे तुहि घरी न राखै कोई । तूँ राम नाम जपि सोई ।
काकी माता पिता कहु काको कौन पुरुष की जोई ॥
घट फूटे कोऊ बात न पूछै काढ़हु काढ़हु होई ।
देहुरी बैठ माता रोवै खटिया ले गये भाई ॥
लट छिटकाये तिरिया रोवै हंस ईकेला जाई ।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु भौसागर के ताईं ।
इस बंदे सिर जुलम होत है जम नहीं घटै गुसाईं ॥७५॥
जब लग मेरी मेरी करै । तब लग काज एक नहि सरै ॥
जब मेरी मेरी मिट जाई । तब प्रभु काज सवारहि आई ॥
ऐसा ज्ञान बिचारु मना । हरि किन सिमरहु दुखभंजना ॥
जब लगि सिंघ रहे बन माहि । तब लग बन फूलई नाहिं ॥
जब ही स्यार सिंघ को खाई । फूल रहीं सगली बनराई ॥
जीतौ बूडै हारो लरै । गुरु परसादि पार उतरै ॥
दास कबीर कहै समझाई । केवल राम रहहु लिव लाई ॥७६॥
जब हम एकौ एक करि जानिया । तब लोग कहैं दुख मानिया ॥
हम अपतह अपनी पति खोई । हमरै खोज परहु मति कोई ॥
हम मंदे मंदे मन माहि । साँझपाति काहु स्यों नाहीं ॥
पति मा अपति ताकी नहीं लाज । तब जानहुगे जब उघरैगा पाज ॥
कहु कबीर पति हरि परवानु । सबर त्यागी भजु केवल रामु ॥७७॥
जल महि मीन माया के बेधे । दीपक पतंग माया के छेदे ॥
काम मया कुंजर को ब्यापै । भुवंगम भृंग माया माहि खापै ॥
माया ऐसी मोहनी भाई । जेते जीय तेते डहकाई ॥
पंखी मृग माया महि राते । साकर माँखी अधिक संतापे ॥

तुरे उप्ट माया महि मेला। सिध चौरासी माया महि खेला॥
छिय जती माया के बंदा। भवै नाथु सूरज अरु चंदा॥
तपे रखीसर माया महि सूता। माया महि कास अरु पंच दूता॥
स्वान स्याल माया महि राता। बंतर चीते अरु सिंघाता॥
माजर गाडार अरु लूबरा। बिरख सूख माया महि परा॥
माया अंतर भीने देव। सागर इंद्रा अरु धरतेव॥
कहि कबीर जिसु उदर तिसु माया। तब छूटै जब साधु पाया॥

जल है सूतक थल है सूतक सूतक आपति होई॥
जनमे सूतक मुए फुनि सूतक सूतक परज बिगोई॥
कहु रे पंडित कौन पवीता। ऐसा ज्ञान जपहु मेरे मीता॥
नैनहु सूतक बैनहु सूतक सूतक स्रवनी होई॥
ऊठत बैठत सूतक लागै सूतक परै रसोई॥
फाँसन की बिधि सब कोऊ जानै छूटन की इकु कोई॥
कहि कबीर राम रिदै बिचारे सूतक तिनैं न होई॥७९॥

जहँ किछु ग्रहा तहाँ किछु नाहीं पंच तत्व तह नाहीं।
इड़ा पिंगला सुषमन बदे ते अवगुन कत जाहीं॥
तागा तूटा गगन बिनसि गया तेरा बोलत कहा समाई।
एह संसा मोकों अनदिन व्यापै मोको कौन कहै समझाई॥
जह ब्रह्मांड पिंड तह नाहीं रचनहार तह नाहीं।
जोड़नहारी सदा अतीता इह कहिये किसु माहीं॥
जोड़ी जुड़ै न तोड़ी तूटै जब लग होइ बिनासी।
काको ठाकुर काको सेवक को काहू के जासी॥
कहु कबीर लिव लागि रही है जहाँ बसै दिन राती।
वाका मर्म वोही पर जानै ओहु तौ सदा अबिनासी॥८०॥

जाके निगम दूध के ठाटा। समुद बिलोवन की माटा।
ताकी होहु बिलोवनहारी। क्यों मिटैगी छाछि तुम्हारी।
चेरी तू राम न करसि भरतारा। जग जीवन प्रान अधारा॥
तेरे गलहि तौक पग बेरी। तू घर घर रमिए फेरी॥
तू अजहु न चेतसि चेरी। तू जेम बपुरी है हेरी॥
प्रभु करन करावन हारी। क्या चेरी हाथ बिचारी॥
सोई सोई जागी। जितु लाई तितु लागी।
चेरी तै सुमति कहाँ ते पाई। जाके भ्रम की लीक मिटाई॥
सुरसु कबीरै जान्या। मेरो गुरुप्रसाद मन मान्या॥८१॥

जाकै हरि सा ठाकुर भाई। मु कति अनंत पुकारन जाई।
अब कहु राम भरोसा तोरा। तब काहू को कौन निहोरा।
तीनि लोक जाके इहि भार। सो काहे न करै प्रतिपार।
कहु कबीर इक बुद्धि बिचारी। क्या बस जो बिष दे महतारी ॥८२॥
जिन गढ़ कोटि किए कंचन के छोड़ गया सो रावन।
काहे कीजत हैं मन भावन।

जब जम आइ केस ते पकरै तहँ हरि को नाम छुड़ावन ॥
काल अकाल खसम का कीना इहु परपंच बधावन।
कहि कबीर ते अंते मुक्ते जिन हिरदै राम रसायन ॥८३॥

जिह मुख बेद गायत्री निकसी सो क्यों ब्राह्मन बिसरु करैं।
जाके पाय जगत सब लागैं सो क्यों पंडित हरि न कहै ॥
काहें मेरे ब्राह्मन हरि न कहहि। रामु न बोलहि पांडे दोजक भरहि ॥
आपन ऊँच नीच घरि भोजन हठे करम करि उदर भरहि ॥
चौदस अमावस रचि रचि मांगहि कर दीपक लै कूप परहि ॥
तूं ब्राह्मन मैं कासी का जुलाहा मोहि तोहि बराबरि कैसे कै बनहि ॥
हमरे राम नाम कहि उबरे बेद भरोसे पांडे डूब मरहि ॥८४॥
जिह कुल पूत न ज्ञान बिचारी। बिधवा कस न भई महतारी ॥
जिह नर राम भगति नहीं साधी। जनमत कस न मुयो अपराधी ॥
मुच मुच गर्भ गये कौन बचिया। बुड़भुज रूप जीवे जग मझिया ॥
कहु कबीर जैसे सुंदर स्वरूप। नाम बिना जैसे कुबज कुरूप ॥८५॥
जिह मरनै कब जगत तरास्या। सो मरना गुरू सबद प्रगास्या ॥
अब कैसे मरो मरम सब मान्या। मर मर जाते जिन राम न जान्या ॥
मरनो मरन कहैं सब कोई। सहजे मरै अमर होइ सोई ॥
कहु कबीर मन भया अनंदा। गया भरम रहा परमानंदा ॥
जिह सिमरनि होइ मुकित दुवारि। जाहि बैकुंठ नहीं संसारि ॥
निर्भव के घर बजावहि तूर। अनहद बजहि सदा भरपूर ॥
ऐसा सिमरन कर मन माँहि। बिनु सिमरन मुक्ति कत नाहिं ॥
जिह सिमरन नाहीं ननकारु। मुक्ति करै उतरै बहुभारु ॥
नमस्कार करि हिरदय माँहि। फिर फिर तेरा आवन नाहिं ॥
जिह सिमरन कहहि तू केल। दीपक बाँधि धरयो तिन तेल ॥
सो दीपक अमर कु ससारि। काम क्रोध बिष काढ़ि ले मार ॥
जिह सिमरन तेरी गति होइ। सो सिमरन रखु कंठ पिरोइ ॥
सो सिमरन करि नहीं राखि उतारि। गुरुपरसादी उतरहि पार ॥

जिह सिमरन नहीं तुहि कान । मंदर सोवहि पटंबरि तानि ॥
सेज सुखाली बिगसै जीउ । सो सिमरन तू अनहद पीउ ॥
जिह सिमरन तेरी जाइ बलाइ । जिह सिमरन तुझ पोहै न माई ।
सिमरि सिमरि हरि हरि मन गाइयै । इह सिमरन सति गुरु ते पाइयै ॥
सदा सदा सिमरि दिन राति । ऊठत बैठत सासि गिरासि ॥
जागु सोई सिमरन रस भोग । हरि सिमरन पाइयै संजोग ॥
जिहि सिमरन नाहीं तुझ भाऊ । सो सिमरन राम नाम अधारू ॥
कहि कबीर जाका नहीं अंतु । तिसके आगे तंतु न मंतु ॥८७॥
जिह मुख पाँचो अमृत खाये । तिहि मुख देखत लूकट लाये ॥
इक दुख राम राइ काटहु मेरा । अग्नि दहै अरु गरभ बसेरा ॥
काया बिमति बहु बिधि माती । को जारे को गड़ले माटी ॥
कहु कबीर हरि चरण दिखावहु । पाछैं ते जम को पठावहु ॥८८॥
जिह सिर रचि बाँधत पाग । सो सिर चुंच सबारहि काग ॥
इसु तन धन को दया गर्बीया । राम नाम काहे न दृढ़ीया ॥
कहत कबीर सुनहु मन मेरे । इही हवाल होहिंगे तेरे ॥८९॥

जीवत पितर न माने कोऊ मुएँ सराद्ध कराहीं ।
पीतर भी बपुरे कहु क्यों पावहि कौआ कूकर खाहीं ।

मोंको कुसल बतावहु कोई ।
कुसल कुसल करते जग बिनसे कुसल भी कैसे होई ।
माटी के करि देवी देवा तिसु आगे जीउ देही ।
ऐसे पितर तुम्हरे कहियहि आपन कह्या न लेही ॥
सरजीव काटहि निरजीव पूजहि अंत काल कौ भारी ।
राम नाम की गति नहीं जानी भय डूबे संसारी ॥
देवी देवा पूजहि डोलहि पारब्रह्म नहीं जाना ।
कहत कबीर अकुल नहीं चेत्या विषया त्यौं लपटाना ।
जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुन्नि समाया ।
अंजन माहिं निरंजन रहियै बहुरि न भव जल पाया ।

मेरे राम ऐसा खीर बिलोइये ।
गुरु मति मनुवा अस्थिर राखहु इन विधि अमृत पिओइयै ॥
गुरुकै बाणी बजर कलछेदी प्रगटया पद परगासा ॥
सक्ति अधेर जेवणी भ्रम चूका निहचल सिव घर बासा ॥

तिन बिन बाणै धनुष चढ़ाइयै इहु जग बेध्या भाई ।
दस दिसि बूड़ी पावन झुलावै डोरि रही लिव लाई ॥
उनमत मनुवा सुन्नि समाना दुबिधा दुर्मति भागी ।
कहु कबीर अनुभौ इकु देख्या राम नाम लिव लागी ॥९१॥
जो जन भाव भगति कछु जाने ताको अचरज काहो ।
बिनु जल जल महि पैसि न निकसै तो ढरि मिल्या जुलाहो ॥
हरि के लोग मैं तो मति का भोरा ।
जो तन कासी तजहि कबीरा रामहि कहा निहोरा ॥
कहतु कबीर सुनहु रे लोई भरम न भूलहु कोई ।
क्या कासी क्या ऊसर मगहर राम रिदय जौ होई ॥९२॥
जेते जतन करत ते डूबे भव सागर नहीं तारयौ रे ॥
कर्म धर्म करते बहु संजम अहं बुद्धि मन जारयौ रे ।
साँस ग्रास को दाता ठाकुर सो क्यों मनहुँ बिसारयौ रे ॥
हीरा लाल अमोल जनम है कौड़ी बदलै हारयौ रे ।
तृष्णा तृषा भूख भ्रमि लागी हिरदै नाहि बिचारयौ रे ॥
उनमत मान हिर्यो मन माही गुरु का सबद न धारयौ रे ।
स्वाद लुभंत इंद्री रस प्रेरयो मद रस लेत बिकारयौ रे ॥
कर्म भाग संतन संगा ते काष्ठ लोह उद्धारयौ रे ।
धावत जोनि जनम भ्रमि थाके अब दुख करि हम हारयौ रे ॥
कहि कबीर गुरु मिलत महा रस प्रेम भगति निस्तारयौ रे ॥९३॥
जेइ बाझु न जीया जाई । जौं मिलै तौ घाल अघाई ।
सद जीवन भलो कहाही । मुए बिन जीवन नाही ।
अब क्या कथियै ज्ञान बिचारा । निज निर्खत गत ब्यौहारा ॥
घसि कुंकम चंदन गारया । बिन नयनहु जगत निहारया ।
पूत पिता इक जाया । बिन ठाहर नगर बनाया ॥
जाचक जन दाता पाया । सो दिया न जाई खाया ।
छोड़या जाइ न मूका । औरन पहि जाना चूका ॥
जो जीवन मरना जाने । सो पंच सैल सुख मानै ।
कबीरै सो धन पाया । हरि भेट आप मिटाया ॥९४॥
जैसे मंदर महि बल हरना ठाहरै । नाम बिना कैसे पार उतारै ॥
कुंभ बिना जल ना टिकावै । साधू बिन ऐसे अवगत जावै ॥
जारौ तिसै जु राम न चेतै । तन तन रमत रहै महि खेतै ॥
जैसे हलहर बिना जिमी नहि बोइये । सूत बिना कैसे मणी परोइयै ॥

घुंडी बिन क्या गंठि चढ़ाइये। साधू बिन तैसै अवगत जाइयै ॥
जैसे मात पिता बिन बाल न होई। बिंब बिना कैसे कपरे धोई ॥
घोर बिना कैसे असवार। साधू बिन नाहीं दरबार ॥
जैसे बाजे बिन नहीं लीजै फेरी। खसम दुहागनि तजिहौ हेरी ॥
कहै कबीर एकै करि जाना। गुरमुखि होइ बहुरि नहीं मरना ॥९५॥

जोइ खसम है जाया।

पूत बाप खेलाया। बिन रसना खीर पिलाया ॥
देखहु लोगा कलि को भाऊ। सुति मुकलाई अपनी माऊ ॥
पगा बिन हुरिया मारता। बदनै बिन खिन खिन हासता ॥
निद्रा बिन नरु पै सोवै। बिन बासन खीर बिलोवै ॥
बिनु अस्थन गऊ लेवेरी। पंडे बिनु घाट घनेरी ॥
बिन सत गुरु बाट न पाई। कहु कबीर समझाई ॥९६॥
जो जन लेहि खसम का नाउ। तिनकै सद बलिहारै जाउ ॥
सो निर्मल हरि गुन गावैं। सो भाई मेरै मन भावै ॥
जिहि घर राम रह्या भरपूरि। तिनकी पग पंकज हम धूरि ॥
जाति जुलाहा मति का धीरु। सहजि सहजि गुन रमै कबारु ॥
जो जन परमिति परमनु जाना। बातन हीं बैकुंठ समाना ॥
ना जानौं बैकुंठ कहाहीं। जान न सब कह हित हाही ॥
कहन कहावत नहिं पतियैहै। तौ मन मानै जातेहु मैं जइहै ॥
जब लग मन बैकुंठ की आस। तब लगि होहिं नहीं चरन निवास ॥
कहु कबीर इह कहियै काहि। साध संगति बैकुंठै आहि ॥९८॥
जो पाथर को कहिते देव। ताकी बिरथा होवै सेव ॥
जो पाथर की पाँई पाई। तिस की घाल अजाई जाई ॥
ठाकुर हमरा सद बोलंता। सबै जिया कौ प्रभ दान देता ॥
अंतर देव न जानै अंधु। भ्रम का मोह्या पावै फंधु ॥
न पाथर बोलै ना किछु देइ। फोकट कर्म निहफल है सेइ ॥
जे मिरतक के चंदन चढ़ावै। उसते कहहु कौन फल पावै ॥
जो मिरतक को बिष्टा माँहि सुलाई। तौ मिरतक का क्या घटि जाई ॥
कहत कबीर हौं करहुँ पुकार। समझ देखु साकत गावार ॥
दूजै भाइ बहुत घर घाले। राम भगत हैं सदा सुखाले ॥९९॥

जो मैं रूप किये बहुतेरे अब फुनि रूप न होई।
ताँगा तंत साज सब थाका राम नाम बसि होई ॥
अब मोहि नाचनो न आवै। मेरा मन मंदरिया न बजावै ॥

काम क्रोध काया लै जारी तृष्णा गागरि फुटी।
काम चोलना भया है पुराना गया भरम सब छूटी।।
सर्व भूत एक करि जान्या चूके बाद बिबादा।
कहि कबीर मैं पूरा पाया भये राम परसादा।।१००।।
जौ तुम मौंको दूरि करत हौ तौ तुम मुक्ति बतावहुगे।।
एक अनेक होइ रह्यो सकल महि अब कैसे भर्मावहुगे।।
राम मोकौ तारि कहाँ लै जैहै।
सोधौ मुक्ति कहा देउ कैसो करि प्रसाद मोहि पाइहै।
तारन तरन कबै लगि कहिये जब लगि तत्व न जान्या।।
अब तौ विमल भए घट ही महि कहि कबीर मन मान्या।।१०१।।
ज्यों कपि के कर मुष्टि चरन की लुब्धि न त्यागि दयो।
जो जो कर्म किये लालच स्यो ते फिर गरहि परयो।।
भगति बिनु बिरथे जनम गयो।
साध संगति भगवान भजन बिन कही न सच्च रह्यो।।
ज्यों उद्यान कुसुम परफुल्लित किनहि न घ्राउ लयो।
तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हयो।।
या धन जोबन अरु सुत दारा पेखन को जु दयो।
तिनही माहि अटकि जो उरझे इंद्री प्रेरि लयो।
औध अनल तन तिन को मंदर चहु दिसि ठाठ ठयो।
कहि कबीर भव सागर तरन को मैं सति गुरु ओट लयो।।१०२।।
ज्यौं जल छोड़ि बाहर भयो मीना। पूरब जनम हौं तप का हीना।।
अब कहु राम कवन गति मोरी। तजीले बनारस मति भई थोरी।।
सकल जनम सिवपुरी गवाया। मरती बार मगहर उठि आया।।
बहुत बरस तप कीया कासी। मरन भया मगहर को बासी।।
कासी मगहर सम बीचारी। ओछी भगति कैसे उतरसि पारी।।
कहु गुरु गजि सिव सबको जामै। मुवा कबीर रमत श्रीरामै।।१०३।।
ज्योति की जाति जाति की ज्योती। तितु लागे कँचुआ फल मोती।।
कौन सुघर जो निर्भौ कहियै। भव भजि जाइ अभय ह्वै रहियै।।
तट तीरथ नहिं मन पतियाइ। चार अचार रहे उरझाइ।।
पाप पुण्य दुइ एक समान। निज घर पारस तजहु गुन आन।।१०४।।
टेढी पाग टेढे चले लागे बीरे खान।
भाउ भगति स्यो काज न कछुए मेरो काम दीवान।।

राम बिसारयो है अभिमानी ।
कनक कामिनी महा सुंदरी पेखि पेखि सचु मानी ।
लालच झूठ बिकार महा मद इह बिधि औध बिहानी ।
कहि कबीर अंत की बेर आई लागो काल निदानी ॥१०५॥

डंडा मुद्रा खिंथा आधारी । भ्रम कै भाई सबै भेषधारी ॥
आसन पवन दूरि करि बवरे । छोड़ि कपट नित हरि भज बवरे ॥
जिह तू याचहि सो त्रिभुवन भोगी । कहि कबीर कैसो जग जोगी ॥१०६॥

तब रैनी मन पुनरपि करिहौ पाचो तत्व बराती ॥
राम राइ स्यों भाँवरि लैहौं आतम तिह रँगराती ॥
गाउ गाउ री दुलहिनी मंगलचारा ॥
मेरे गृह आये राजा राम भतारा ॥
नाभि कमल महि बेदी रचि ले ब्रह्म ज्ञान उच्चारा ॥
राम राइ स्यों दूल्हो पायो अस बड भाग हमारा ॥
सुर नर मुनि जन कौतक आये कोटि तैतीसो जाना ॥
कहि कबीर मोहि ब्याहि चले हैं पुरुष एक भगवाना ॥१०७॥

तरवर एक अनंत डार साखा पुहुप पत्र रस भरिया ॥
इह अमृत की बाड़ी है रे तिन हरि पूरै करिया ॥
जानी जानी रे राजा राम की कहानी ।
अंतर ज्योति राम परगासा गुरु मुख बिरलै जानी ॥
भवर एक पुहुप रस बीधा बार हले उर धरिया ।
सोरह मध्ये पवन झकोरयो आकासे फर फरिया ॥
सहज सुन्न इक बिरवा उपज्या धरती जलहर सोखया ॥
कहि कबीर हौ ताका सेवक जिनका इहु बिरवा देखया ॥१०८॥

टूटे तागे निखुटी पानि । द्वार ऊपर झिलिकावहि कान ॥
कूच बिचारे फूए फाल । या मुँडिया सिर चढ़िबो काल ॥
इहु मुंडिया सगलो द्रब खोई । आवत जात नाक सर होई ॥
तुरी नारि की छोड़ि बाता । राम नाम वाका मन राता ॥
लरिकी लरिकन खैबो नाहि । मुँडिया अनुदिन धाये जाहि ॥
इक दुइ मंदर इक दुइ बाट । हमको साथरु उनको खाट ॥
मूँड पलोसि कमर बधि पोथी । हमको चाबन उनकौ रोटी ॥
मुंडिया मुंडिया हुए एक । ए मुंडिया बूडत की टेक ॥
सुनि अन्धली लोई बेपीर । इस मुँडियन भजि सरन कबीर ॥१०९॥

तू मेरो मेरु परबत सुवामी श्रोट गही मैं तेरी ॥
ना तुम डोलहु नां हम गिरते रखि लीनीं हरि मेरी ॥
अब तब जब कब तूही तूहीं । हम तुम परसाद सुखी सदाही ॥
तेरे भरोसे मगहर बसियो । मेरे तन की तपति बुझाई ॥
पहिले दर्सन मगहर पायो । फुनि कासी बसे आई ॥
जैसा मगहर तैसी कासी हम एकै करि जानी ॥
हम निर्धन ज्यों इह धन पाया मरते फूटि गुमानी ।
करे गुमान चुभहि तिसु सूला कोऊ काढ़न कौं नाहीं ॥
अर्ज सुचोभ को बिलल बिलाते नरके घोर पचाहीं ॥
कौन नरक क्या स्वर्ग बिचारा संतन दोऊ रादे ॥
हम काहू की काणि न कढ़ते अपने गुरु परसादे ॥
अब तौ जाइ चढ़े सिंहासन मिलिहैं सारंगपानी ॥
राम कबीरा एक भये हैं कोई न सकै पछानी ॥११०॥

थरथर कंपै बाला जीउ । ना जानौ क्या करसी पीउ ॥
रैनि गई मति दिन भी जाइ । भवंर गये बग बैठे आइ ॥
काचै करवै रहै न पानी । हंस चला काया कुम्हिलानी ॥
क्वारी कन्या जैसे करत सिंगारा । क्यों रलिया मानै बोझ भतारा ॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी । कहिं कबीर इह कथा सिरानी ॥१११॥

थाके नयन स्रवण सुनि थाके थाकी सुंदर काया ।
जरा हाक दी सब मति थाकी एक न थाकिस माया ॥
बावरे तै ज्ञान विचार न पाया । बिरथा जनम गँवाया ॥
तब लगि प्रानी तिसे सरेवहु जब लगि मही साँसा ॥
जे घट जाइत भाव न जासी हरि के चरन निवासा ॥
जिसकौं सबद बसावै अंबर चूकहि तिसहि पियासा ॥
हुक्मैं बूझैं चौपड़ी खेलै मन जिन ढाले पासा ॥
जो मन जनि भजहि अवगति कौं तिनका कछू न नासा ॥
कहु कबीर ते जन कबहु न हारहि ढालि जु जानहि पासा ॥११२॥

दरमादे ठाढ़े दरबारि ।
तुझ बिन सुरति करै को मेरी दर्सन दीजै खोलि किवार ॥
तुम धन धनो उदार तियारी स्रवनन सुनियत सुजस तुमार ।
माँगौं काहि रंक सब देखौं तुम ही ते मेरो निसतार ॥
जयदेव नामा बिप्प सुदामा तिनकौं कृपा भई हैं अपार ।
कहि कबीर तुम समरथ दाते चारि पदारथ देत न बार ॥११३॥

दिन ते पहर पहर ते घरियाँ आयु घटै तनु छीजै।
कौन अहेरी फिरहि बधिक ज्यों कहहु कौन बिधि कीजै॥
सो दिन आवन लागा।
माता पिता भाई सुत बनिता कहहु कोऊ है काका॥
जब लगु जोति काया महि बरतै आपा पसू न बूझै॥
लालच करै जीवन पद कारन लोचन कछू न सूझै॥
कहत कबीर सुनहु रे प्रानी छोड़हु मन के भरमा।
केवल नाम जपहु रे प्रानी परहु एक की सरना॥११४॥
दीन बिसारयो रे दीवाने दीन बिसारयो।
पेट भरयो पसुआ ज्यों सोयो मनुष जनम है हारयो॥
साध संगति कबहूँ नहिं कीनी रचियो धंधै झूठ।
स्वान सूकर बायस सम जीवै भटकत चाल्यो ऊठि॥
आपस कौ दीरघ करि जानै औरन कौ लघु मान।
मनसा बाचा करमना मैं देखे दोजक जान॥
कामी क्रोधी चातुरी बाजीगर बेकाम।
निंदा करते जनम सिरानो कबहु न सिमरयो राम॥
कहि कबीर चेतै नहिं मूरख मुगध गवार।
राम नाम जानियो नहीं, कैसे उतरसि पार॥११५॥
दुइ दुइ लोचन पेखा। हौं हरि बिन और न देखा॥
नैन रहे रंग लाई। अब बेगल कहन न जाई॥
हमारा भर्म गया भय भागा। जब राँम नाँम चितु लागा॥
बाजीगर डंक बजाई। सब खलक तमासे आई॥
बाजीगर स्वाँग सकेला। अपने रंग रवै अकेला।
कथनी कहि धर्म न जाई। सब कथि कथि रही लुकाई॥
जाकौ गुरु मुखि आप बुझाई। ताके हिरदै रह्या समाई॥
गुरु किंचित किरपा कीनी। सब तन मन देह हरि लीनी॥
कहि कबीर रँगि राता। मिल्यो जग जीवनदाता॥११६॥
दुनिया हुसियार बेदार जागत मुसियत हौ रे भाई॥
निगम हुसियार पहरुआ देखत जम ले जाई॥
नींबु भयो आँबु आँबु भयो नींबा केला पाका झारि॥
नालिएर फल सेबरिया पाका मूरख मुगध गवार॥
हरि भयो खाँडु रे तुमहि बिखरियो हस्ती चुन्यो न जाई।
कहि कबीर कुल जाति पाँति तजि चींटी होइ चुनि खाई॥११७॥

देखो भाई ज्ञान की आई आँधी ।
सबै उड़ानी भ्रम की टाटी रहै न माया बाँधी ।।
दुचिते की दुई थूनि गिरानीं मोह बलेड़ा टूटा ।
तिष्णा छानि परी घर ऊपर दुमिति भांड़ा फूटा ।।
आँधी पाछै जो जल बर्षे तिहि तेरा जन भींना ।
कहि कबीर मग भया प्रगासा उदय भानु जब चीना ।।११८।।
देइ मुहार लगाम पहिरावौं । सगल तजीनु गगन दौरावौ ।।
अपने विचारै असवारी कीजै । सहज के पावड़े पग धरि लीजै ।
चलु रे बैकुंठ तुझहि ले तारी । हित चित प्रेम के चाबुक मारी ।।
कहत कबीर भले असवारा । बेद कतेब ते रहहि निरारा ।।११९।।
देही गावा जीउ धर्म हत उबसहि पंच किरसाना ।
नैनू नकटू स्रवन रसपति इंद्री कह्या न माना ।।
बाबा अब न बसहु इह गाउ ।
घरी घरी का लेखा माँगै काइथु चेतू नाउ ।
धर्मराय जब लेखा माँग बाकी निकसी भारी ।।
पच कृसनवा भागि गए लै बाध्यौ जीउ दरबारी ।।
कहहि कबीर सुनहु रे संतहु खेतहि करौ निबेरा ।।
अबकी बार बखसि बंदे को बहुरि न भव जल फेरा ।।१२०।।
धन्न गुपाल धन्न गुरुदेव । धन्न अनादि भूखे कब लुटह केव ।।
धन ओहि संत जिन ऐसी जानी । तिनकौ मिलिबो सारंगपानी ।।
आदि पुरुष ते होई अनादि । जपियै नाम अन्न कै सादि ।।
जपियै नाम जपियै अन्न । अभै कै संग नीका बन्न ।।
अन्ने बाहर जो नर होवहि । तीनि भवन महि अपनो खोवहि ।।
छोड़हि अन्न करै पाखंड । ना सोहागनि ना बोहि रंग ।।
जग महि बकते दूधाधारी । गुप्ती खावहि बटिका सारी ।।
अन्नै बिना न होइ सुकाल । तजियै अन्न न मिलै गुपाल ।।
कहु कबीर हम ऐसे जान्या । धन्य अनादि ठाकुर मन मान्या ।।१२१।।
नगन फिरत जो पाइये जोग । बनका मिरग मुकति सब होग ।।
क्या नागे क्या बाँधे चाम । जब नहिं चीन्हसि आतम राम ।।
मूंड मुड़ाए जो सिद्धि पाई । मुक्ती भेड़ न गय्या काई ।।
बिंदु राख जो तरयै भाई । खुसरै क्यों न परम गति पाई ।।
कहु कबीर सुनहू नर भाई । राम नाम बिन किन गति पाई ।।१२२।।

नर मरै नर काम न आवै। पशु मरै दस काज सँवारे।
अपने कर्म की गति मैं क्या जानौ। मैं क्या जानौ बाबा रे।
हाड़ जले जैसे लकड़ी का तूला। केस जले जैसे घास का पूला।
कहत कबीर तबही नर जागै। जम का डंड मूँड़ महि लागै॥१२३॥
नाँगे आवत नाँगे जाना। कोई न रहिहै राजा राना॥
राम राजा नव निधि मेरै। संपै हेतु कलतु धन तेरै॥
आवत संग न जात सँगाती। कहा भयो दर बाँधे हाथी॥
लंका गढ़ सोने का भया। मूरख रावन क्या ले गया॥
कह कबीर कुछ गुन बीचारि। चलै जुआरी दुइ हथ झारि॥१२४॥
नाइक एक बनजारे पाँच। बरध पचीसक संग काच।
नव बहियाँ दस गोनी आहि। कसन बहत्तरि लागी ताहि॥
मोहि ऐसे बनज स्यो ही काजु। जिह घटै मूल नित बढ़ै ब्याजु।
सत्त सूत मिलि बनजु कीन। कर्म भावनी संग लीन॥
तीनि जगाती करत रारि। चलो बनजारा हाथ झारि॥
पूँजी हिरानी बनजु टूटि। दह दिस टाँडो गयो फूटि॥
कहि कबीर मन सरसी काज। सहज समानो त भर्म भाजि॥१२५॥
ना इहु मानुष ना इहु देव। ना इहु जती कहावै सेव॥
ना इहु जोगी ना अवधूता। ना इसु माइ न काहू पूता॥
या मंदर महि कौन बसाई। ता का अंत न कोऊ पाई॥
ना इहु गिरही ना ओदासी। ना इहु राज न भीख मँगासी॥
ना इहु पिंड न रकतू राती। ना इहु ब्रह्मन ना इहु खाती॥
ना इहु तपा कहावै सेख। ना इहु जीवै न मरता देख॥
इसु मरते कौ जे कोऊ रोवै। जो रोवै सोई पति खोवै॥
गुरु प्रसादि मैं डगरो पाया। जीवन मरन दोऊ मिटवाया॥
कहु कबीर इहु राम की अंसु। उस कागद पर मिटै न मंसु॥१२६॥
ना मैं जोग ध्यान चित लाया। बिन बैराग न छूटसि माया॥
कैसे जीवन होइ हमारा। जब न होइ राम नाम अधारा॥
कहु कबीर खोजौं असमान। राम समान न देखौ आन॥१२७॥
निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ। निंदौ निंदौ मोकौ लोग निंदौ॥
निंदा जन कौ खरी पियारी। निंदा बाप निंदा महतारी॥
निंदा होय त बैकुंठ जाइयै। नाम पदारथ मनहि बसाइयै॥
रिदै सुद्ध जौ निंदा होइ। हमरे कपरे निंदक धोइ॥

निंदा करै सु हमरा मीत। निंदक माहि हमारा चीत ॥
निंदक सो जो निंदा होरै। हमरा जीवन निंदक लोरै ॥
निंदा हमरी प्रेम पियार। निंदा हमरा करै उधार ॥
जन कबीर कौं निंदा सार। निंदक डूबा हम उतरे पार ॥१२८॥

नित उठि कारी गागरिया लै लीपत जनम गयो।
ताना बाना कछू न सूझै हरि हरि रस लपट्यो ॥
हमरे कुल कौने राम कह्यौ।
जब की माला लई निपूते तब ते सुख न भयो ॥
सुनहु जिठानी सुनहु दिरानी अचरज एक भयो ॥
सात सूत इन मुडिये खोये इहु मुडिया क्यों न मयो ॥
सर्व सखा का एक हरि स्वामी सो गुरु नाम दयो ॥
संत प्रह्लाद की पैज जिन राखी हरनाखसु नख बिदरचो।
घर के देव पितर की छांड़ो गुरु को सबद लयो ॥
कहत कबीर सकल पाप खंडन संतह ले उधरचो ॥१२९॥

निर्धन आदर कोई न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरेई ॥
जौ निर्धन सरधन कै जाई। आगै बैठा पीठ फिराई ॥
जौ सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई ॥
निर्धन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई ॥
कहि कबीर निर्धन हैं सोई। जाकै हिरदै नाम न होई ॥१३०॥

पंडित जन माते पढ़ि पुरान। जोगि माते जोग ध्यान।
संन्यासी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव ॥
सब मदमाते कोऊ न जाग। संग हीं चोर घर मुसन लाग ॥
जागै सुकदेव अरु अक्रूर। हणवंत जाग धरि लंकूर ॥
संकर जागे चरन सेव। कलि जागे नामा जैदेव ॥
जागत सोवत बहु प्रकार। गुरु मुखि जागे सोई सार ॥
इस देही के अधिक काम। कहि कबीर भजि राम नाम ॥१३१॥

पंडिया कौन कुमति तुम लागे।
बूड़हु गे परवार सकल स्यो राम न जपहु अभागे ॥
बेद पुरान पढ़े का किया गुन खर चंदन जस भारा ॥
राम नाम की गति नहीं जानी कैसे उतरसि पारा ॥
जीव बधहु सुधर्म करि थापहु अधर्म कहौ कत भाई ॥
आपस को मुनि वर करि थापहु काकहु कहौ कसाई ॥

मन के अंधे आपि न बूझहु का कहि बुझावहु भाई ॥
माया कारन विद्या बेचहु जनम अविथा जाई ॥
नारद बचन बियास कहत हैं सुक कौ पूछहु जाई ॥
कहि कबीर रामहि रमि छूटहु नाहि त बूड़े भाई ॥१३२॥[1]
पंथ निहारै कामनी लोचनि भरि लेइ उसासा ॥
उर न भीजै पग ना खिसै हरि दर्सन की आसा।
उड़हु न कागा कारे। बेग मिलीजै अपने राम प्यारे ॥
कहि कबीर जीवन पद कारन हरि की भक्ति करीजै ॥
एक अधार नाम नारायण रसना राम रवीजै ॥१३३॥
पंद्रह तिथि सात वार। कहि कबीर उर वार न पार ॥
साधक सिद्ध लखै जौ भेउ। आपे करता आपे देउ ॥
अम्मावस महि आय निवारौ। अन्तरयामी राम समारहु ॥
जीवत पावहु मोख दुवारा। अनभौ सबद तत्व निज सारा ॥
चरन कमल गोविंद रंग लागा।
संत प्रसाद भये मन निर्मल हरि कीर्त्तन महि अनदिन जागा ॥
परवा प्रीतम करहु बीचार। घट महि खेलै अघट अपार ॥
काल कल्पना कदे न खाइ। आदि पुरुष महि रहै समाइ ॥
दुतिया दुइ करि जानै अंग। माया ब्रह्म रमै सब संग ॥
ना ओहु बढ़ै न घटता जाइ। अकुल निरंजन एकै भाइ ॥
तृतीया तीने सम करि ल्यावै। आनंद मूल परम पद पावै ॥
साध संगति उपजै बिस्वास। बाहर भीतर सदा प्रगास ॥
चौथहि चंचल मन कौ गहहु। काम क्रोध संग कबहु न बहहु ॥
जल थल माहें आपही आप। आपै जपहु अपना जाप ॥
पाँचे पंच तत्त बिस्तार। कनक कामिनि जुग ब्योहार ॥
प्रेम सुधा रस पीवै कोई। जरा मरण दुख फेरि न होई ॥
छटि षट चक्र चहूँ दिसि धाइ। बिनु परचै नहीं थिरा रहाइ ॥
दुबिधा मेटि खिमा गहि रहहु। कर्म धर्म की सूल न सहहु ॥
सातै सति करि बाचा जाणि। आतम राम लेहु परवाणि ॥
छूटै संसा मिटि जाहि दुक्ख। सुन्य सरोवरि पावहु सुक्ख ॥

१. एक दूसरे स्थान पर यह पद इस प्रकार आरंभ होता है 'बड़ी आकबत कुमति तुम लोग' शेष सब ज्यों का त्यों है। मूल प्रति में जो ३६ नंबर का पद है वह भी कुछ थोड़े से हेर फेर के साथ ऐसा ही है।

अष्टमी अष्ट धातु की काया। तामहि अकुल महा निधि राया॥
गुरु गम ज्ञान बतावै भेद। उलटा रहै अभंग अछेद॥
नौमी नवै द्वार कौ साधि। बहती मनसा राखहु बाँधि॥
लोभ मोह सब बीसरि जाहु। जुग जुग जीवहु अमर फल खाहु॥
दसमी दह दिसि होइ अनंदा। छुटै भर्म मिलै गोविंदा॥
ज्योति स्वरूप तत्त अनूप। अमल न मल न छाँह नांहि धूप॥
एकादसी एक दिसि धावै। तौ जोनी संकट बहुरि न आवै॥
सीतल निर्मल भया सरीरा। दूरि बतावत पाया नीरा॥
बारसि बारहौं गवै सूर। अहि निसि बाजै अनहद तूर॥
देख्या तिहूँ लोक का पीउ। अचरज भया जीव ते सीउ॥
तेरसि तेरह अगम बखाणि। अर्द्ध उर्द्ध बिच सम पहिचाणि॥
नीच ऊँच नहीं मान प्रमान। व्यापक राम सकल सामान॥
चौदसि चौदह लोक मझारि। रोम रोम महि बसहि मुरारि॥
सत संतोष का धरहु धियान। कथनी कथियै ब्रह्म गियान॥
पून्यौं पूरा चंद्र अकास। पसरहि कला सहज परगास॥
आदि अंत मध्य होइ रह्या वीर। सुखसागर महि रमहि कबीर॥१३४॥
पहिला पूत पिछैरी माई। गुरु लागो चेले की पाई॥
एक अचंभौ सुनहु तुम भाई। देखत सिंह चरावत गाई॥
जल की मछुली तरवर ब्याई। देखत कुतरा लै गई बिलाई॥
तलेरे बैसा ऊपर सूल। तिसकै पेड़ लगै फल फूला॥
घोरै चरि भैंस चरावन जाई। बाहर बैल गोनि घर आई॥
कहत कबीर जो इस पद बूझै। राम रमत तिसु सब किछु सूझै॥

पहिली कुरूप कुजाति कुलक्खनी साहुरै पेइयै बुरी।
अब की सरूप सुजाति सुलक्खनी सहजे उदरधरी॥
भली सरी मुई मेरी पहली बरी।
जुग जुग जीवो मेरी अबकी धरी॥
कहु कबीर जब लहुरी आई बड़ी का सुहाग टर्‌यो।
लहुरी संग भई अब मेरे जेठी और धर्‌यो॥१३६॥

पाती तौरै मालिनी पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन कौ पाती तोरै सो पाहनु निरजीउ॥
भूली मालिनी है एउ। सति गुरू जागता है देउ॥
ब्रह्म पाती बिस्नु डारी फूल संकर देव॥
तीन देव प्रतख्य तोरहि करहि किसकी सेव॥

पाषान गढ़ि कै मूरति कीनी देकै छाती पाउ ॥
जे एइ मूरति साची है तो गड़णहारे खाउ ॥
भातु पहिति और लापसी करकरा का सारु ॥
भोगनु हारे भोगिया इसु मूरति के मुख छार ॥
मालिन भूलि जग भुलाना हम भुलाने नाहिं ॥
कह कबीर हम राम राखे कृपा करि हरि राइ ॥१३७॥

पानी मैला माटी गोरी । इस माटी की पुतरी जोरी ॥
मैं नाहीं कछु आहि न मोरा । तन धन सब रस गोबिंद तोरा ॥
इस माटी महि पवन समाया । झूठा परपंच जोरि चलाया ।
किनहू लाख पाँच की जोरी । अंत की बाट गगरिया फोरी ॥
कहि कबीर इक नींवौ सारी । खिन महि बिनसि जाइ अहंकारी ॥१३८॥

पाप पुन्य दोइ बैल बिसाहे पवन पूँजी परगास्यो ॥
तृष्णा गूणि भरी घट भीतर इन बिधि टाँड बिसाह्यो ॥
ऐसा नायक राम हमारा सकल संसार कियो बंजारा ॥
काम क्रोध दुइ भये जगाती मन तरंग बटवारा ॥
पंच तत्तु मिलि दान निबेरहि टाडा उतरयो पारा ॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु अब ऐसी बनि आई ॥
घाटी चढ़त बैल इक थाका चलो गोनि छिटकाई ॥१३९॥

पिंड मुए जिउ किहि घर जाता । सबद अतीत अनाहद राता ॥
जिन राम जान्या तिन्ही पछान्या । ज्यों गूँगे साकर मन मान्या ॥
ऐसा ज्ञान कथै बनवारी । मन रे पवन दृढ़ सुषमन नाड़ी ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना । सो पद रवहु जि बहुरि न रवना ॥
सो ध्याना धरहु जि बहुरि न धरना । ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥
उलटी गंगा जमुन मिलावौ । बिनु जल संगम मन महि न्हावौ ॥
लोचा सम सरिहहु ब्योहारा । तत्तु बिचारि क्या अवर बिचारा ।
अप तेज वायु पृथमी अकासा । ऐसी रहनि रहौ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरंजन ध्यावौं । तित घर जाहु जि बहुरि न आवौ ॥१४०॥

पेवक दै दिन चारि है साहुरड़ै जाणा ।
अंधा लोक न जाणई मूरखु एयाणा ॥
कहु डडिया बाँधे धन खड़ी । याहूँ घर आये मुकलाऊ आये ॥
ओह जि दिसै खूहड़ी कौ न लाजु बहारी ।
लाज घड़ी स्यो टूटि पड़ी उठि चलि पनिहारी ॥

साहिब होइ दयाला क्रपा करे अपना कारज सवारे ।
ता सोहागणि जानिए गुरु सबद बिचारै ॥
किरत की बाँधी सब फिरै देखहु बिचारी ।
एसनो क्या आखियै क्या करे बिचारी ॥
भई निरासी उठि चली चित बँधी न धीरा ।
हरि का चरणी लागि रहु भजु सरण कबीरा ॥१४१॥

प्रहलाद पठाये पठन साल । संगि सखा बहु लिए बाल ॥
मोकौ कहा पढावसि आल जाल । मेरी पटिया लिखि देहु श्रीगोपाल ॥
नहीं छाड़ौ रे बाबा राम नाम । मेरो और पढ़न स्यों नहीं काम ॥
संडै मरकै कह्यौ जाइ । प्रहलाद बुलाये बेगि धाइ ॥
तू राम कहन की छोडु बानि । तुझ तुरत छड़ाऊँ मेरो कह्यो मानि ।
मोकौ कहा सतावहु बार बार । प्रभु भज थल गिर किये पहार ॥
इक राम न छोड़ौ गुरुहि गारि । मोकौ घालि जारि भावै मारि डारि ॥
काढ़ि खड्ग कोप्यो रिसाइ । तुझ राखनहारो मोहि बताइ ॥
प्रभु थंभ ते निकसे कै बिस्तार । हरनाखस छेद्यो नख बिदार ॥
ओइ परम पुरुष देवाधिदेव । भगत हेत नरसिंघ भेव ॥
कहि कबीर को लखै न पार । प्रहलाद उबारे अनिक बार ॥१४२॥

फील रबाबी बलुद पखावज कौआ ताल बजावै ।
पहरि चोलना गदहा नाचै भैसा भगति करावै ॥
राजा राम क करिया बरपे काये । किनै बूझन हारै खाय ॥
बैठि सिह घर पान लगावहि घीस गल्योरे लावै ॥
घर घर मुसरी मंगल गावहि कछुआ संख बजावै ॥
बंस को पूत बिआहन चलिया सुइने मंडप छाये ॥
रूप कन्निया सुंदर बेधी ससै सिह गुन गाये ॥
कहत कबीर सुनहु रे पंडित कीटी परबत खाया ॥
कछुआ कहै अंगार भिलोरौ लूकी सबद सुनाया ॥१४३॥

फुरमान तेरा सिरै ऊपर फिरि न करत बिचार ॥
तुही दरिया तुही करिया तुझै ते निस्तार ॥
बंदे बंदगी इकतीयार । साहिब रोष धरौ कि पियार ।
नाम तेरा आधार मेरा जिउ फूल जइहै नारि ॥
कहि कबीर गुलाम घर का जीआइ भावै मारि ॥१४४॥

बंधचि बंधनु पाइया । मुकतै गुरि अनल बुझाइया ।
जब नख सिख इहु मनु चीना । तब अंतर मंजनु कीना ॥

पवन पति उनमनि रहनु खरा । नहीं मिसु न जनमु जरा ॥
उलटी ले सकति संहार । फैसीले गगन मझार ॥
वेधिय ले चक्र भुअंगा । भेटिय ले राइन संगा ॥
चूकिय ले मोह मइ आसा । ससि कीनो सूर गिरासा ॥
जब कुंभ कुभरि पुरि जीना । तब बाजे अनहद बीना ॥
बकतै बकि सबद सुनाया । सुनतै सुनि माल बसाया ॥
करि करता उतरसि पारं । कहै कबीरा सारं ॥१४५॥

बटुआ एक वहत्तरि आधारी एको जिसहि दुबारा ।
नवै खंड की प्रथमी माँगै सो जोगी जगसारा ।

ऐसो जोगी नव निधि पावै । तल का ब्रह्म ले गगन चरावै ।
खिंथा ज्ञान ध्यान करि सूई सबद ताग मथि घालै ।
पंच तत्व की करि मिरगाणी गुरु कै मारग चालै ॥
दया फाहुरी काया करि धूई दृष्टि की जलावै ।
तिसका भाव लए रिद अंतर चहु जुग ताड़ी लावै ॥
सभ जोगत्तण राम नाम है जिसका पिंड पराना ।
कहु कबीर जे किरपा धारै देइ सचा नीसाना ॥१४६॥
बनहि बसे क्यों पाइये जौ लौ मनहु न तजै बिकार ।
जिह घर बन समसरि किया ते पूरे संसार ॥
सार सुख पाइये रामा रंगि रवहु आतमै रामा ।
जटा भसम लै लेपन किया कहा गुफा महि बास ॥
मन जीते जग जीतिया ते बिषिया ते होइ उदास ।
अंजन देइ सब कोई टुक चाहन माहि बिडानु ॥
ज्ञान अंजन जिह पाइया ते लोइन परवानु ।
कहि कबीर अब जानिया गुरु ज्ञान दिया समुझाइ ।
अंतर मति हरि भेटिया अब मेरा मन कतहु न जाइ ॥१४७॥
बहु प्रपंच करि परधन ल्यावै । सुत दारा पहि आनि लुटावै ॥
मन मेरे भूले कपट न कीजै । अंत निबेरा तेरे जीय पहि लीजै ॥
छिन छिन तन छीजै जरा जनावै । तब तेरी ओक कोई पानियो न पावै ॥
कहत कबीर कोई नहीं तेरा । हिरदै राम किन जपहि सबेरा ॥१४८॥
बाती सूखी तेल निखूटा । मंदल न बाजै नट सूता ॥
बुझि गई अगनि न निकस्यो धूआ । रवि रह्या एक अवर नही दूआ ॥
तूटी तंतु न बजै रबाव । भूलि बिगारयो अपना काज ॥

कथनी बदनी कहन कहावन । समझ परी तो बिसरयौ गावन ।
कहत कबीर पंच जो चूरे । तिनते नाहिं परम पद दूरे ॥१४६॥
बाप दिलासा मेरो कीना । सेज सुखाली मुखि अमृत दीना ॥
तिसु बाप कौं मनहु बिसारी । आगे गया न बाजी हारी ॥
मुई मेरी माई हौ खरा सुखाला । पहिरौ नहीं दगली लगै न पाला ॥
बलि तिसु बापै जिन हौं जाया । पंचा ते तेरा मेरा संग चुकाया ॥
पंच मारि पावा तलि दीने । हरि सिमरन मेरा मन तन भीने ॥
पिता हमारो बड गोसाई । तिसु पिता पहिं हौं क्यों करि जाई ॥
सति गुरु मिले ता मारग दिखाया । जगत पिता मेरे मन भाया ॥
हौ पूत तेरा तू बाप मेरा । एकै ठाहरि दुहा बसेरा ॥
कह कबीर जनि एको बूझिया । गुरु प्रसाद मैं कछु सूझिया ॥१५०॥

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कियो ।
तीस बरस कछ देव न पूजा फिर पछुताना बिरध भयो ॥
मेरी मेरी करते जनम गयो । साइर सोखि भुंज बलयो ॥
सूके सरबर पालि बँधावै लूणे खेत हथवारि करै ।
आयो चोर तुरत ही ले गयो मेरी राखत मुगध फिरै ॥
चरन सीस कर कंपन लागे नैनों नीर असार बहैं ॥
जिहिवा बचन सुद्ध नहीं निकसै तब रे धरम की आस करै ।
हरि जी कृपा करि लिव लावै लाहा हरि हरि नाम लियो ।
गुरु परसादी हरि धन पायो अंते चल दिया नालि चल्यो ॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु अन धन कछु ऐलै न गयो ।
आई तलब गोपाल राइ की माया मंदर छोड़ चल्यौ ॥१५१॥

बावन अक्षर लोक त्रय सब कछु इनहीं माहि ।
जे अक्खर खिरि जाहिगे ओइ अक्खर इन महि नाहिं ॥
जहाँ बोल तह अक्खर आवा । जहँ अबोल तहँ मन न रहावा ॥
बोल अबोल मध्य है सोई । जस ओहु हैं तस लखै न कोई ॥
अलह लहौ तौ क्या कहौ कहौ तो को उपकार ।
बटक बीजि महि रबि रह्यो जाको तीनि लोक बिस्तार ॥
अलह लहंता भेद छै कछु कछु पाया भेद ।
उलटि भेद मन बेधियो पायो अभंग अछेद ॥
तुरक तरीकत जानियै हिंदू बेद पुरान ।
मन समझावन कारनै कछु यक पढ़ियै ज्ञान ॥

ओअंकार आदि मैं जाना । लिखि औरे मेटै ताहि न माना ॥
ओअंकार लखै जो कोई । सोई लखि मेटणा न होई ॥
कक्का किरणि कमल महि पावा । ससि बिगास संपट नहि आवा ॥
अरु जे तहा कुसुम रस पावा । अकह कहा कहि का समझावा ॥
खक्खा इहै खोड़ि मन आवा । खोड़ें छाड़ि न दह दिसि धावा ॥
खसमहि जाणि खिसा करि रहैं । तो होइ निरखओ अखै पद लहै ॥
गग्गा गुरु के बचन पछाना । दूजी बात न धरई काना ॥
रहै बिहंगम कतहि न जाई । अगह गहै गहि गगन रहाई ॥
घघ्घा घट घट निमसै सोई । घट फूटे घट कबहि न होई ॥
ता घट माहि घाट जौ पावा । सो घट छाँड़ि अवघट कत धावा ॥

ङङा निग्रह सनेह करि निरवारो संदेह ।
नाही देखि न भाजिये परम सियानप एह ॥

चच्चा रचित चित्र हैं भारी । तजि चित्रै चेतहु चितकारी ॥
चित्र बिचित्र इहै अवझेरा । तजि चित्रै चितु राखि चितेरा ॥
छछ्छा इहैं छत्रपति पासा । छकि किन रहहु छाड़ि किन आसा ॥
रे मन मैं तो छिन छिन समझावा । ताहि छाड़ि कत आप बँधावा ॥
जज्जा जौ तन जीवत जरावे । जीवन जारि जुगति सो पावै ॥
अस जरि परजरि जरि जब रहै । तब जाइ ज्योति उजारी लहै ॥
झझ्झा उरझि सुरझि नहि जाना । रह्यो झझकि नाही परवाना ॥
कत झकि झकि औरन समझावा । झगर किये झगरौ ही पावा ॥

ञञा निकट जु घट रह्यो दूरि कहा तजि जाइ ।
जा कारण जग ढूंढ़ियौ नेरौ पायो ताहि ॥

टट्टा बिकट घाट घट माहीं । खोलि कपाट महल किन जाहीं ।
देखि अटल टलि कतहि न जावा । रहै लपटि घट परचौ पावा ॥
ठट्ठा इहैं दूरि ठग नीरा । नीठि नीठि मन कीआ धीरा ॥
जिन ठग ठग्या सकल जग खावा । सो ठग ठग्या ठौर मन आवा ॥
डड्डा डर उपजै डर जाई । ता डर महि डर रह्या समाई ॥
जौ डर डरै तौ फिरि डर लागै । निडर हुआ डर उर होइ भागै ॥
ढढ्ढा ढित ढूँढहि कत आना । ढूँढ़त ही ढहि गये पराना ॥
चढ़ि सुमेर ढुंढि जब आवा । जिह गढ़ गढ्यौ सुगढ़ महि पावा ॥

णण्णा रणि रूतौं नर नेही करै। नानि बैना फुनि संचरै ॥
धन्य जनम ताही को गणै। मारे एकहि तजि जाइ घणै ॥
तत्ता अतर तर्यो नइ जाई। तन त्रिभुवण में रह्यो समाई ॥
जौ त्रिभुवण तन माहि समावा। तौ ततहि तत मिल्या सचु पावा ॥
थथ्था अथाह थाह नहीं पावा। ओहु अथाह इहु थिर न रहावा ॥
थोड़ै थल थानक आरंभै। बिनु ही थाहर मंदिर थंभै ॥
दद्दा देखि जु बिनसन हारा। जस अदेखि तस राखि बिचारा ॥
दसवैं द्वार कुंजी जब दीजै। तौ दयाल कौ दर्सन कीजै ॥
धद्धा अर्द्धहि अर्द्ध निबेरा। अद्धहि उर्द्धह मंझि बसेरा ॥
अर्द्धह छाड़ि अर्द्ध जो आवा। तो अर्द्धहि उर्द्ध मिल्या सुख पावा ॥
नन्ना निसि दिन निरखत जाई। निरख नयन रहे रतवाई ॥
निरखत निरखत जब जाइ पावा। तब ले निरखहि निरख मिलावा ॥
पप्पा अपर पार नहीं पावा। परम ज्योति स्यो परचौ लावा ॥
पाँचो इंद्री निग्रह करई। पाप पुण्य दोऊ निरबरई ॥
फफ्फा बिनु फूलै फल होई। ता फल फंक लखै जौ कोई ॥
दूणि न परई फंक बिचारै। ता फल फंक सबै नर फारै ॥
बब्बा बिंदहि बिंद मिलावा। बिंदहि बिंद न बिछुरन पावा ॥
बंदौ होइ बंदगी गहै। बंधक होइ बंधु सुधि लहैं ॥
भभ्भा भेदहि भेद मिलावा। अब भौ भाति भरोसौ आवा ॥
जो बाहर सो भीतर जान्या। भया भेद भूपति पहिचाना ॥
मम्मा मूल रह्या मन मानै। मर्मी हो सो मन कौं जानै ॥
मत कोइ मन मिलना बिलमावै। मगन भया तैसो सचु पावै ॥

मम्मा मन स्यों काजु है मन साधै सिधि होइ ॥
मनही मन स्यो कहै कबीरा मनसा मिल्या न कोइ ॥

इहु मन सकती इहु मन सीउ। इहु मन पंच तत्व को जीउ।
इहु मन ले जौ उनमनि रहै। तौ तीनि लोक की बातैं कहै ॥

यय्या जौं जानहि तौ दुर्मति हनि बसि काया गाउ ॥
रणि रूतौ भाजै तहीं सूर उघारौ नाउ ॥

रारा रस निरस्स करि जान्या। होइ निरस्स सुरस पहिचान्या ॥
इह रस छांड़े उह रस आवा। उह रस पीया इह रस नहीं भावा ॥
लल्ला ऐसे लिव मन लावै। अनत न जाइ परम सचु पावै ॥

अरु जौ तहा प्रेम लिव लावै। तौ अलह लहै लहि चरन समावै ॥
ववा वार वार बिष्णु समारि। बिष्णु समारि न आवै हारि ॥
बलि बलि जे बिष्णु तना जस गावै। बिष्णु मिलै सबही सचु पावै ॥

वावा वाही जानियै वा जाने इहु होइ।
इहु अरु ओहु जब मिलै तब मिलत न जानै कोइ ॥

शश्शा सो नीका करि सोधहु। घट परचा की बात निरोधहु।
घट परचै जो उपजै भाउ। पूरि रह्या तह त्रिभुवन राउ ॥
षष्षा खोजि परै जो कोई। जो खोजै सो बहुरि न होई।
खोजि बूझि जौ करै बिचारा। तौ भवजल तरत न लावै बारा ॥
सस्सा सो सह सेज सवारै। सोई सही संदेह निवारै ॥
अल्प सुख छाड़ि परमसुख पावा। तब इह त्रिय ओहु कंत कहावा ॥
हाहा होत होइ नहीं जाना। जबही होइ तबहि मन माना।
है तो सही लखौ जौ कोई। तब ओही उह एहु एहु न होई ॥
लिउँ लिउँ करत फिरै सब लोग। ता कारण ब्यापै बहु सोग।
लक्ष्मीबर स्यो जौ लिव लागै। सोग मिटै सब ही सुख पावै ॥
खख्खा खिरत खपत गये केते। खिरत खपत अजहूँ नहिं चेते।
अब जग जानि जो मना रहै। जह का बिछुरा तह थिरु लहै ॥
बावन अक्खर जोरे आन। सक्या म अक्खरु एक पछानि।
सत का सबद कबीरा कहै। पंडित होइ सो अनभै रहै ॥
पंडित लोगह कौ व्यवहार। दानवंत कौ तत्व बिचार।
जाकै जीय जैसी बुधि होई। कहि कबीर जानैगा सोई ॥१५२॥

बिंदु ते जिन पिंड किया अगनि कुंड रहाइया।
दस मास माता उदरि राख्या बहुरि लागी माइया ॥
प्रानी काहे को लोभि लागै रतन जनम खोया।
पूरब जनम करम भूमि बीजु नाहीं बोया ॥
बारिक ते बिरध भया होना सो होया ॥
जा जम आइ झोट पकरै तबहि काहे रोया ॥
जीवन की आसा करै जम निहारै सासा।
बाजीगरी संसार कबीरा चेति ढालि पासा ॥१५३॥

बुत पूजि हिंदू मुये तुरक मुये सिर नाई।
ओइ ले जारे ओइ ले गाड़े तेरी गति दुहूँ न पाई ॥

मन रे संसार अंध गहेरा। चहुँ दिसि पसरचो है जम जेवरा।
कबित पढ़े पढ़ि कविता मूये पकड़ के दारै जाई॥
जटा धारि धारि जोगी मूये मेरी गति इनहि न पाई॥
द्रव्य संचि संचि राजे मूये गड़िले कंचन भारी।
बेद पढ़े पढ़ि पंडित मूये रूप देखि देखि नारी।
राम नाम बिन सबैं बिगूते देखहु निरखि सरीरा।
हरि के नाम बिन किन गति पाई कहि उपदेस कबीरा॥१५४॥

भुजा बाँधि मिला करि डारचौ। हस्ती कोपि मूंड महि मारचो।
हस्ती भागि कै चीसा मारै। या मूरति कै हौ बलिहारै॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोर। काजी बकिबो हस्ती तोर।
हस्त न तोरै धरै ध्यान। वाकै रिदै बसै भगवान॥
क्या अपराध संत है कीना। बाँधि पाट कुंजर को दीना।
कुंजर पोटलै लै नमस्कारै। बूझी नहीं काजी अँलियारै॥
तीन बार पतिया भरि लीना। मन कठोर अजहू न पतीना।
कहि कबीर हमारा गोबिंद। चौथे पद महि जन की जिंद॥१५५॥

भखे भगति न कीजै। यह माला अपनी लीजै।
हौ माँगो संतन रेना। मैं नाही किसी का देना॥
माधव कैसी बने तुम संगै। आपि न देउ तले बहु मंगे।
दुइ सेर माँगौ चूना। पाव घीउ संग लूना॥
अधसेर माँगौं दाले। मोको दोनों बखत जिवाले।
खाट माँगौं चौपाई। सिरहाना और तुलाई।
ऊपर कौ माँगौं खींधा। तेरी भगति करै जनु बींधा।
मैं नाही कीता लब्बो। इक नाउ तेरा मैं फब्बो॥
कहि कबीर मन मान्या। मन मान्या तौ हरि जान्या॥१५६॥

मन करि मक्का किबला करि देही। बोलनहार परस गुरु एही।
कहु रे मुल्ला बाँग निवाज। एक मसीति दसै दरवाज॥
मिसमिलि तामसु भर्म क दूरी। भाखि ले पंचे होइ सबूरी।
हिंदू तुरक का साहिब एक। कह करै मुल्ला कह करै सेख॥
कहि कबीर हौ भया दिवाना। मुसि मुसि मनुआ सहजि समाना॥१५७॥

मन का स्वभाव मनहि बियापी। मनहि मार कवन सिधि थापी॥
कवन सु मनि जो मन को मारै। मन को मारि कबहुँ किस तारै।

मन अंतर बोलै सब कोई। मन मारै बिन भगत न होई।।
कहु कबीर जो जानै भेउ। मन मधुसूदन त्रिभुवण देउ ।। १५८।।

मन रे छाड़हु मर्म प्रगट होई नाचहु या माया के डाड़े।
सूर कि सनमुख रन ते डरपै सती कि साँचे भाँड़े ।।
डगमग छाँड़ि रे मन बौरा।
अब तो जरै मरै सिधि पाइये लीनो हाथ सिंधोरा।
काम क्रोध माया के लीने या बिधि जगत बिगूचा ।।
कहि कबीर राजा राम न छोड़ौं सगल ऊँच ते ऊँचा ।।१५९।।

माता जूठी पिता भी जूठा जूठा जूठेही फल लागे।
आवहि जूठे जाहि भी जूठे जूठे मरहि अभागे।
कहु पंडित सूचा कवन ठाउ। जहाँ बैसि हौ भोजन खाउ ।।
जिहवा जूठी बोलन जूठा करन नेत्र सब जूठे।
इंद्री की जूठी उतरसि नाहि ब्रह्म अगनि के जूठे ।।
अगनि भी जूठी पानी जूठा जूठी बैसि पकाइया।
जूठी करछी परोसन लागा जूठे ही बैठि खाइया ।।
गोबर जूठा चौंका जूठा जूठी दीनो कारा।
कहि कबीर तेई नर सूचे साची परी बिचारा ।।१६०।।

मरन जीवन की संका नासी। आपन रंगि सहज परगासी।
प्रकटी ज्योति मिटया अँधियारा। राम रतन पाया करत बिचारा ।।
जहँ अनंद दुख दूर पयाना। मन मानकु लिव तत्तु लुकाना ।।
जो किछु होआ सु तेरा भाणा। जो इन बूझै सु सहजि समाणा ।।
कहत कबीर किलबिष गये खीणा। मन माया जग जीवन लीणा ।।१६१।।

माई मोहि अवरु न जान्यो आनाँ।
सिव सनकादि जासु गुन गावहि तासु बसहि मेरे प्रानाँ।
हिरदै प्रगास ज्ञान गुरु गम्मित गगन मंडल महि ध्यानाँ।
बिषय रोग भव बंधन भागे मन निज घर सुख जानाँ ।।
एक सुमति रति जानि मानि प्रभु दूसर मनहि न आना।
चंदन बास भये मन बास न त्यागि घट्यो अभिमानाँ।।
जो जन गाइ ध्याइ जस ठाकुर तासु प्रभु है थानाँ।
तिह बड़ भाग बस्यो मन जाके कर्म प्रधान मथानाँ ।।
काटि सकति सिव सहज प्रगास्यो एकै एक समानाँ।
कहि कबीर गुरु भेंटि महासुख भ्रमत रहे मन मानाँ ।।१६२।।

माथे तिलक हथि माला बाँना । लोगन राम खिलौना जानाँ ॥
जौ हौं बौरा तौ राम तोरा । लोग मर्म कह कह जानै मोरा ॥
तोरौं न पाती पूजौं न देवा । राम भगति बिन निहफल सेवा ॥
सतिगुरु पूजौं सदा मनावौं । ऐसी सेव दरगह सुख पावौं ॥
लोग कहै कबीर बौराना । कबीर का मर्म राम पहिचाना ॥१६३॥

माधव जल की प्यास न जाइ । जल महि अगनि उठी अधिकाइ ॥
तू जलनिधि हौं जल का मीन । जल महि रहौं जलै बिन खीन ॥
तू पिंजर हौं सुअटा तोर । जम मंजार कहा करे मोर ॥
तू तरवर हौं पंखी आहि । मंदभागी तेरो दर्शन नाहि ॥१६४॥

मुंद्रा मोनि दया करि झोली पत्र का करहु बिचारू रे ।
खिंथा इहु तन सीओ अपना नाम करौ आधारू रे ॥
ऐसा जोग कमावै जोगी जप तप संजम गुरु मुख भोगी ।
बुद्धि बिभूति चढ़ाओ अपनी सिंगी सुरति मिलाई ॥
करि बैराग फिरौ तन नगर मन की किंगुरी बजाई ॥
पंच तत्व लै हिरदै राखहु रहै निराल मताई ।
कहत कबीर सुनहु रे संतहु धर्म दया करि वाढ़ी ॥१६५॥
मुसि मुसि रोवै कबीर की माई । ए बारिक कैसे जीवहि रघुराई ।
तनना बुनना सब तज्या है कबीर । हरि का नाम लिखि लियो सरीर ।
जब लग तागा बाहउ बेही । तब लग बिसरै राम सनेही ।
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा । हरि का नाम लह्यो मैं लाहा ॥
कहत कबीर सुनहु मेरी माई । हमरा इनका दाता एक रघुराई ॥१६६॥

मेरी बहुरिया को धनिया नाउ । ले राख्यौ रामजनिया नाउ ॥
इन मुंडियन मेरा घर धुधरावा । बिटवहि राम रमौआ लावा ॥
कहत कबीर सुनहु मेरी माई । इन मुंडियन मेरी जाति गवाई ॥१६७॥

मैला ब्रह्मा मैला इंदु । रवि मैला है मैला चंदु ॥
मैला मलता इहु संसार । इक हरि निर्मल जाका अंत न पार ॥
मैला ब्रह्मंडा इक्कै ईस । मैले निसि बासुर दिन तीस ॥
मैला मोती मैला हीरु । मैला पवन पावक अरु नीरु ॥
मैले सिव संकरा महेस । मैले सिध साधिक अरु भेष ॥
मैले जोगी जंगम जटा समेति । मैली काया हंस समेति ॥
कहि कबीर ते जन परवान । निर्मल ते जो रामहि जान ॥१६८॥

मौलो धरती मौला आकास । घटि घटि मौलिया आतम प्रगास ॥
राज राम मौलिया अनत भाइ । जब देखो तह रहा समाइ ॥
दुतिया मौले चारि बेद । सिमृति मौली सिउ कतेब ॥
संकर मौल्यौ जोग ध्यान । कबीर को स्वामी सब समान ॥१६९॥

जम ते उलटि भये हैं राम । दुख बिनसे सुख कियो बिश्राम ॥
बैरी उलटि भये हैं मीता । साकत उलटि सुजन भये चीता ॥
अब मोंहि सर्ब कुसल करि मान्या । सांति भई जब गोबिंद जान्या ॥
तन महि होती कोटि उपाधि । उलटि भई सुख सहजि समाधि ॥
आप पछानै आपै आप । रोग न ब्यापै तीनों ताप ॥
अब मन उलटि सनातन हूआ । तब जान्या जब जीयत मूआ ॥
कहु कबीर सुख सहज समाओ । आपि न डरो न अवर डराओ ॥१७०॥

जोगी कहहिं जोग भल मीठी अवर न दूजा भाई ।
रुंडित मुंडित एकै सबदी एकहहि सिधि पाई ।
हरि बिन भरमि भुलानै अंधा ।
जा पहि जाउ आप छुटकावनि ते बाँधे बहु फंदा ।
जह ते उपजी तही समानी इहि बिधि बिसरी तबहीं ॥
पंडित गुणी सूर हम दाते एहि कहहिं बड़ हमहीं ।
जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझैं क्यो रहियै ॥
तिस गुरु मिलै अँधेरा चूके इन बिधि प्राण कु लहियै ।
तजिवा बेदा हने बिकारा हरि पद दृढ़ करि रहियै ॥
कहु कबीर गूँगै गुण खाया पूछे ते क्या कहियै ॥१७१॥

जोगी जती तपी संन्यासी बहु तीरथ भ्रमना ।
लुंजित मुंजित मौनि जटा धरि अंत तऊ मरना ॥
ताते सेविअ ले रामना ।
रसना राम नाम हितु जाकै कहा करे जमना ॥
आग निगम जोतिक जानहि बहु वह ब्याकरना ।
तंत्र मंत्र सब औषध जानहि अंत तऊ मरना ॥
राजा भोग अरु छत्र सिंहासन बहु सुंदरि रमना ।
पान कपूर सुबासक चंदन अंत तऊ मरना ।
वेद पुरान सिमृति सब खोजे कहूँ न ऊबरना ।
क कबीर यों रामहिं जपौं मैटि जनम मरना ॥१७२॥

जोनि छाड़ि जौ जग महि आयो। लागत पवन खसम बिसरायो।
जियरा हरि के गुन गाउ।
गर्भ जोनि महि ऊर्ध्व तपु करता। तौ जठर अग्नि महि रहता।
लख चौरासीह जोनि भ्रमि आयो। अब के छुटके ठौर न ठायो॥
कहु कबीर भजु सारिगपानी। आवत दीसै जात न जानी॥१७३॥
रहु रहु री बहुरिया घूँघट जिनि काढै। अंत की बार लहैगी न आढ़ैं।
घूँघट काढ़ि गई तेरी आगैं। उनकी गैल तोहि जिनि लागैं॥
घूँघट काढ़ की इहै बड़ाई। दिन दस पाँच बहु भले आई।
घूँघट तेरो तौपरि साँचै। हरि गुन गाइ कूदहि अरु नाचै।
कहत कबीर बहू तब जीतै। हरि गुन गावत जनम ब्यतीतै॥१७४॥
राखि लेहु हमते बिगरी।
सील धरम जप-भगति न कीनी हौं अभिमान टेढ़ पगरी।
अमर जानि संची इह काया इह मिथ्या काची गगरी॥
जिनहि निवाजि साजि हम कीये तिनही बिसारि औ लगरी।
संधि कोहि साध नहि कहियौ सरनि परे तुमरी पगरी॥
कह कबीर इहि बिनती सुनियहु मत घालहु जम की खबरी।
राजन कौन तुमारे आवै।
ऐसो भाव बिदुर को देख्यो ओहु गरीब केहि भावै।
हस्ती देखि भर्म ते भूला श्री भगवान न जान्या॥
तुमरो दूध बिदुर को पानी अमृत करि मैं मान्या।
खीर समान सागु मैं पाया गुन गावत रैनि बिहानी॥
कबीर को ठाकुर अनद बिनोदी जाति न काहूँ की मानी॥१७६॥
राजा राम तू ऐसा निर्भव तरन तारन राम राया।
जब हम होते तब तुम नाहीं अब तुम इहु हम नाहीं॥
अब हम तुम एक भये हहि एकै देखति मन पतियाहीं।
जब बुधि होती तब बल कैसा अब बुद्धि बल न खटाई॥
कही कबीर बुधि हरि लई मेरी बुद्धि बदली सिधि पाई॥१७७॥
राजा राम स्रिमामति नहीं जानी तोरी। तेरे संतन की हौं चेरी।
हसतो जाइ सु रोवत आवै रोवत जाइ सु हँसै॥
बसतो होइ सो ऊजरु उजरु होइ सु बसै।
जल ते थल करि थल ते कूआ कूप ते मेरु करावैं॥
धरती ते आकास चढ़ावै चढ़े अकास गिरावै॥

भेखारी ते राज करावै राजा ते भेखारी ।
खल मूरख ते पंडित करिबो पंडित ते मगधारी ॥
नारी ते जो पुरख करावै पुरखन ते जो नारी ।
कहु कबीर साधू का प्रीतम सुमूरति बलिहारी ॥१७८॥

राम जपौ जिय ऐसे ऐसे । ध्रुव प्रह्लाद जप्यो हरि जैसे ॥
दीनदयाल भरोसे तेरे । सब परवार चढाया बेड़े ॥
जाति सुभावै ताहु कम मनावै । इस बेड़े कौं पार लँघावै ॥
गुरु प्रसादि ऐसी बुद्धि समानी । चूकि गई फिरि आवन जानी ।
कहु कबीर भजु सारिगपानी । उरवार पार सब एकौ दानी ॥१७९॥

राम सिमरि राम सिमरि राम सिमरि भाई ।
राम नाम सिमिरन बिनु बूड़ते अधिकाई ॥
बनिता सुत देह ग्रेह संपति सुखदाई ।
इनमें कछु नाहि तेरो काल अवधि आई ॥
अजामल गज गनिका पतित कर्म कीने ।
तेऊ उतरि पार परे राम नाम लीने ॥
सूकर कूकर जोनि भ्रमतेऊ लाज न आई ।
राम नाम छाड़ि अमृत काहे बिष खाई ॥
तजि भर्म कर्म बिधि निषेध राम नाम लेही ।
गुरु प्रसाद जन कबीर राम करि सनेही ॥१८०॥

री कलवारि गवारि मूढ़ मति उलटो पवन फिरावो ।
मन मतवार मेर सर भाठी अमृत धार चुवावो ।
बोलहु भैया राम की दुहाई ।
पीवहु सत सदा मति दुर्लभ सहजे प्यास बुझाई ॥
भय बिच भाउ भाई कोउ बूझहि हरि रस पावै भाई ।
जेते घट अमृत सबही महि भावै तिसहि पियाई ॥
नगरी एकै नव दरवाजे धावत बर्जि रहाई ।
त्रिकुटी छूटै दस वादर खूलै ताम न खीवा भाई ।
अभय पद पूरि ताप तह नासे कहि कबीर बीचारी ॥
उबट चलते इहु मद पाया जैसे खोद खुमारी ॥१८१॥

रे जिय निलज्ज लाज तोहि नाहीं । हरि तजि कत काहू के जाही ॥
जाको ठाकुर ऊँचा होई । सो जन पर घर जात न सोही ।
सो साहिब रहिया भरपूरि । सदा संगि नाही हरि दूरि ॥

कवला चरन सरन है जाके। कहु जन का नाहीं घर ताके॥
सब कोऊ कहै जासु की बाता। जी सम्भ्रथ निज पति है दाता॥
कहै कबीर पूरन जग सोई। जाकै हिरदै अवरु न होई॥१८२॥

रे मन तेरा कोइ नहीं खिंचि लेइ जिन भार।
बिरख बसेरा पंखि का तैसो इहु संसार॥
राम रस पीया रे जिह रस बिसरि गये रस और।
और मुये क्या रोइये जो आपा थिर न रहाइ॥
जो उपजै सो बिनसि है दुख करि रोवै बलाइ।
जह की उपजी तह रची पीवत मरद न लाग॥
कहु कबीर चित चेतिया राम सिमिर बैराग॥१८३॥

रोजा धरै मनावै अल्लहु स्वादति जीय सँघारै।
आपा देखि अवर नहीं देखै काहे कौ झख मारै॥
काजी साहिब एक तोही महि तेरा सोच बिचार न देखै।
खबरि न करहि दीन के बौरे ताते जनम अलेखै॥
साँच कतेब बखानै अल्लहु नारि पुरुष नहिं कोई।
पढ़ै गुनै नाहीं कछू बौरे जो दिल महि खबरि न होई॥
अल्लहु गैब सगल घट भीतर हिरदै लेहु बिचारी।
हिंदू तुरक दुइ महि एकै कहै कबीर पुकारी॥१८४॥

लंका सा कोट समुद्र सी खाई। तिह रावन घर खबरि न पाई॥
क्या माँगै किछू थिरु न रहाई। देखत नयन चल्यो जग जाई॥
इक लख पूत सवा लख नाती। तिह रावन घर दिया न बाती॥
चंद सूर जाके तपत रसोई। बैसंतर जाके कपरे धोई॥
गुरु मति रामै नाम बसाई। अस्थिर रहै न कतहू जाई॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई। राम नाम बिन मुकुति न होई॥१८५॥

लख चौरासी जीअ जोनि महि भ्रमत नँदुबहु थाको रे।
भगति हेतु अवतार लियो है भाग बड़ो बपुरा को रे॥
तुम जो कहत हौ नंद को नंनन नंद सु नंदन काको रे।
धरनि अकास दसों दिसि नाहीं तब इहु नंद कहायो रे॥
संकट नहीं परै जोनि नहि आवै नाम निरंजन जाको रे।
कबीर को स्वामी ऐसो ठाकुर जाकै माई न बापो रे॥१८६॥

बिद्या न पढ़ो बाद नहीं जानो। हरि गुन कथत सुनत बौरानी ॥
मेरे बाबा मैं बौरा, सब खलक सयानो, मैं बौरा।
मैं बिगर्यो बिगरै मति औरा। आपनबौरा राम कियो बौरा ॥
सतिगुरु जारि गयो भ्रम मारा॥
मैं बिगरे अपनी मति खोई। मेरे भर्मि भूलो मति कोई ॥
सो बौरा आपु न पछानै। आप पछानै त एकै जानै ॥
अबहिं न माता सु कबहुँ न माता। कहि कबीर रामै रँगि राता ॥१८७॥

बिनु तन सती होई कैसे नारि। पंडित देखहु रिदे बिचारि ॥
प्रीति बिना कैसे बँधे सनेहू। जब लग रस तब लग नहिं नेहू ॥
साह निसत्तु करै जिय अपनै। सो रमय्यै कौ मिलै न स्वपनै ॥
तन मन धन गृह सौंपि सरीरू। सोई सोहागनि कहै कबीरू ॥ १८८ ॥

बिमल अस्त्र केते है पहिरे क्या बन मध्ये बासा।
कहा भया नर देवा धोखे क्या जल बोर्यो गाता ॥
जीय रे जाहिगा मैं जाना। अविगत समझ इयाना।
जत जत देखौ बहुरि न पेखौ संग माया लपटाना।
ज्ञानी ध्यानी बहु उपदेसी इहु जग सगली धंधा ॥
कहि कबीर इक राम नाम बिनु या जग माया अंधा ॥ १८९ ॥

बिषया ब्यापा सकल संसारू। बिषया लै डूबा परवारू ॥
रे नर नाव चौड़ि कत बोड़ी। हरि स्यो तोड़ि बिषया संगि जोड़ी ॥
सुर नर दाधे लागी आगि। निकट नीर पसु पीवसि न झाँगि ॥
चेतत चेतत निकस्यो नीर। सो जल निर्मल कथन कबीर ॥१९०॥

बेद कतेब इकतरा भाई दिल का फिकर न जाई।
टुक दम करारी जौ करहु हाजिर हजूर खुदाई ॥
बंदे खोजु दिल हर रोज ना फिरि परेसानी माहि।
इह जु दुनिया सहरु मेला दस्तगीरी नाहि ॥
दरोग पढ़ि पढ़ि खुसी होइ बेखबर बाद बकाहि।
हक सच्च खालक खलक म्याने स्याममूरति नाहि।
असमान म्याने लहंग दरिया गुसल करद त बूद।
करि फिकरु दाइम लाइ चसमें जँह तहाँ मौजूद ॥
अल्लाह पाक पाक हैं सक करो जे दूसर होइ।
कबीर कर्म करीम का उहु करे जानै सोइ ॥१९१॥

बेद कतेब कहहु मत झूठेइ झूठा जो न बिचारै ॥
जौ सब मैं एकु खुदा कहत हौ तौ क्यों मुरगी मारै ॥
मुल्ला कहहु नियाउ खुदाई तेरे मन का भरम न जाई ॥
पकरि जीउ आन्या देह बिनती माटी कौ बिसमिल कीया ।
जोति सरूप अनाहत लागी कहु हलाल क्यों कीया ॥
क्या उज्जू पाक किया मुह धोया क्या मसीनि सिर लाया ।
जौ दिल मैंहि कपट निवाज गुजारहु क्या हज काबै जाया ॥
तू नापाक पाक नहीं सूझ्या तिसका मरम न जान्या ॥१६२॥

बेद की पुत्री सिमृति, भाई । सांकल जवरी लैहै आई ॥
आपन नगर आप ते बांध्या । मोह कै फाधि काल सरु साध्या ॥
कटी न कटै तूटि नह जाई । सो सापनि होइ जग को खाई ॥
हम देखत जिन्ह सब जग लूट्या । कहु कबीर मैं राम कहि छूट्या ॥१६३॥

वेद पुरान सबै मत सुनि के करी करम की आसा ।
काल ग्रस्त सब लोग सियाने उठि पंडित पै चले निरासा ॥
मन रे सर्यो न एकै काजा । भाज्यो न रघुपति राजा ।
वन खंड जाइ जोग तप कीनो कंद मूल चुनि खाया ।
नादी बेदी सबदी मौनी जम के परै लिखाया ॥
भगति नारदी रिदै न आई काछि कूछि तन दीना ।
राग रागनी डिंभ होइ बैठा उन हरि पहि क्या लीना ॥
परयो काल सबै जग ऊपर माहि लिखे भ्रम ज्ञानी ।
कहु कबीर जन भये खलासे प्रेम भगति जिह जानी ॥१६४॥

षट नेम कर कोठड़ी बाँधी बस्तु अनूप बीच पाई ॥
कुंजी कुलफ प्रान करि राखे करते बार न लाई ॥

अब मन जागत रहु रे भाई ।
गाफिल होय कै जनम गवायो चोर मुसैं घर जाई ॥
पंच पहरुआ दर महि रहते तिनका नहीं पतियारा ।
चेति सुचेत चित्त होइ रहूँ तौ लै परगासु उबारा ॥
नव घर देखि जु कामिनि भूली बस्तु अनूप न पाई ।
कहत कबीर नवै घर मूसे दसवें तत्व समाई ॥ १६५ ॥

संत मिलै कछु सुनिये कहिये। मिलै असंत मष्ट करि रहियै॥
बाबा बोलना क्या कहियै। जैसे राम नाम रमि रहियै॥
संतन स्यों बोले उपकारी। मूरख स्यों बोले झख मारी॥
बोलत बोलत बढ़हि बिकारा। बिनु बोले क्या करहि बिचारा॥
कहु कबीर छूछा घट बोलै। भरिया होइ सु कबहु न डोलै॥१९६॥

संतहु मन पवनै सुख बनिया। किछु जोग परापति गनिया॥
गुरु दिखलाई मोरी। जितु मिरग पड़त है चोरी॥
मूँदि लिये दरवाजे। बाजिले अनहद बाजे॥
कुंभ कमल जल भरिया। जलौ मेट्यो ऊभा करिया॥
कहु कबीर जन जान्या। जौ जान्या तौ मन मान्या॥१९७॥

संता मानौ दूता डानौ इह कुटवारी मेरी॥
दिवस रैन तेरे पाउ पलोसौ केस चवर करि फेरी॥
हम कूकर तेरे दरबारि। भौकाई आगे बदन पसारि।
पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तौ मिट्या न जाई।
तेरे द्वारे धनि सहज की मथै मेरे दगाई॥
दागे होहि सुरन महिं जूझहि बिनु दागे भगि जाई।
साधू होई सुभ गति पछानै हरि लये खजानै पाई॥
कोठरे महि कोठरी परम कोठरी बिचारि।
गुरु दीनी वस्तु कबीर कौं लेवहु बस्तु सम्हारि।
कबीर दोई संसार कौ लीनी जिसु मस्तक भाग॥
अमृत रस जिनु पाइया थिरता का सोहाग॥१९८॥

संध्या प्रात स्नान कराहीं। ज्यों भये दादुर पानी माहीं।
जो पै राम नाम रति नाहीं। ते सबि धर्मराय कै जाहीं॥
काया रति बहु रूप रचाही। तिनकै दया सुपनै भी नाही।
चार चरण कहहि बहु आगर। साधू सुख पावहि कलि सागर॥
कहु कबीर बहु काय करीजै। सरबस छोडि महा रस पीजै॥१९९॥

सत्तरि सै इसलारू हैं जाके। सवा लाख है कावर ताके।
सेख जु कहीं यहीं कोटि अठासी। छप्पन कोटि जाके खेल खासी॥
मो गरीब की को गुजरावै। मजलसि दूरि महल को पावै॥
तेतसि करोडि हैं खेल खाना। चौरासी लख फिरै दिवाना॥

बाबा आदम कौं कछु न हरि दिखाई। उनभी भिस्त घनेरी पाई॥
दिल खल हलु जाकै जर दरुवानी। छोड़ि कतेब करै सैतानी॥
दुनिया दोस रोस है लोई। अपना कीया पावै सोई॥
तुम दाते हम सदा भिखारी। देउ जवाब होइ बजगारी॥
दास कबीर तेरी पनह समाना। भिस्त नजीक राखु रहमाना॥२००॥

सनक आनंद अंत नहीं पाया। बेद पढ़े पढ़ि ब्रह्मै जनम गवाया॥
हरि का बिलोवना बिलोवहु मेरे भाई। सहज बिलोवहु जैसे तत्व न जाई॥
तनु करि मटकी मन माहि बिलोई। इसु मटकी महि सबद संजोई।
हरि का बिलोना मन का बीचारा। गुरु प्रसादि पावै अमृत धारा॥
कहु कबीर न दर करे जे मीरा। राम नाम लगि उतरे तीरा॥२०१॥
सनक सनंद महेस समाना। सेष नाग तेरी मर्म न जाना॥
संत संगति राम रिदै बसाई।

हनुमान सरि गरुड़ समाना। सुरपति नरपति नहि गुन जाना॥
चारि बेद अरु सिमृति पुराना। कमलापति कमल नहि जाना॥
कह कबीर सो धरमैं नाहीं। पग लगि राम रहै सरनाहीं॥२०२॥

सब कोई चलन कहत है ऊँहा। ना जानौं बैकुंठ है कहाँ॥
आप आपका मरम न जानाँ। बातन ही बैकुंठ बखानाँ॥
जब लग मन बैकुंठ की आस। तब लग नाहीं चरन निवास॥
खाई कोट न परल पगारा। ना जानौ बैकुंठ दुआरा॥
कहि कबीर अब कहिये काहि। साधु संगति बैकुंठे आहि॥२०३॥

सर्पनी ते ऊपर नहीं बलिया। जिन ब्रह्मा बिष्णु महादेव छलिया॥
मारु मारु सर्पनी निर्मल जल पैठी। जिन त्रिभुवन डसिले गुरु प्रसादि डीठी॥
सर्पनी सर्पनी क्या कहहु भाई। जिन साचु पछान्या तिन सर्पनी खाई॥
सर्पनी ते आन छूछ नहीं अवरा। सर्पनी जीति कहा करै जमरा।
इहि सर्पनी ताकी कीती होई। बल अबल क्या इसते होई॥
एह बसती ता बसत सरीरा। गुरु प्रसादि सहजि तरे कबीरा॥२०४॥

सरीर सरोवर भीतरै आछै कमल अनूप।
परम ज्योति पुरुषोत्तमो जाकै रेख न रूप॥
रे मन हरि भजु भ्रम तजहु जग जीवन राम।
आवत कछू न दीसई न दीसै जात॥

जहाँ उपजै बिनसै तहि जैसे पुरवनि पात।
मिथ्या करि माया तजा सुख सहज बीचारि॥
कहि कवीर सेवा करहु मन मंझि मुरारि॥२०५॥

सासु की दुखी ससुर की प्यारी जेठ के नाम डरौं रे॥
सखी सहेली ननद गहेली देवर कै बिरहि जरौं रे॥
मेरी मति बौरी मैं राम बिसारयो किन बिधि रहनि रहौं रे।
सेजै रमत नयन नहीं पेखौं इहु दुख कासौं कहौं रे॥
बाप सावका करै लराई मया सद मतवारी।
बड़े भाई के जब संग होती तब ही नाह पियारी॥
कहत कवीर पंच को झगरा झगरत जनम गवाया।
झूठी माया सब जग बाँध्या पै राम रमत सुख पाया॥२०६॥

सिव की पुरी बसै बुधि सारु। यह तुम मिलि कै करहु बिचारु॥
ईत ऊत की सोझी परै। कौन कर्म मेरा करि करि मरै॥
निज पद ऊपर लागो ध्यान। राजा राम नाम मेरा ब्रह्म ज्ञान॥
मूल दुआरै बंध्या बंधु। रवि ऊपर गहि राख्या चंदु॥
पंचम द्वारे की सिल ओड़। तिह सिल ऊपर खिड़की ओर॥
खिड़की ऊपर दसवा द्वार। कहि कबीर ताका अंतु न पार॥२०७॥

सुख माँगत दुख आगै आवै। सो सुख हमहुँ न माँग्या भावै।
बिषगा अजहु सुरति सुख आसा। कैसे होइ है राजाराम निवासा॥
इसु सुख ते सिव ब्रह्म हराना। सो सुख हमहुँ साँच करि जाना॥
सनकादिक नारद मुनि सेखा। तिन भी तन महि मन नहीं पेखा॥
इस मन को कोई खोजहु भाई। तन छूटै मन कहा समाई॥
गुरु परसादी जयदेव नामा। भगति कै प्रेम इनही है जाना॥
इस मन कौ नहीं आवन जाना। जिसका भम गया तिन साचु पछाना॥
इस मन कौ रूप न रेख्या काई। हुकुमे होया हुकुम बूझि समाई॥
इस मन का कोई जानै भेउ। इहि मन लीण भये सुखदेउ॥
जीउ एक और सगल सरीरा। इस मन कौ रवि रहै कबीरा॥२०८॥

सुत अवराध करत हैं जेते। जननी चीति न राखसि तेते॥
रामज्या हौं बारिक तेरा। काहे न खंडसि अवगुन मेरा॥
जे अति कोप करे करि धाया। ताभी चीत न राखसि माया॥

चित्त भवन मन पर्यो हमारा । नाम बिना कैसे उतरसि पारा ॥
देहि बिमल मति सदा सरीरा । सहजि सहजि गुन रवै कबीरा ॥२०९॥

सुन्न संध्या तेरी देव देवा करि अधपति आदि समाई ॥
सिद्ध समादि अंत नहीं पाया लागि रहे सरनाई ॥
लेहु आरति हो पुरुष निरंजन सति गुरु पूजहु जाई ॥
ठाढा ब्रह्मा निगम बिचारै अलख न लखिया जाई ॥
तत्तु तेल नाम कीया बाती दीपक देह उज्यारा ॥
जोति लाई जगदीस जगाया बूझै बूझनहारा ।
पंचे सबद अनाहत बाजे संगे सारिंगपानीं ।
कबीरदास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी ॥२१०॥

सुरति सिमृति दुई कन्नी मंदा परमिति बाहर खिथा ।
सुन्न गुफा महि आसण बैसण कल्प बिवर्जित पंथा ॥
मेरे राजन मैं बैरागी जोगी मरत न सोग बिजोरी ॥
खंड ब्रह्मांड महि सिंडी मेरा बटुवा सब जग भसमाधारी ।
ताड़ी लागी त्रिपल पलटिये छूटै होइ पसारी ॥
मन पवन्न दुई तूंबा करिहै जुग जुग सारद साजी ।
थिरु भई तंती टूटसि नाहीं अनहद किंगुरी बाजी ॥
सुनि मन मगन भये है पूरे माया डोलन लागी ।
कहु कबीर ताको पुनरपि जनम नहीं खेलि गयो बैरागी ॥२११॥

सुरह की सैसा तेरी चाल । तेरा पूछट ऊपर झमक बाल ॥
इस घर मह है सु तू ढुढि खाहि । और किसही के तू मति ही जाहि ॥
चाकी चाटै चून चाहि । चाकी का चीथरा कहा लै जाहि ॥
छीके पर तेरी बहुत डीठ । मत लकरी सोंटा परै तेरी पीठ ॥
कहि कबीर भोग भले कीन । मति कोऊ मारै ईंट ठेम ॥२१२॥

सो मुल्ला जो मन स्यौ लरै । गुरु उपदेश काल स्यो जुरै ॥
काल पुरुष का मरदै मान । तिस मुल्ला को सदा सलाम ॥
है हजूरि कत दूरि बतावहु । दुंदर बाधहु सुंदर पावहु ॥
काजी सो जो काया बिचारै । काया की अगिन ब्रह्म पै जारै ॥
सुपनै बिन्दु न देई जरना । तिस काजी कौ जरा न मरना ॥
सो सुरतान जो दुइ सुर तानै । बाहर जाता भीतर आनै ॥
गगन मंडल महि लस्कर करै । सो सुरतान छत्र सिर धरै ॥

जोगी गोरख गोरख करै। हिंदू राम नाम उच्चरै॥
मुसलमान का एक खुदाई। कबीर का स्वामी रह्या समाई॥२१३॥

स्वर्ग वास न बाछियै डारियै न नरक निवासु।
होना है सो होइहै मनहि न कीजै ग्रासु॥
रमय्या गुन गाइयै जाते पाइयै परम निधानु।
क्या जप क्या तप संयमी क्या व्रत क्या इस्नान॥
जब लग जुक्ति न जानिये भाव भक्ति भगवान॥
संपै देखि न हरियाँ बिपति देखि न रोइ॥
ज्यो संपै त्यो बिपत है बिधि ने रच्या सो होइ।
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मझारि॥
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि॥२१४॥

हज्ज हमारी गोमती तीर। जहाँ बसहि पीतंबर पीर।
वाहु वाहु क्या खुद गावता है। हरि का नाम मेरे मन भावता है।
नारद सारद करहि खवासी। पास बैठि बिधि कवला दासी॥
कंठे माला जिहवा नाम। सुहस नाम लै लै करो सलाम॥
कहत कबीर राम गुन गावौ। हिंदु तुरक दोऊ समझावौ॥२१५॥

हम घर सूत तनहि नित ताना कंठ जनेऊ तुमारे॥
तुम तो बेद पढ़हु गायत्री गोबिंद रिदै हमारे॥
मेरी जिह्वा विष्णु नयन नारायण हिरदै बसहि गोबिंदा।
जम दुआर जब पूँछसि बबरे तब क्या कहसि मुकुंदा॥
हम गोरू तुम ग्वार गुसाइ जनम जनम रखवारे।
कबहूँ न पार उतार चराइह कैसे खसम हमारे॥
तू बाम्हन मैं कासी का जुलाहा बूझहु मोर गियाना।
तुम तौ पाचे भूपति राजे हरि सो मोर धियाना॥२१६॥

हम मसकीन खुदाई बंदे तुम राचसु मन भावै।
अल्लह अवलि दीन को साहिब जोर नहीं फुरमावै॥
काजी बोल्या बनि नहीं आवै।
रोजा धरै निवाजु गुजारै कलमा भिस्त न होई।
सत्तरि काबा घर ही भीतर जे करि जानै कोई॥

निवाजु सोई जो न्याइ बिचारै कलमा अकलहि जानै ।
पाँचहु मुसि मुसला बिछावै तब तौ दीन पछानै ॥
खसम पछानि तरस करि जीय महि मारि मणी करि फीकी ।
आप जनाइ और को जानै तब होइ भिस्त सरीकी ॥
माटी एक भेष धरि नाना तामहि ब्रह्म पछाना ।
कहै कबीर भिस्त छोड़ि करि दोजक स्यों मनमाना ॥२१७॥

हरि बिन कौन सहाई मन का ।
माता पिता भाई सुत बनिता हितु लागो सब फन का ॥
आगै कौ किछु तुलहा बाँधहु क्या भरोसा धन का ।
कहा बिसासा इस भाँडे का इत नकु लगै ठनका ॥
सगल धर्म पुन्न फल पावहु धूरि बाँछहु सब जन का ।
कहै कबीर सुनहु रे संतहु इहु मन उड़न पखेरू बन का ॥२१८॥

हरि जन सुनहि न हरि गुन गावहि । बातन ही असमान गिरावहि ॥
ऐसे लोगन स्यो क्या कहिये ।
जो प्रभु कीये भगति ते बाहज । तिनते सदा डराने रहिये ॥
आपन देहि चुरू भरि पानी । तिहि निंदहि जिह गंगा आनी ॥
बैठत उठत कुटिलता चालहि । आप गये औरनहू घालहि ॥
छाड़ि कुचर्चा आन न जानहि । ब्रह्माहू का कह्यो न मानहि ॥
आप गये औरनहू खोवहि । आगि लगाइ मंदिर में सोवहि ॥
औरन हँसत आप हहिं काने । तिनको देखि कबीर लजाने ॥२१९॥

हिंदू तुरक कहाँ ते आये किन एह राह चलाई ।
दिल महि सोच बिचार कवादे भिस्त दोजक किन पाई ॥
काजीतै कौन कतेब बखानी ।
पढ़त गुनत ऐसे सब मारे किनहू खबरु न जानी ॥
सकति सनेहु करि सुन्नति करियै मैं न बदौगा भाई ।
जौ रे खुदाई मोहि तुरक करैगा आपन ही कटि जाई ॥
सुन्नत किये तुरक जे होइगा औरत का क्या करियै ।
अर्द्ध सरीरी नारि न छाड़े तातें हिंदू ही रहिये ॥
छाडि कतेब राम भजु बौरे जुलम करत है भारी ।
कबीर पकरी टेक राम की तुरक रहे पचि हारी ॥२२०॥

हीरै हीरा वेधि पवन मन सहजे रह्या समाई ।
सकल जोति इन हीरै वेधी सतिगुरु बचनी मैं पाई ।।
हरि की कथा अनाहद बानी हंस ह्वै हीरा लेइ पछानी ।
कहु कबीर हीरा अस देख्यो जग महि रह्या समाई ।
गुपता हीरा प्रकट भयो जब गुरु गम दिया दिखाई ।।२२१।।

हृदय कपट मुख ज्ञानी । झूठे कहा बिलोवसि पानी ।।
काया माँजसि कौन गुना । जो घट भीतर है मलनाँ ।।
लौकी अठ सठि तीरथ न्हाई । कौरापन तऊ न जाई ।।
कहि कबीर बीचारी । भव सागर तारि मुरारी ।।२२२।।